हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा: (कैनेडा) की अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna: International quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha Canada
वर्ष : १६, अंक : ६२, अप्रैल २०१४ •Year 16, Issue 62, April 2014
Financial support provided by Dhingra Family Foundation

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय सम्मान

प्रो. हरि शंकर आदेश
ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान

महेश कटारे
ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान

सुदर्शन प्रियदर्शिनी
ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान

पास दासोत

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय सम्मान

प्रो. हरि शंकर आदेश
ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना
अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान

महेश कटारे
ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना
अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान

सुदर्शन प्रियदर्शिनी
ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना
अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान

'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान' :
सम्मानित कृति
उपन्यास-कामिनी काय कांतारे
(महेश कटारे) भारत,

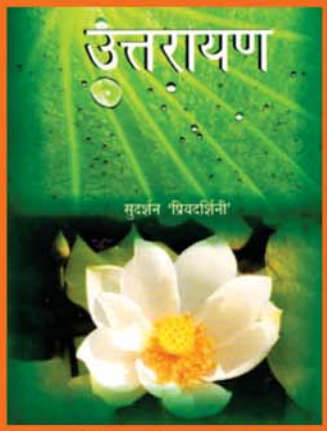

'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान' :
सम्मानित कृति
कहानी संग्रह -उत्तरायण
(सुदर्शन प्रियदर्शिनी) अमेरिका।

सम्मान समारोह

26 जुलाई 2014 शनिवार

स्थानः स्कारबोरो सिविक सेण्टर, कैनेडा

हिन्दी चेतना परिवार की ओर से बधाई एवं शुभकामनाएँ
श्याम त्रिपाठी संरक्षक, मुख्य संपादक
डॉ. सुधा ओम ढींगरा, सम्पादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', पंकज सुबीर, अभिनव शुक्ल
सह सम्पादक

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्याम त्रिपाठी
कैनेडा

सम्पादक
सुधा ओम ढींगरा
अमेरिका

सह-सम्पादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', भारत
पंकज सुबीर, भारत
अभिनव शुक्ल, अमेरिका

परामर्श मंडल
पदमश्री विजय चोपड़ा, भारत
कमल किशोर गोयनका, भारत
पूर्णिमा वर्मन, शारजाह
पुष्पिता अवस्थी, नीदरलैंड
निर्मला आदेश, कैनेडा
विजय माथुर, कैनेडा

सहयोगी
सरोज सोनी, कैनेडा
राज महेश्वरी, कैनेडा
श्रीनाथ द्विवेदी, कैनेडा

विदेश प्रतिनिधि
डॉ. एम. फ़िरोज़ ख़ान, भारत
चाँद शुक्ला 'हदियाबादी', डेनमार्क
अनीता शर्मा, शिंघाई, चीन
दीपक 'मशाल', फ्रांस
अनुपमा सिंह, मस्कट
रमा शर्मा, जापान

वित्तीय सहयोगी
अश्विनी कुमार भारद्वाज, कैनेडा

रेखाचित्र : पारस दासोत
आवरण : अरविंद नारले

डिज़ायनिंग :
सनी गोस्वामी, सीहोर
शहरयार अमजद ख़ान, सीहोर

हिन्दी चेतना

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001
Financial support provided by Dhingra Family Foundation

वर्ष : १६, अंक : ६२
अप्रैल-जून २०१४
मूल्य : ५ डॉलर ($5)

वृक्ष ऊँचा सदा पैरों पे खड़ा होता है,
जड़ों से कट के भला कौन बड़ा होता है,
चेतना शून्य हवाओं से युद्ध में अक्सर,
जीतता वो ही है बाज़ी जो लड़ा होता है,
तेरी रग रग में आग रे... बन जा सूरज अब जाग रे!

-अभिनव शुक्ल

HINDI CHETNA

6 Larksmere Court, Markham Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
e-mail : hindichetna@yahoo.ca
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

इस अंक में

हिन्दी चेतना
वर्ष : 16, अंक : 62
अप्रैल-जून 2014

सम्पादकीय 5
उद्‌गार 6
साक्षात्कार
डॉ. कविता वाचक्नवी 7
कहानी
पापा का फेसबुक अकाउंट
मनमोहन गुप्ता मोनी 12
सात कदम
जय वर्मा 16
प्रतिफल
प्रो.शाहिदा शाहीन 20
और टल गई फाँसी
ब्रजेश राजपूत 23
कर्ज़
प्रतिभा सक्सेना 26
कहानी भीतर कहानी
घर एक शब्द भर नहीं है
सुशील सिद्धार्थ 30
व्यंग्य
दुर्योधन के वंशज
प्रेम जनमेजय 33
स्वर्ग-नरक के बँटवारे की समस्या
कुमारेन्द्र किशोरी महेन्द्र 35
विश्व के आँचल से
हाईवे-४७ का अंतपाठ
साधना अग्रवाल 37
लघुकथाएँ
जानवर
उपेन्द्र प्रसाद राय 15
कनफ़ैशन
डॉ. सुधा गुप्ता 25
लिटमस टेस्ट
पीयूष द्विवेदी भारत 66
ग़ज़ल
अमर नदीम 38
पहलौटी किरण
ल्युमिनिता (नन्ही रोशनी)
रीनू पुरोहित 39
संस्मरण
कुछ तैरती यादें
मीरा गोयल 43
दृष्टिकोण
प्रवासी साहित्य : अस्तित्व का संघर्ष
सुबोध शर्मा 45
आलेख
अमर फिल्म तीसरी कसम
डॉ. विशाला शर्मा 47
नवगीत
शशि पाधा 51
कविताएँ
अनीता शर्मा 52
विकेश निझावन 53
दीपक मशाल 54
भूमिका द्विवेदी 55
पुष्पिता अवस्थी 56
हाइकु
डॉ. कुँवर दिनेश सिंह 57
पुष्पा मेहरा 57
ऋता शेखर 'मधु' 57
नव अंकुर
गीता घिलोरिआ 58
भाषांतर
यूनानी कवि ग्योर्गोस सेफ़ेरिस की कविताएँ
अनुवाद: अनिल जनविजय 59
अविस्मरणीय
गोपाल सिंह नेपाली 60
ओरियानी के नीचे
आ बैल मुझे मार
डॉ. रेनू यादव 61
विश्वविद्यालय के प्रांगण से
बेलिंडा विलियम्स 62
पुस्तक समीक्षा
भोर की मुस्कान
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' 65
तमन्नाओं का कारोबार
रमाकान्त राय 66
हमसफ़र पत्रिकाएँ 67
पुस्तकें 67
साहित्यिक समाचार 69
चित्र काव्य शाला 72
विलोम चित्रकाव्यशाला 73
आख़िरी पन्ना
सुधा ओम ढींगरा 74

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com
हिन्दी चेतना को आप
ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com/hindi chetna.html
फेसबुक पर हिन्दी चेतना से जुड़िये
https://www.facebook.com/hindi.chetna
हिन्दी चेतना का सदस्यता फार्म
यहाँ उपलब्ध है
http://www.shabdankan.com
http://www.vibhom.com/hindi chetna.html

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है। आप अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें चित्र और परिचय के साथ। 'हिन्दी चेतना' एक साहित्य पत्रिका है अत: रचनाएँ भेजने से पूर्व इसके अंकों का अवलोकन ज़रूर कर लें।

रचनाएँ भेजते समय निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

- हिन्दी चेतना जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी ।
- प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा ।
- पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी।
- रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा ।
- प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा ।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं ।
संपादक मंडल तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

सम्मान देना और सम्मान लेना एक गौरवशाली परम्परा है

ज्यों ही वसंत ऋतु का आगमन होता है, मेरे समक्ष अतीत के वे पल आ जाते हैं; जब प्रो. हरि शंकर आदेश जी के निवास स्थान पर 1998 की मार्च में काव्य-सन्ध्या की धूम थी। वहीं पर 'हिन्दी चेतना' के प्रथम हस्त लिखित अंक का; जिस पर किसी ने माता सरस्वती का चित्र बना दिया था और पद्मश्री यशपाल जैन ने उसका विमोचन किया था। मन में था उल्लास, उत्साह और एक नई उमंग। मेरे पास जितनी भी प्रतियाँ थीं, वे हाथों-हाथ निकल गईं और केवल एक कॉपी रह गई थी; जो मैंने आज भी सुरक्षित और सँभालकर रखी हुई है। यह जीवन का पहला पग 'हिन्दी चेतना' के इतिहास का प्रथम चरण था। वह पल वास्तव में अनमोल और स्मरणीय था। आज इस बात को 16 वर्ष हो गए हैं; लेकिन मेरे मानस- पटल पर वे क्षण आज भी ताज़ा हैं। उन दिनों को मेरे लिए विस्मृत करना आसान नहीं; इसलिए समय-समय पर मेरे सम्पादकीय में इसकी झलक आ जाती है। अप्रैल अंक 'हिन्दी चेतना' का 62 वाँ अंक होगा। इस अंक के साथ ही 'हिन्दी चेतना' एक महत्त्वपूर्ण निर्णय ले रही है।

सम्मान देना और सम्मान लेना एक गौरवशाली परम्परा है। इस परम्परा का निर्वाह करना तलवार की धार और काँटों की राह पर चलना है। स्वदेश में तो कई संस्थाएँ इस तरफ कार्यरत हैं। यूके में इंदुकथा सम्मान के अतिरिक्त विदशों में और कोई संस्था यह जोखिम नहीं उठा रही। जोखिम इसलिए कहूँगा, सम्मानों की निष्पक्ष कार्यप्रणाली स्थापित करना और उस पर तटस्थ रहना जोखिम भरा कार्य ही होता है। विदेशों में हमारे सामने बुकर और नोबेल पुरस्कारों की लम्बी परम्परा है। भारत में भी कई प्रतिष्ठित सम्मान हैं, जो गरिमा के साथ अपनी परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। कुछ वर्ष पहले हिन्दी प्रचारिणी सभा ने; जो 'हिन्दी चेतना' प्रकाशित करती है, एक निर्णय लिया था, सुधा ओम ढींगरा को 'हिन्दी चेतना' के संपादन का कार्यभार सँभालने का और अब ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन ने 'हिन्दी चेतना' द्वारा साहित्यकारों और साहित्य के सम्मान का वैश्विक आयोजन शुरू कर नया अध्याय आरम्भ करने का महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया है। प्रिय पाठको ! आपको यह तो अब तक ज्ञात हो चुका है कि जनवरी 2014 के अंक से 'हिन्दी चेतना' उत्तरी अमेरिका के साथ-साथ भारत में भी प्रकाशित होने लगी है।

प्रबुद्ध विद्वानों की टीम जो सम्मानों के लिए नियुक्त की गई है, उन्होंने 2010 से 2013 तक के उपन्यास और कहानी संग्रहों पर विचार-विमर्श करके जिनका चुनाव किया है, वे हैं -

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान :
(समग्र साहित्यिक अवदान हेतु)
प्रो. हरि शंकर आदेश (उत्तरी अमेरिका -ट्रिनिडाड)

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान :
उपन्यास -कामिनी काय कांतारे (महेश कटारे) भारत
कहानी संग्रह -उत्तरायण (सुदर्शन प्रियदर्शिनी) अमेरिका

26 जुलाई 2014 को कैनेडा में इस आयोजन को सम्पन्न किया जाएगा। विधिवत् घोषणा के साथ आपको कार्यक्रम की सूचना भी दी जाएगी। कोशिश यही रहेगी कि ये सम्मान वही अन्तरराष्ट्रीय स्तर छुएँ, जिसकी कल्पना लेकर इन सम्मानों को शुरू किया गया है। यह सब आप मित्रों की शुभकामनाओं की देन है। मैं तो मजरूह सुल्तानपुरी के शब्दों में सिर्फ इतना कहूँगा-

मैं अकेला ही चला था जानिबे मंज़िल मगर
लोग साथ आते गए और कारवाँ बनता गया।

आपका,

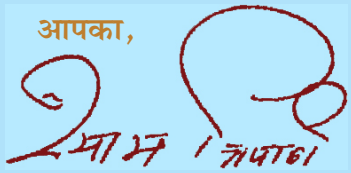

श्याम त्रिपाठी

उद्‌गार

बहुरंगी आनन्द का स्रोत

'हिन्दी चेतना' विभिन्न साहित्यिक विधाओं के समन्वय से बना है, जो बहुरंगी आनन्द का स्त्रोत है।

'आखिरी पन्ना' में सुधाजी ने प्रश्न उठाया है कि 'विदेश की अच्छाइयों का प्रभाव देश वासियों पर क्यों नहीं पड़ता?' संजय झाला के व्यंग्य से स्पष्ट है कि उन्होंने अपने संक्षिप्त अमरीका भ्रमण में इस देश को बड़ी बारीकी से देखा और सराहा है, पर व्यंग्य के रूप में उलटा ही कहा है। ऐसा लगता है कि सब कुछ समझते हुए भी लोग आदतन व्यवहार नहीं बदलते, कुत्ते की पूँछ टेढ़ी की टेढ़ी!

सुषम बेदी जी से 'साक्षात्कार' पढ़ कर अच्छा लगा। सुधा ओम ढींगरा और सुषम बेदी के वार्तालाप से सहज ही बेदी जी के व्यक्तित्व और गौरव पूर्ण साहित्यिक सफलता का परिचय मिलता है। फ़राह सैयद की कहानी 'पैरासाइट' बहुत शक्तिशाली है। इसमें लेखिका ने प्रेमिका, पत्नी की सहिष्णुता का सफल चित्र खींचा है। फ़राह सैयद को बधाई है। उनकी सजग नायिका रोज़मेरी बार-बार वही गलती नहीं करती। केविन उससे दुबारा पैरासाइट की तरह चिपक कर उसका शोषण नहीं कर सकता।

बधाई सहित,

मीरा गोयल (अमेरिका)

0

बहुत ही प्यारा अंक

'हिन्दी चेतना' का यह जनवरी-मार्च 2014 अंक बहुत ही प्यारा है। जल्दी-जल्दी सारे पन्ने पलट डाले, कुछ-कुछ बीच-बीच में पढ़े भी, बाक़ी फ़ुर्सत में बैठ कर पढ़ूँगी। लेकिन एक बात के लिए आपका धन्यवाद तो अभी ही करना चाहती हूँ। 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा गीत' पढ़कर तो बस मन झूम उठा। कभी-कभी बचपन की चीज़ें अचानक सामने आ जाएँ तो मन खुश हो जाता है, वापस दौड़ लगा लेता है उन पुरानी यादों की गलियों में। हिन्दी चेतना में यह गीत देख कर मुझे इतनी प्रसन्नता हुई कि मैं बयान नहीं कर सकती। आप यकीन नहीं करेंगे जैसे स्कूल में यह गीत गाया करते थे बस वैसे ही ऊँची आवाज में अकेले-अकेले पूरा गीत गाया, बहुत मज़ा आया, एक पल को समय मानो पीछे लौट गया था। यादों की उन भूली बिसरी गलियों में घुमा लाने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। शेफाली गुप्ता की कविता 'माँ' मन को छू गई। उर्मि कृष्ण की लघुकथा ये लोग बहुत अच्छी है, चित्र को उल्टा कर के देखें भी बहुत मनोरंजक लगा। अखिलेश तिवारी की ग़ज़ल का यह शेर 'इस कदर उलझे रहे हम अपने कारोबार में, फूल तितली बस पढ़े अख़बार में' बहुत खूबसूरती से आजकल भाग दौड़ भरे जीवन को चित्रित करता है। एक अच्छी पत्रिका के लिए हार्दिक धन्यवाद!

मंजु मिश्रा (अमेरिका)

0

उत्कृष्ट पठनीय सामग्री से सुसज्जित अंक

'हिन्दी चेतना' का नया अंक प्राप्त हुआ। विविध विधाओं में उत्कृष्ट पठनीय सामग्री से सुसज्जित अंक आकर्षक है। मंजु मिश्रा जी की क्षणिकाएँ बहुत अच्छी लगीं। कविताएँ, हाइकु, ग़ज़ल और लघुकथाएँ भी बेहद प्रभावी हैं। साक्षात्कार तथा स्त्री विषयक आलेख सारगर्भित प्रस्तुति हैं। वस्तुत: हिन्दी के प्रति आपका प्रेम और परिश्रम पत्रिका के भाव और कलेवर में परिलक्षित होता है। ऐसी पत्रिका में प्रकाशित होना मेरे लिए भी गौरव का विषय है; हृदय से धन्यवाद आपका। आशा करती हूँ आपका स्नेह इसी प्रकार मिलता रहेगा मुझे। नए वर्ष में पत्रिका-परिवार उन्नति के नित नए शिखर छू ले ऐसी अनन्त शुभ कामनाएँ !

ज्योत्स्ना शर्मा (भारत)

0

बहुत उम्दा अंक

अक्टूबर और जुलाई दोनों ही अंक बहुत उम्दा लगे, बहुत खास। नई सदी की कहानियों में किसी ने त्रिशंकु का नाम नहीं लिया, मुझे बेहद आश्चर्य है। मन्नू जी की कितनी ही कहानियाँ लाजवाब हैं। एक ख़ासी फेमिनिस्ट आवाज़। सुधा जी द्वारा सुशील जी का साक्षात्कार बहुत अच्छा है और जुलाई अंक में सुधा अरोड़ा जी से बातचीत भी बहुत खास। सुधा जी आपकी दोनों ही कहानियों के लिये बधाई देना चाहती हूँ, बहुत अहम मुद्दे उठाती हैं। कहानियों पर समीक्षात्मक लेख भी बहुत उम्दा। एक बार फिर हिन्दी चेतना टीम को, गुरुजनों को, श्याम त्रिपाठी जी को, अनेक शुभकामनाएँ।

पंखुरी सिन्हा (कैनेडा)

0

स्तुत्य प्रयत्न

आपकी पत्रिका ऑन -लाइन पढ़ने को मिली। उत्तम कोटि की सामग्री के साथ उत्तम कोटि की सज्जा लगाकर आप सोने में सुहागा डाल देती हैं। आपके प्रयत्न स्तुत्य हैं।

नरेन्द्र कुमार सिन्हा (अमेरिका)

0

सभी अंक संग्रहणीय

'हिन्दी चेतना' के बारे में मुझे जानकारी गर्भनाल पत्रिका के माध्यम से हुई, पत्रिका के सभी अंक पठनीय है एवं प्रत्येक अंक में सुधार परिलक्षित हुए हैं। आप लोगों को प्रयास से बहुत प्रसन्नता का अनुभव होता है। वस्तुत: आप लोग हिन्दी के लिए जो योगदान दे रहे हैं वह स्तुत्य है। आपके एक अंक में डॉ. फादर कामिल बुल्के के बारे में पढ़ा, बहुत ही रोचक जानकारी मिली। वस्तुत: आपके सभी अंक संग्रहणीय हैं।

रजनीश कुमार यादव (कोटा राजस्थान)

0

आपके जज़्बे को सलाम

'हिन्दी चेतना' का विशेषांक माह अक्टूबर-दिसम्बर २०१३ का अंक पढ़ा। इस काम के लिए आप को और हिन्दी चेतना की टीम को बहुत-बहुत बधाई। हिन्दी भाषा के लिए आपके जज़्बे को सलाम करता हूँ। अभी २२ फरवरी २०१४ को दिल्ली में एक कवि सम्मलेन था। जिसमें दो किताबों का लोकार्पण भी हुआ। वहाँ श्री नामवर सिंह से मेरी बात हिन्दी भाषा और आज के नौजवान पर हुई। आप हिन्दी भाषा के लिए जो काम कर रहे हैं वह क़ाबिले ज़िक्र है। मैं ख़ुद हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में लिखता हूँ; क्योंकि ये दोनों ही हिन्दुस्तानी भाषाएँ हैं। आप इसी तरह कैनेडा में हिन्दी भाषा के गुलाब खिलाते रहें।

मोहम्मद इरशाद (भारत)

0

समाज मेरे लेखन का उपादान कारण है...

डॉ. कविता वाचक्नवी

साक्षात्कार : डॉ. सुधा ओम ढींगरा

मेरा समालापक जिज्ञासु मन विशिष्ट एवं सुदृढ़ व्यक्तित्व को देख कर अक्सर आकर्षित हो जाता है, वार्तालाप को बेताब हो जाता है और प्रश्न मेरे मस्तिष्क में उछल-कूद मचाने लगते हैं। डॉ. कविता वाचक्नवी की सोच और स्पष्टवादिता का प्रभाव कहूँ, मैंने अपनी आगामी पुस्तक वैश्विक रचनाकार: कुछ मूल भूत जिज्ञासाएँ- २; जो साक्षात्कारों पर आधारित है, के लिए कविता जी से कई विषयों पर बातचीत की। भाषा पर उनकी पकड़, विभिन्न विषयों का ज्ञान, सटीक उत्तरों से भरपूर उनके वार्तालाप को पुस्तक के लिए तैयार कर रही थी, उसी में मेरा संपादक मन मचल कर लालची हो गया, सोचा इस समृद्ध वार्तालाप के कुछ अंश 'हिन्दी चेतना' में भी दिए जाएँ। पाठक मित्रो, पूरा साक्षात्कार तो आप पुस्तक में पढ़ेंगे ही, अभी इसके चुनिंदा अंश प्रस्तुत कर रही हूँ .....

प्रश्न: *कविता जी, हिन्दी चिट्ठाकारिता में आप कब और क्यों आईं ?*

उत्तर: वर्ष २००६ था वह, जब मैंने हिन्दी में पहला ब्लॉग बनाया था। पति द्वारा प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी में कंप्यूटर के लिए एक मैथेमेटिकल प्रोग्राम बनाया गया था वर्ष १९७८-१९७९ के आसपास। अत: विवाह के साथ ही कम्प्यूटर जीवन में आ गया था। १९९५ में नॉर्वे में जब बच्चे थोड़े बड़े हुए तो मुझे सबसे पहली बार तब हिन्दी तथा साहित्य से वंचित हो जाने का भाव अत्यन्त खला। नॉर्वे में यह सुविधा थी कि नगर की मुख्य लाइब्रेरी में कुछ हिन्दी पुस्तकें उपलब्ध थीं, मैंने एक-एक कर सारी उपलब्ध पुस्तकें जब पढ़ डालीं तो वहाँ बैठी महिला से पूछा कि क्या और पुस्तकें नहीं हैं ? उसने कहा मैं देख कर बताती हूँ और उसने मुझे कहा कि उनके डेटाबेस में लगभग डेढ़ हज़ार पुस्तकें हैं हिन्दी की, जो अलग-अलग नगरों आदि के पुस्तकालयों में रखी हैं। उसने मुझे अपनी ओर से इस सुविधा के बारे में भी बताया कि मुझे जो व जितनी पुस्तकें चाहिए वे मुझे उस नगर से यहाँ लाकर उपलब्ध करवाएँगे। आपको आश्चर्य होगा कि मैंने वे सब पुस्तकें ६-६ ८-८ कर मँगवाईं और पागलों की तरह पीछे पड़कर धड़ाधड़ पढ़ीं अंत में सूची की सब पुस्तकें समाप्त हो गईं तो मन सूना-सूना-सा हो गया। कंप्यूटर द्वारा मुझे हिन्दी से सम्बन्धित व्यक्तिगत सहायता का यह पहला अनुभव था। इस अनुभव ने मुझे कंप्यूटर के निकट खींचा, क्योंकि कम्प्यूटर द्वारा उपलब्ध जानकारी के कारण ही तुरत-फुरत देश-भर के अलग-अलग नगरों के पुस्तकालयों की पुस्तकों का पता चला था व मँगवाई जा सकीं। बाद में बच्चों को भारत में शिक्षा दिलवाने के लिए जब १९९८ में भारत में रहना शुरू किया तो तब से ही घर पर भी मेरे लिए निजी कंप्यूटर था ही। किन्तु उस समय भारत में ब्रॉडबैंड तो क्या, इन्टरनेट भी ठीक से न था, टेलीफ़ोन की तार को फ़ोन से हटाकर सिस्टम पर कुछ देर के लिए लगाती थी और सिस्टम से हटाकर टेलीफ़ोन पर अदल-बदल करना पड़ता था। फिर कुछ प्राईवट केबल-नेट भी आजमाए। अन्तत: भारत के पाँच महानगरों में सबसे पहले हाईस्पीड ब्रॉडबैंड की सूचना आई व बुकिंग शुरू हुई तो हैदराबाद में हम लोग सबसे पहले क्रेता थे अनलिमिटेड ब्रॉडबैंड के। जिसके बदले भारतीय दूरसंचार विभाग ने हमें एक निशुल्क नई फ़ोनलाईन भी साथ ही उपहार में दी थी। यद्यपि ब्लॉगिंग के प्रश्न से सीधा-सीधा इसका संबंध नहीं है किन्तु हिन्दी कम्प्यूटिंग की तकनीकी यात्रा का इतिहास है यह मेरे लिए। इस प्रकार देवनागरी में कम्प्यूटर की यात्रा शुरू हुई। उसके काफी पश्चात वर्ष २००६ में याहू की ब्लॉग सर्विस 'याहू ३६०' पर 'अथ' नाम से अपना ब्लॉग बनाया था। उन दिनों 'अक्षरग्राम' की सेवा हुआ करती थी और सभी लोग उस पर अपनी चर्चाएँ व शंकाएँ, संसाधनों की जानकारी आदि से जुड़े मुद्दों पर संवाद आदि किया करते थे, क्योंकि तब इने गिने २५-५० लोग थे संसार-में, जो यूनिकोड देवनागरी में लिख रहे थे और ब्लॉग चला रहे थे। अस्तु, 2007 के अंत में अपनी वह ३६० सेवा याहू ने बंद करने की घोषणा कर दी और २००८ में उसे बंद कर दिया। तब याहू मैश जारी हुआ और कुछ समय अपना ब्लॉग वहाँ

डॉ. कविता वाचक्नवी

पंजाबी (मातृभाषा), हिन्दी, संस्कृत, मराठी, अंग्रेज़ी की ज्ञाता हैं। एॅम.फिल. Sociolinguistics (स्वर्णपदक) हिन्दी में उक्त सैद्धांतिकी पर विश्व में पहला शोध, पीएॅच.डी. हैं। प्रकाशन हैं- 'महर्षि दयानन्द और उनकी योगनिष्ठा', 'मैं चल तो दूँ', 'समाज-भाषाविज्ञान : रंग-शब्दावली : निराला-काव्य', 'कविता की जातीयता', कविता, गीत, कहानी, शोध, 50 से अधिक पुस्तकों की समीक्षाएँ, संस्मरण, ललित निबंध, साक्षात्कार तथा रिपोर्ताज आदि विधाओं में देश-विदेश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेखन। 26 भारतीय भाषाओं की लेखिकाओं के स्त्रीविमर्श विषयक ऐतिहासिक कहानी संकलन 'हाशिये उलाँघती औरत' (25 वोल्यूम्ज) के 'प्रवासी कहानियाँ' खण्ड की सम्पादक हैं। कई सम्मानों से सम्मानित सम्प्रति 'विश्वम्भरा'- भारतीय जीवनमूल्यों के प्रसार की संकल्पना की संस्थापक-महासचिव, Examiner (हिन्दी)at University of Cambridge (CIE), ब्रिटेन, सलाहकार संपादक - 'माटी' (प्रगतिशील चेतना की संवाहक त्रैमासिक)।

संपर्क :

sb12@columbia.edu

संचालित किया किन्तु तत्पश्चात् माईक्रोसोफ्ट के स्पेसेज़; पर संहिता नाम से ब्लॉग बनाया। प्रारम्भ में याहू के साथ ही विकिया पर भी कुछ दिन ब्लॉग रखा पर अंत में गूगल की ब्लॉगर सेवा पर वर्ष २००८ के अन्त में 'विश्वम्भरा' नाम से पहला ब्लॉग बनाया फिर 'संहिता' बनाया। वे सब बाद में जल्दी ही नष्ट कर दिए और फिर नए सिरे से गूगल पर ८-१० ब्लॉग बनाए, जो अब तक हैं। एक वेबसाईट भी है। वर्ष २००७ में ही एक 'हिन्दी-भारत' नाम से याहूग्रुप भी गठित किया था जो अब भी सफलता पूर्वक चल रहा है। मूलत: देश-विदेश में बहुधा यात्राओं पर रहने के कारण अपना लेखन नेट पर रखना चाहती थी ताकि जहाँ चाहे उसे उपयोग कर सकूँ, किन्तु निजी उद्देश्य से शुरू की गई यह कम्प्यूटिंग और ब्लॉग-यात्रा तुरन्त ही देवनागरी, भारतीय वाङ्मय, संस्कृति तथा भारतीय भाषाओं के अभियान में रूपान्तरित हो गई। जो आज तक जारी है।

प्रश्न: *क्या चिट्ठाकारिता से साहित्यिक क्षुधा शान्त हो सकती है।*

उत्तर: यह प्रश्न बिलकुल वैसा ही है जैसे कोई कहे कि अमुक पत्रिका में या अमुक अखबार में लिखने से आपकी साहित्यिक क्षुधा शान्त होती है ? चिट्ठाकारिता का साहित्य से सम्बन्ध वैसा ही है जैसे किसी कार्यक्रम में किसी मंच पर जाना, किसी अखबार, टीवी, रेडियो या पत्रिका में रचना का प्रस्तुत प्रसारित हो जाना। ब्लॉग या चिट्ठाकारिता कोई विधा नहीं है, वह एक मंच है, एक माध्यम-मात्र है। आप कपड़े से लेकर दवा तक और सॉफ्टवेयर से साहित्य तक संसार का प्रत्येक विषय ब्लॉग पर पा सकते हैं। पता नहीं लोग यह भ्रम क्यों पाल लेते हैं कि ब्लॉग चलाना कोई साहित्य-सृजन है। हम भारतीयों का यह दुर्भाग्य है कि हिन्दी में केवल साहित्य ही लिखा जाता है; शेष सब कुछ हम अंग्रेज़ी के माध्यम से करते हैं; अत: शायद इसीलिए यह मान लिया जाता है कि हिन्दी में जो कुछ भी है वह सब साहित्य ही होगा। जैसा कि मैंने पहले भी बताया कि मेरे ब्लॉग मेरे निजी लेखन के माध्यम कदापि नहीं हैं। केवल एक ब्लॉग पर मैं अपने विचार लिखती हूँ, शेष सभी ब्लॉग वेब पत्रिका की तरह संचालित करती हूँ जिसमें शीर्ष लेखक तक प्रकाशित होते हैं। और तो और, फरवरी २००८ से अब तक मेरी अपनी वेब साइट http: www.hindi-bharat.com तक पर मेरे अपने तो मात्र चार-छह लेख ही होंगे। इसलिए ब्लॉगिंग मेरे लिए साहित्यिक परितृप्ति या अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं अपितु भाषा, लिपि, वाङ्मय व संस्कृति आदि के प्रति जागरूकता का अभियान है।

प्रश्न: *अंतर्जाल पर क्या लेखक बना जा सकता है ..?*

उत्तर: जी नहीं। मुझे लगता है ब्लॉगिंग से सम्बन्धित ऊपर के प्रश्नों के उत्तर से स्पष्ट हो गया होगा कि ब्लॉगिंग साहित्य-सृजन नहीं है। यदि केवल साहित्य से सम्बन्धित ब्लॉग्स की बात भी करें, तो लेखक इस प्रकार नहीं बनते। वास्तव में लेखक बनने के लिए सदा से व आज भी वे सभी अनिवार्यताएँ ज्यों की त्यों हैं जिन्हें भरतमुनि अपने 'नाट्यशास्त्र' में बता गए हैं। जिस व्यक्ति में वे सब हों, वही वास्तव में लेखक हो सकता है। हाँ ब्लॉग, जैसा मैंने पहले भी कहा, प्रस्तुति का एक माध्यम है। इस माध्यम के द्वारा मिलने वाले प्रोत्साहन और तज्जन्य उत्साह के चलते यदि निरन्तर लिखा जाए तो भरतमुनि की 'अभ्यास' वाली शर्त या अनिवार्यता अवश्य पूरी होती है। किन्तु शेष अनिवार्यताओं के अभाव में इसका कोई महत्त्व नहीं।

प्रश्न: *आप ने पहले - पहल साहित्यिक कलम कब पकड़ी ?*

उत्तर: अपने द्वारा शब्दों के माध्यम से कुछ रचे जाने का पहला ज्ञात अनुभव, जो स्मरण में है, वह लगभग ५-६ वर्ष की अपनी आयु का है, जब खेलते-खेलते पंक्तियाँ तुरन्त रचकर कुछ गीति जैसा बनाया करती थी। उसके अतिरिक्त गद्य रचने की अन्य स्मृतियाँ भी लगभग ८-९ वर्ष की आयु की हैं जब नाटक आदि खेलते हुए या घर में रामलीला खेलते हुए अगले दृश्य की प्रस्तुति में विलम्ब होने की स्थिति में बाल-दर्शकों को उलझाए रखने के लिए मंच पर अनायास कुछ भी नाटकनुमा या कहानीनुमा गढ़ कर सुना दिया करती थी। पश्चात् १०-११ वर्ष की आयु में पहली कविता लिखित रूप में रची व पिताजी को सुनाई जिसका शीर्षक था 'किनारे का पत्थर'। सम्भवत: लगभग १६-१७ वर्ष की आयु में रचनाएँ प्रकाशित होने लगी थीं।

प्रश्न: *गद्य और पद्य में से किस विधा में लिखना आप को सहज लगता है।*

उत्तर: मैं दोनों ही विधाओं में लिखती हूँ, और दोनों में ही बहुत सहजता से। हाँ, मूलत: कवि हूँ। किन्तु जिन कारणों से कविता लिखती हूँ, वे कारण मुझसे कहानी नहीं लिखवा सकते और जिन कारणों से कहानी लिखती हूँ वे कारण मुझसे ललित निबन्ध, संस्मरण या उपन्यास आदि नहीं लिखवा सकते। तो मेरे तईं मूलत: अलग-अलग विधा में लिखने के अलग-अलग कारक हैं। इन कारकों का स्वरूप इतना शक्तिशाली है कि ये प्रत्येक रचना का शिल्प या विधा ही तय नहीं करते, अपितु स्वरूप, संरचना और भाषा-शैली तक तय करते हैं।

प्रश्न: *हर कलाकार और रचनाकार कहीं न कहीं से प्रेरित होता है। आप के लेखन की प्रेरणा भूमि क्या रही है ?*

उत्तर: मेरा जन्म एक प्रतिष्ठित, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक व साहित्यिक भावधारा से अत्यधिक समन्वित परिवार में हुआ, जिसमें दादा जी गली की धरती तक पर कोयले से लाहौर में वर्ष १९३० से पूर्व लोगों को हिन्दी पढ़ना-लिखना सिखाते थे, हिन्दी सत्याग्रह में जेल में रहे। भारत का विभाजन हुआ तो परिवार को हिन्दी के लिए किस प्रकार की यंत्रणाएँ झेलनी पड़ीं उनका भयावह लम्बा इतिहास है, शायद ही वह इतिहास किसी पुस्तक में आया हो। पिताजी तो बृहद पंजाब के विभाजन से पूर्व ही भाषा-आंदोलन के नायक व लेखक रहे, साहित्य-संगम की स्थापना की, संयुक्त सरकार से भाषा के मुद्दे पर तनी रही, इसी कारण सरकार की यंत्रणाएँ भी हम भाई-बहन व माँ के साथ झेलीं व अन्तत: इन सबका दण्ड माँ के प्राण तक देकर चुकाया। हिमाचल में इन यंत्रणाओं के दौर में घर में लेखकों की निरन्तर गोष्ठियाँ होती थीं, (यशपाल को मैंने वहीं अपने बालपन में देखा था) पिता जी साहित्यकार होने के नाते व भाषान्दोलन के नायक होने के नाते इन गोष्ठियों में नायक होते थे, तो वे ही मेरे जीवन के भी नायक होते गए... उनके साथ उनके संघर्षों को देखते-झेलते उसी समय संभवत: निर्धारित हो गया होगा कि मैं उन्हीं के मार्ग पर चलती। माँ के न रहने के पश्चात् पिताजी ने मुझे गढ़ने के लिए जितना तप किया, ताप व कष्ट सहे, संसार का शायद ही कोई पिता वैसा कर पाए। इसलिए आज जो भी हूँ उन्हीं की बनाई हूँ। इसलिए पहली प्रेरणा तो यह अन्त: प्रेरणा है कि अपने पिता जी, पूर्वजों व आचार्यों से जो कुछ पाया है, उनका ऋण उतारने के लिए उसे आगे की पीढ़ियों को सौंपना है। इसी का एक अन्य पक्ष यह है कि होश सम्हालने से भी पूर्व से अन्याय के प्रतिकार, गलत-सही में भेद, मानवीयता के चरम आदर्श, राष्ट्रीयता,

सत्य, निर्भयता, ईमानदारी, श्रम, समाज की बुराई व कष्ट को बदलने का संकल्प, व्यवस्था व अनुशासन जैसी हज़ारों चीज़ें घुट्टी में दैनन्दिन जीवन में पिता जी ने दे दीं, सिखा दीं, बल्कि उनके अपने जीवन में ये उच्चतम आदर्श उपस्थित थे, जिनका गहरा प्रभाव पड़ा और ये सब व्यक्तित्व में कहीं गहरे जाकर गड़े हुए हैं। इनके चलते समाज से गहन सम्पृक्ति है, प्रत्येक छोटी-बड़ी चीज़ से प्रभावित होती हूँ और अपनी शक्ति-भर सब सँवारना चाहती हूँ, विद्रूप का निवारण करना चाहती हूँ। लिखना उसी प्रक्रिया का निमित्त है। तो यों, कुल मिलाकर आप कह सकती हैं कि निमित्त कारण के रूप में पिताजी का बोया बीज ही अन्त: प्रेरणा है व समाज के वे लोग जिनके पास अपनी व्यथा कहने-बताने या लिखने के लिए शब्द नहीं, अवसर नहीं, साधन नहीं, शक्ति नहीं, वे ही लेखन के उपादान कारण हैं; क्योंकि उनके लिए शब्द बुनने की चुनौती अपने भीतर हरदम अनुभव करती हूँ। एक घटना आपको सुनाती हूँ। मैं जब चार या पाँच बरस की थी, हिमाचल में रहते थे हम लोग, वहाँ उन दिनों काँच के ढक्कन लगे एक बक्सेनुमा आकार के डिब्बे में एक चूड़ी बेचने वाला कभी-कभार आता था। माँ ने हल्के हरे रंग की प्लास्टिक की चार छह चूड़ियाँ मेरे दोनों हाथों में पहनावा दीं। पिता जी सायंकाल लौटे तो मैंने दौड़ कर अपनी दोनों कलाइयाँ जोड़ कर उनके सामने कर दीं, सोचा जैसे माँ ने दोनों कलाई चूमी थीं तैसे ही पिताजी भी चूम लेंगे, किन्तु एक ही झटके में लाड़ करते पिताजी अवाक हो गए। उन्होंने झट-से माँ से तेल मँगवाया और वहीं का वहीं सारी चूड़ियाँ एक-एक कर उतार डालीं और कार्निस के ऊपर रखे रेडियो पर पहुँच से बहुत दूर रख दीं। जो वाक्य माँ से कहा वह कुछ यों था कि 'इन हाथों को जीवन-भर कलम पकड़नी है, उस कलम पर संसार-भर का बोझ होगा, ये हाथ चूड़ियाँ पहनने के लिए नहीं बने हैं, आगे से इन्हें भटकाना मत'। आज तक मैं दाहिने हाथ में कभी यदा-कदा कुछ पहनती भी हूँ तो बहुत असुविधापूर्ण ढंग से। लिखने आदि में चूड़ियाँ मुझे सबसे बड़ी बाधा लगती रही हैं, मन में शायद उसी घटना का यह प्रभाव हो। इसी प्रकार की एक और घटना है। मेरे पिताजी को नाना-नानी ने गोद ले लिया था, तो वे एकमात्र पुत्र थे उनके। मैं पहली संतान हुई तो गोद में लेते ही उन दादी जी ने पहला वाक्य कहा - 'इन्द्र ! मेरी पोती संसार की किस्मत लिखेगी या इसे जज बनाऊँगी ताकि सबके साथ न्याय के फैसले किया करेगी'। तो सुधा जी, प्रेरणा की भावभूमि वे लोग मेरे लिए पहले ही तय कर गए थे... वह है समाज और उसके सुख दु:ख।

प्रश्न: *आप कई देशों में रही हैं। प्रवासवास आप की रचनाशीलता के लिए कितना सहायक सिद्ध हुआ ?*

उत्तर: मैं बहुत भागशाली हूँ कि जो समाज मेरी प्रेरणा की भावभूमि है, वह बहुत विशाल है। जिन-जिन देशों में रही हूँ, वहाँ-वहाँ का समाज भी मेरे अपने समाज में सम्मिलित हो गया है। भारत में भी हिमाचल से केरल तक व कोलकाता से गुजरात तक असीमित घूमी हूँ, रही हूँ। तो इस तरह केवल हिन्दी-भाषी ही नहीं या केवल भारतीय ही नहीं अपितु विविध भाषाओं व विविध देशों का समाज मेरे भीतर साँस लेता है। इसलिए पहली सहायता तो यह समाज यों करता है कि इन सबके मुद्दे और सुख-दु:ख मुझे मिल जाते हैं, मेरे भीतर का लेखक इनके हर्ष में हर्षित होने का अधिकार पा जाता है तो इनकी समस्याओं व न्यूनताओं पर विचलित भी होता है। यह विचलित होना मेरी संवेदनशीलता को जाग्रत रखता है। फिर प्रकृति, बिम्ब, संस्कृति-सभ्यता की भिन्नता, सामाजिक जीवन के अन्तर आदि ढेरों और सहयोगी उपादान मिलते हैं।

प्रश्न: *लेखक की रचनाशीलता में आप समाज की भूमिका को किस रूप में देखती हैं ?*

उत्तर: मैं सबका तो नहीं कह सकती, क्योंकि सबकी अपनी-अपनी रचनाशीलता में समाज की भूमिका अलग-अलग होती होगी, किन्तु मेरे लिए समाज मेरे लेखन का उपादान कारण है मैंने पूर्व ही में कहा है। यही समाज मेरी संवेदना को जीवित रखता है, छूता है, झिंझोड़ता व उकसाता भी है। इसी समाज के चरित्र शब्दों में ढलते हैं। यों केवल लेखक ही नहीं अपितु प्रत्येक व्यक्ति के निर्माण और व्यक्तित्व में समाज और उसके परिवेश की ही मुख्य भूमिका होती है, व्यक्ति इनसे कमोबेश प्रभावित होता है, इन से सीखता-समझता है, समाज हमें चुनौतियाँ थमाता है तो हम उनसे पार उतरने की युक्ति सीख जाते हैं, लेखकीय विवेक को जाग्रत रखता है। यद्यपि आज निरन्तर इसके अपवाद आप व हम देख रहे हैं किन्तु ये जो अनगिन अपवाद हैं, ये कभी कालजयी साहित्य नहीं रच सकेंगे, इतना सुनिश्चित है। कालजयी साहित्य की अनिवार्य शर्त है कि समाज हमारे लेखकीय विवेक का नियामक रहे। समाज से मूलत: मेरा आशय लोक से है। साहित्य का चरम उद्देश्य ही 'लोकमंगल' कहा गया है। तो इस तरह से रचनाशीलता और कृतित्व का साधन भी लोक है और साध्य भी लोक ही।

प्रश्न: *क्या लेखक समाज का स्वरूप बदल सकता है।*

उत्तर: जी हाँ। किन्तु इस तरह से नहीं कि मानो अभी कोई अध्यादेश जारी हुआ और अभी लागू हो गया। अपितु लेखक समाज का हृदय परिवर्तन कर भीतर से गम्भीर परिवर्तन लाता है, वह समाज के चिन्तन को प्रभावित करता है। निराला की 'जागो फिर एक बार' की अनुगूँज कितने हृदयों की शक्ति बनी होगी, कौन जानता है! दिनकर की 'श्वानों को मिलता दूध दही..' ने कितनों को झिंझोड़ा होगा उसका कोई हिसाब नहीं लगा सकता, हजारी प्रसाद द्विवेदी जब लिखते हैं कि 'स्त्री के दु:ख इतने गम्भीर होते हैं कि ...' या महादेवी जब कहती हैं कि 'विवाह सार्वजनिक जीवन से निर्वासन न बने...' तो इन शब्दों ने निस्संदेह समाज के मनो-मस्तिष्क को बदला।

प्रश्न: *न्यू मीडिया के बारे में आप की क्या राय है।*

उत्तर: न्यू मीडिया सूचना-तकनीक का विस्फोट है। यह इतना शक्तिशाली व समर्थ माध्यम है कि इसके द्वारा हम बहुत बड़े-बड़े सार्वजनिक, सांस्कृतिक, भाषिक आदि लक्ष्यों में सहायता ले सकते हैं, उनकी दीर्घजीविता व विस्तार सुनिश्चित कर सकते हैं। एक सामाजिक सम्वाद स्थापित कर सकते हैं, शिक्षा, समाज-सुधार व जागरूकता के लिए इसका उपयोग कर सकते हैं किन्तु खेद का विषय है कि हिन्दी वाले अभी इसकी सभी शक्तियों का दोहन नहीं कर पा रहे, अत: वे इसके सही उपयोग से बहुत दूर भी हैं। न्यू मीडिया का ८५प्रतिशत अभी इसकी शक्ति को पहचाना नहीं है, पहचाना है तो सुदूरगामी सकारात्मक उपयोग से बहुत दूर है। ८५प्रतिशत की यात्रा अभी शेष है। यह विषय इतना गम्भीर है कि इस पर एक अलग चर्चा बहुत देर तक की जा सकती है। पर वह कभी फिर अलग से सही।

सही कहा कविता जी, इस विषय पर अलग से चर्चा होगी..।

❐

Beacon Signs

1985 Inc.

7040 Torbram Rd.Unit # 4, Mississauga, ONT.L4T3Z4

Specializing In :

Illuminated Signs Awnings & Pylons
Channel & Neon Letters

Banners
Silk Screen

Arthitectural Signs
Vehicle Graphics
Engraving

Design Services

Precision CNC Cutout Letters
(Plastic, Wood, Metal & Logos)

Large Format Full Colour Imaging System
Sales - Service - Rentals

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel:(905) 678-2859 Fax :(905) 678-1271

Email: beaconsigns@bellnet.ca

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों की घोषणा

प्रो. हरिशंकर आदेश को समग्र साहित्यिक अवदान हेतु 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान' तथा महेश कटारे को उपन्यास कामिनी काय कांतारे एवं सुदर्शन प्रियदर्शिनी को कहानी संग्रह उत्तरायण हेतु 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान' दिया जाएगा

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन ने 'हिन्दी चेतना' द्वारा प्रारंभ किये गए साहित्यकारों और साहित्य के सम्मानों हेतु प्रबुद्ध विद्वानों की टीम जो नाम चयन के लिए नियुक्त की गई थी ने 2010 से 2013 तक के उपन्यास और कहानी संग्रहों पर विचार-विमर्श करके जिनका चुनाव किया है, वे हैं -'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान' : (समग्र साहित्यिक अवदान हेतु) प्रो. हरि शंकर आदेश (उत्तरी अमेरिका -ट्रिनिडाड), 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान': उपन्यास-कामिनी काय कांतारे (महेश कटारे) भारत, कहानी संग्रह -उत्तरायण (सुदर्शन प्रियदर्शिनी) अमेरिका। जुलाई माह में कैनेडा में इस आयोजन को सम्पन्न किया जाएगा। पुरस्कार के अंतर्गत तीनों रचनाकारों को शॉल, श्रीफल, सम्मान पत्र, स्मृति चिह्न तथा प्रत्येक को पाँच सौ डॉलर (लगभग 31 हज़ार रुपये) की सम्मान राशि प्रदान की जाएगी। साथ ही भारत से सम्मानित होने जा रहे रचनाकार को भारत से कैनेडा आने जाने का हवाई टिकिट, वीसा शुल्क, एयरपोर्ट टैक्स प्रदान किया जाएगा एवं कैनेडा के कुछ प्रमुख पर्यटन स्थलों का भ्रमण भी करवाया जाएगा।

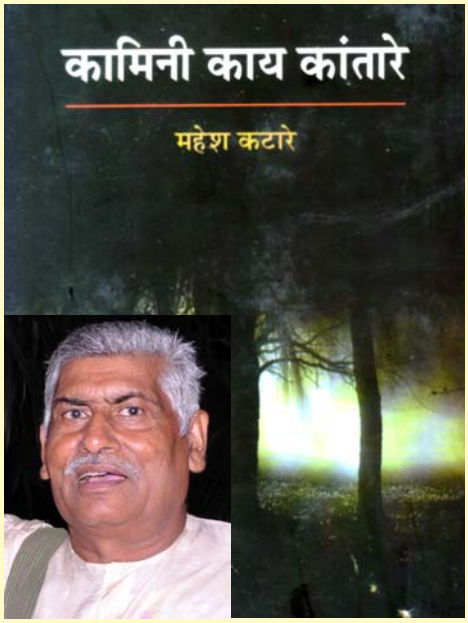

महेश कटारे

प्रकाशित कृतियाँ : उपन्यास: कामिनी काय कांतारे दो खण्डों में। कहानी संग्रह : समर शेष है, इतिकथा-अकथा, मुर्दा स्थगित, पहरुआ, छछिया भर छाछ। नाटक: महासमर का महारथी, अंधेरे युगांत के, अनेक बाल नाटक तथा नृत्य नाटिकाएँ लिखीं। यात्रावृत : पहियो पर रात दिन। पुरस्कार एवं सम्मान : सारिका सर्वभाषा कहानी व प्रेमचंद कथा प्रतियोगिता में प्रथम। कथाक्रम सम्मान, वागीश्वरी सम्मान, साहित्य परिषद व साहित्य अकादमी के मुक्तिबोध व सुभद्राकुमारी चौहान पुरस्कार तथा कुछ अन्य।

निवास: ग्वालियर, म.प्र. (भारत)।

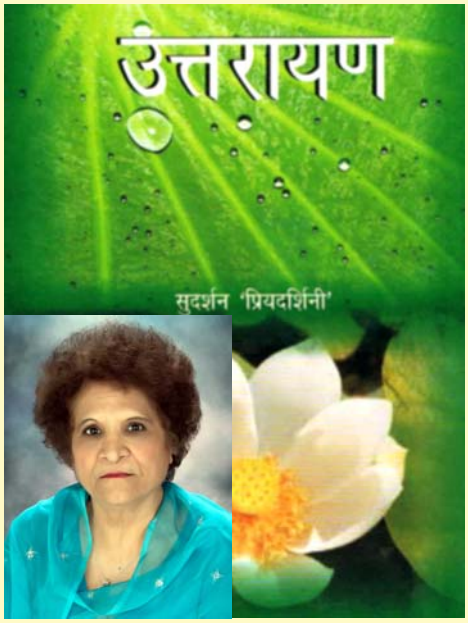

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

प्रकाशित कृतियाँ : उपन्यास: सूरज नहीं उगेगा, जलाक, रेत के घर, न भेज्यो बिदेस। कहानी संग्रह : उत्तरायण। कविता संग्रह: शिखंडी युग, बराह, यह युग रावण है, मुझे बुद्ध नहीं बनना। पंजाबी कविता संग्रह: मैं कौन हाँ। संपादन : फ्रेगरेंस (अंग्रेज़ी पत्रिका)। विशेष : ओहायो में रेडियो, टीवी कार्यक्रमों का संचालन । ओहायो में हिन्दी और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान । पुरस्कार एवं सम्मान : कहानी 'सन्दर्भहीन' हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत। महादेवी पुरस्कार, महानता पुरस्कार।

निवास : अमरीका की ओहायो नगरी में।

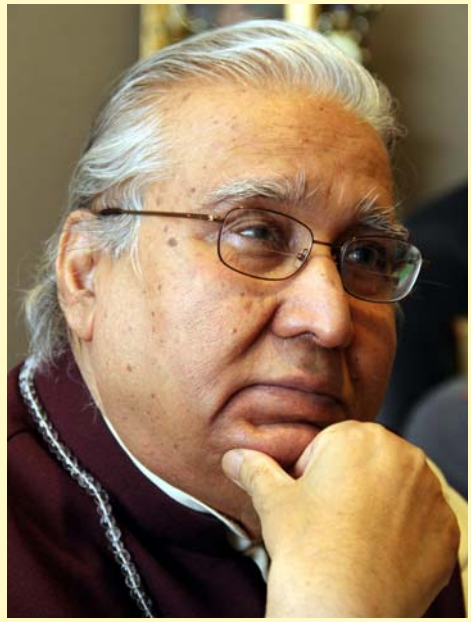

प्रो. हरिशंकर आदेश

प्रकाशित कृतियाँ: 180 से अधिक। महाकाव्य: अनुराग, शकुन्तला, महारानी दमयन्ती, निर्वाण। मुक्तक एवं खण्ड काव्य: मनोव्यथा, निराशा, रवि की भाभी (हास्य-व्यंग्य), मन की दरारें, लहू और सिंदूर, आकाश गंगा, रजनीगंधा, प्रवासी की पाती भारत माता के नाम, निर्मल सप्तशती आदि छ: सप्तशती, गीत रामायण, शतदल, शरद: शतम् आदि। कथा साहित्य: रजत जयन्ती, निशा की बाहें, सागर और सरिता आदि। नाटक: देशभक्ति, सूरदास, निषाद कुमार, अशोक वाटिका, शबरी। उपन्यास: निष्कलंक, गुबार देखते रहे। निबन्ध: झीनी झीनी बीनी चदरिया, ज्योति पर्व।

निवास: कैनेडा, अमेरिका और ट्रिनीडाड में।

पापा का फेसबुक अकाउंट

मनमोहन गुप्ता मोनी

मैं जब भी किसी दुविधा में होता, मुझे पापा में एक ऐसा शख्स दिखाई देता जो मुझे दु:ख-दर्द से सहज ही निजात दिला सके। जब स्कूल से कॉलेज पहुँचा तो मानो मेरे पंख ही लग गये थे। पापा ही थे; जिनकी वजह से मैंने उड़ान भरी। कभी यह अहसास ही नहीं हुआ कि घर में किसी प्रकार की कोई तंगी है। मैं पापा से शर्ट की बात करता, अगली पहली तारीख को ठीक वैसी ही शर्ट मेरे सामने होती। मेरे दोस्तों की लम्बी फेहरिस्त को मेरे पापा बखूबी याद रखते। शाम को ज़रा भी देर हो जाती तो स्कूटर उठाते और पहुँच जाते मेरे दोस्तों के घर। मुझे तब उनकी यह बात -थोड़ी बुरी ज़रूर लगती थी, कि मैं अब बच्चा थोड़े ही रह गया हूँ। लेकिन जैसे-जैसे उम्र आगे बढ़ती है, तो यह अहसास होने लगता है कि वाकई मैं पहले छोटा था। मुझे पापा की हर वो बात ठीक लगने लगती जिसके बारे पहले मैं सोचता कि 'पापा यूँ ही कहते रहते हैं।' मुझे मम्मी की हर बात अब ठीक लगने लगती; क्योंकि उसे तो पापा की कोई भी बात कभी भी गलत नहीं लगी। मैं पहले भले ही पापा की किसी बात का विरोध करता लेकिन मम्मी समझाने की कोशिश में बताती कि पापा का कहने का यह अर्थ था, मुझे ठीक लगने लगता। लेकिन मैं यह ज़रूर सोचता कि अगर पापा का कहने का यह अर्थ था तो पापा ने इसी अर्थ की तरह ही क्यों नहीं कहा।

पापा के साथ दुलार और नोंक- झोंक के चलते कब वोट देने की मेरी उम्र आ गई, न तो पापा को पता चला और न ही मुझे इसका अहसास हुआ। नगरपालिका के चुनाव होने थे और वोट बनाने वाले घर आए तो पता चला कि अरे मैं तो बालिग होने वाला हूँ। पापा बहुत खुश हुए कि मैं आज से ठीक सप्ताह बाद बालिग हो जाऊँगा। पापा की खासियतों में एक बात यह भी थी कि वे हर जश्न पहली तारीख को तनख्वाह मिलने पर ही मनाया करते थे। मेरा जन्मदिन हालाँकि २५ जुलाई को था लेकिन उन्होंने एक अगस्त को केक काटा। उनका यह तरीका था। शायद नौकरीपेशा लोगों के लिए मजबूरी हो लेकिन हमें तो हर पहली तारीख ही किसी त्योहार से कम नहीं लगती थी। मैं और पापा जब कहीं बाहर जाते तो लोग पापा से यही कहते कि बिल्कुल तुम्हारे पर गया है। आज भी उनकी तस्वीर देखता हूँ तो देर तक उन पर निगाहें टिका नहीं पाता। मेरी आँखें धुँधला जाती हैं। मैं उनसे ही पूछने लगता हूँ- 'पापा-अभी क्या तुम्हारे जाने की उम्र थी?'

मुझे यह पता था कि पापा अब नहीं हैं, मेरे किसी भी सवाल का जवाब वे दे नहीं सकते लेकिन मैं भी आख़िर अपने पापा का बेटा था-मुझे पता होता था कि पापा मेरे सवाल का क्या जवाब देंगे। मैं खुद ही बोल देता था जवाब। रात के ११ बजे मैं किसी उलझन में था। मुझे अचानक याद आया कि अगर पापा का नाम लेकर 'हाँ' या 'न' वाली एक पर्ची उठाऊँ तो समस्या का हल हो सकता है। मैंने कागज़ की दो छोटी- छोटी पर्चियाँ बनाईं एक पर लिखा 'हाँ' और दूसरी पर 'न'। आँखें बंद की और पापा का ध्यान लगाकर एक पर्ची उठा ली। उस पर 'हाँ' लिखा था। बस इसी पर्ची ने मुझमें वो जोश भर दिया कि पूरी रात बैठा रहा। सुबह होने ही वाली थी कि माँ आ गई और कहने लगी 'अभी सोया नहीं।'

'आज सुबह इंटरव्यू देने जाना है माँ।''

'तो, नींद लेना भी तो ज़रूरी है न'

'माँ, यह नौकरी मुझे ज़रूर मिलेगी।'

'जहाँ आत्मविश्वास हो, वहाँ सफलता ज़रूर मिलती है।'

मैं माँ को कुछ नहीं बता पाया कि मैं किस आधार पर यह बात कह रहा हूँ। मैं पापा की बात करके माँ को उदास देखना नहीं चाहता था।

मुझे नौकरी मिल गई थी। माँ और मैं जब रात को इकट्ठे बैठते तो हमारे बीच बातचीत के दो ही प्रसंग होते थे। एक पापा या फिर मेरी शादी। मैं भी पापा के बारे में अधिक से अधिक बातें करना चाहता था और मम्मी को भी पापा के बारे में ही अधिक से अधिक बातें करके सुख मिलता था। लेकिन हम दोनों ही पापा के बारे में बातें उतनी नहीं करते थे, जितनी चाहते थे। मम्मी सोचती कि पापा के बारे में ज़्यादा बातें करके मैं अतीत में लौट

मनमोहन गुप्ता मोनी हिन्दी के प्रतिष्ठित कहानीकार हैं। गली नं. ५, कच्ची अमिया वाला पेड़, उस दिन माँ कहाँ रहेगी (कहानी संग्रह), तुम फिर चले आए (नाटक संग्रह), परत-दर-परत (नाटक), डॉ. मनमोहन सिंह, सोनिया गाँधी, कुछ सुमन से (बालोपयोगी पुस्तकें) हैं। उसका लौटना, पीपल सूखा नहीं है, कच्ची अमिया वाला पेड़ मोनी जी की टेलीफिल्में हैं। कई पुरस्कारों से पुरस्कृत। सम्प्रति दैनिक ट्रिब्यून चंडीगढ़ में मुख्य उप सम्पादक।

सम्पर्क: कोठी नं. ५६, सिल्वर सिटी एक्सटेंशन,चंडीगढ़-अम्बाला रोड,जीरकपुर-१४० ६०३(जिला मोहाली -पंजाब)

मोबाइल : ०९८७२२ ०६१३५

ईमेल : monitribune@gmail.com

जाऊँगा और कई दिन तक दुखी रहूँगा। मैं भी ऐसा ही सोचता था कि पापा के बारे में अधिक बातें की तो मम्मी दिनभर उदास रहेगी। हम दोनों ही एक-दूसरे को उदास नहीं देखना चाहते थे।

एक दिन मम्मी ने कहा- 'विपिन, अब तेरी शादी हो जानी चाहिए'

'क्यों मम्मी।'

'क्या मेरे सवाल का यह जवाब है? मैं तुमसे सवाल पूछ रही हूँ-इसका जवाब माँग रही हूँ और तू है कि मेरे सवाल पर ही सवाल कर रहा है? अब तेरी उम्र हो गई है शादी लायक।'

'ठीक है मम्मी, जैसे ही कोई अच्छी लड़की मिली, तुरंत शादी पक्की समझो'

'कहे तो बात चलाऊँ कहीं?'

'माँ क्या बात करती हो...'

विपिन आज फिर दुविधा में था। माँ को कैसे बताए कि वह जिस संजना से प्यार करता है, उससे शादी नहीं कर सकता। संजना के परिवार वाले नहीं चाहते कि उनकी बेटी विपिन से शादी करे। संजना और विपिन एक ही ऑफिस में काम करते हैं। विपिन अपने बैडरूम में चला गया। उसे नींद नहीं आ रही थी। उसने लैपटॉप ऑन किया। नेट खुलते ही स्क्रीन पर 'फादर्स डे' के ढेरों मैसेज देखकर उसे पापा का ख्याल आया। उसने पापा का फेसबुक अकाउंट खोला। अब उसे याद आ रहे थे वे दिन जब उसने फेसबुक पर पापा का अकाउंट बनाया था। अपडेट भी वह खुद किया करता था। पापा के दोस्तों की लिस्ट लम्बी होती चली गई थी। पापा को गुज़रे इतने साल हो गए लेकिन विपिन ने उन्हें फेसबुक पर ज़िंदा रखा। पापा के फेसबुक दोस्तों को नहीं पता था, जिससे वे चैट करते हैं-मैसेज भेजते हैं, वह अब इस दुनिया में नहीं है। फादर्स डे पर मैं कुछ ज़्यादा ही मायूस हो गया था। 'फादर्स डे' पर आये ढेरों मैसेज मैंने डायरी में लिख लिये। उनमें से एक-एक मैसेज को मैं बड़े ध्यान से पढ़ता था। पापा होते तो उन्हें एक मैसेज मोबाइल पर भेजता।

मम्मी ने एक दिन मेरे मोबाइल में संजना का एक मैसेज पढ़ लिया। माँ ने जब संजना के बारे में पूछा तो मैंने कुछ नहीं छिपाया। साथ ही यह भी बता दिया कि संजना बहुत अच्छी लड़की है। मेरे साथ काम करती है लेकिन उसकी मम्मी यह शादी को राज़ी नहीं है। मम्मी ने पूछ लिया-'संजना के

पापा क्या करते हैं?'

'वो नहीं हैं-'

'मतलब'

'उनको गुज़रे कई साल हो गए हैं। संजना की मम्मी ने ही उसे इस लायक बनाया है...। संजना नहीं चाहती कि वह ऐसा कोई काम करे, जिससे उसकी माँ का दिल दुखे।'

'संजना से कभी मिलवा मुझे'

'ज़रूर मिलवाऊँगा।'

'और उसकी मम्मी से भी। क्या तुम मिले हो उनसे?'

'हाँ, एक बार मिला था। संजना की बर्थ-डे पार्टी में गया था। वहीं मिली थीं।'

'तुममें क्या कमी दिखाई दी उनको? तुम पढ़े-लिखे हो, अच्छा कमाते हो। तुम्हारे पापा अच्छा मकान छोड़ कर गए हैं तुम्हारे लिए। हाँ, बस एक मैं हूँ तुम्हारे साथ-। कहीं यही तो कमी नहीं दिखाई दी उन्हें?'

'नहीं माँ, कैसी बातें करती हों।'

'तो और -क्या कमी हो सकती है?'

'वे लोग ब्राह्मण हैं-और हम बनिये।'

'बस-इतनी सी बात?'

'आजकल कौन इन बातों पर विचार करता है। मैं भी तो पंजाबी खत्री थी-तुम्हारे पापा ने तो कभी नहीं सोचा था कि वह बनिया परिवार से हैं। तुम एक काम करना, संजना की मम्मी को एक बार घर बुलाकर लाना।'

'लेकिन मम्मी वे और उनके परिवार के लोग नहीं मानेंगे।'

'तुम बालिग हो-अपना अच्छा बुरा सोच सकते हो।'

'लेकिन मम्मी, संजना नहीं चाहती कि उसकी मम्मी या परिवार के लोग उसकी वजह से परेशान हों।'

हालाँकि विपिन की मम्मी शुरू से ही यह कहा करती थी कि जहाँ बच्चे खुश रहें, हम तो उसी में खुश रहेंगे। विपिन भी जानता था कि मम्मी-पापा कभी भी उसकी खुशी के आगे किंतु-परंतु नहीं लगाएँगे। वह उठा और अपने बेडरूम में जाने लगा। मम्मी ने कह दिया-'अगर ऑफिस का कोई काम न हो तो यहीं मेरे साथ सो जा-।'

'मम्मी मुझे ऑफिस का कोई काम तो नहीं है लेकिन मैं नेट पर थोड़ा वक्त ज़रूर लगाता हूँ-आपको परेशानी होगी।'

'नहीं-मुझे परेशानी क्यों होने लगी-। कभी कभी सोचती हूँ कि मैं भी तुमसे थोड़ा बहुत इंटरनेट सीख लूं?'

'बिल्कुल-आखिर पापा ने भी तो सीख लिया था।'

'तेरे पापा ऑफिस में काम करते थे-थोड़ा बहुत तो वहीं सीख गए थे।'

विपिन आज मम्मी के साथ ही बेड पर बैठ गया। उसे लगा कि पापा के बिना उनका परिवार कितना सीमित हो गया है। वह मम्मी के उदास चेहरे को देखकर सोचने लगा कि आज के बाद कभी अपने बेडरूम में अकेला नहीं सोएगा-यहीं मम्मी के साथ सोएगा। दोनों ने वहीं बेड पर खाना खाया और विपिन अपने लैपटाप पर काम करने लगा। मम्मी वहीं बेड पर एक किनारे बैठकर टीवी देख रही थी।

विपिन कुछ ज़्यादा ही परेशान था। संजना को लेकर वह आशंकित भी था। उसे पापा की याद अधिक आ रही थी। उसे पता था कि अगर आज पापा ज़िंदा होते तो कोई हल ज़रूर निकाल लेते लेकिन ऐसा संभव नहीं था। उसने संजना के नाम एक मैसेज लिखा और उसे भेज दिया। मम्मी भी टीवी देखते-देखते सो गई थीं। उसने टीवी बंद किया और पापा का फेसबुक अकाउंट खोल लिया। पापा के चार दोस्तों के बर्थडे थे। उन्हें मुबारकबाद दी। फिर एक इनवीटेशन था। दोस्ती के लिए। मैंने

उसे मंज़ूर कर लिया। यह किसी महिला चित्रा का था, जोकि मेरठ की रहने वाली थी। पापा भी मेरठ में पढ़ा करते थे। वह भी उसी कॉलेज की थी।

मुझे पापा का फेसबुक अकाउंट अपडेट करना अच्छा लगता था। पापा का बर्थ-डे होता तो ढेरों मैसेज आते, मैं उनका जवाब देता। पापा के फेसबुक दोस्तों को यह पता नहीं था कि जिसे वे मुबारकबाद दे रहे हैं वह अब नहीं रहा। लेकिन मेरे पापा फेसबुक पर कायम थे। मुझे इस बात का अहसास होने लगा कि उम्र और वक्त के साथ ज़रूरतें भी बदल जाती हैं। पापा जिस फेसबुक को समय बर्बाद करने वाला कहते थे, आज अगर होते तो उन्हें पता चलता कि इससे बढ़कर ज़रूरी तो कुछ भी नहीं है। मैं रोज़ पापा को फेसबुक के माध्यम से देखता हूँ। उनके दोस्तों से बात करता हूँ। पापा के उन दोस्तों से भी जिन्हें पापा कभी जानते तक नहीं थे और जो पापा के जाने के बाद बने थे।

संजना भी फेसबुक पर थी। मैंने उसे कहा कि कोई हल अवश्य निकल आएगा। उसने मुझे लिखा, कि तुम कहा करते थे न कि तुम्हारे पापा के पास हर समस्या का हल होता है, अगर आज होते तो क्या हमारी इस समस्या का भी हल उनके पास होता। मैंने उसे केवल एक शब्द लिखा 'हाँ'। लिखा ही था कि मम्मी जाग गईं कहने लगी- 'अब सो जा, रात अधिक हो गई है।'

मैंने लैपटाप बंद किया, लाइट ऑफ की और लेट गया। उस रात मैं ठीक से सो नहीं पाया। मुझे नहीं पता था कि मैंने संजना को कैसे लिख दिया था कि पापा होते तो उनके पास इस समस्या का भी हल होता। मम्मी जानती थी कि मैं इन दिनों काफी उधेड़बुन में हूँ। मम्मी ने कभी भी अपनी राय नहीं दी थी। उन्हें हर बात स्वीकार होती, जो हमें यानी पापा और मुझे मंज़ूर होती। पापा और मेरी हर बात उनके लिए सही होती थी। पापा के बाद उन्होंने कोशिश ज़रूर की कि हर बात पर अपना नज़रिया प्रस्तुत करें लेकिन बात वहीं खत्म हो जाती जब मैं अपनी राय देता। मम्मी के लिए अब मेरी हर राय ठीक होती। मम्मी किस प्रकार से संजना के घरवालों को मनाएँगी, यह मैं सोच नहीं पा रहा था। कुछ ऐसा सोचते- सोचते सुबह हो गई।

मैं ऑफिस पहुँचा तो मेरे दिमाग में रोज़ की ही तरह आज भी संजना का ख्याल रह-रह कर आ रहा था। मैं तय नहीं कर पा रहा था कि संजना के घर वालों को किस प्रकार बताऊँ कि इस ज़माने में जात-पात को भला कौन पूछता है। संजना और मैं अच्छी नौकरी पर हैं और एक दूसरे को अच्छी तरह से जानते भी हैं।

मैंने अपना कंप्यूटर 'लॉग-इन' किया और फेसबुक अकाउंट खोला। चित्रा का मैसेज था। मैंने इस बार भी पापा को भेजा गया मैसेज बड़ी उत्सुकता से पढ़ा। लिखा था कि अब तो फेसबुक ने बरसों पुराने लोगों को मिला दिया है। चित्रा ने लिखा था कि उसे आज भी याद है कि पापा और वह किस प्रकार कॉलेज की कैंटीन में चाय के साथ ब्रेड पकौड़े खाया करते थे। फेसबुक पर पापा को देखकर वह बहुत खुश थी। मैंने भी पापा की तरफ से उन्हें उत्तर दे दिया कि मुझे भी तुम्हें यहाँ देखकर अच्छा लगा। मैं चित्रा को जानता तो नहीं था लेकिन उनके बारे में और जानने की उत्सुकता मुझमें बढ़ गई थी। मैंने लिख दिया कि और बताओ- क्या क्या याद है कॉलेज के दिनों की। परिवार में कौन-कौन है?

मैंने चित्रा को मैसेज भेज दिया था। उनके उत्तर की प्रतीक्षा थी मुझे। अगर पापा होते तो शायद उन्हें इतनी प्रतीक्षा न होती जितनी मुझे थी। मैंने अपनी फेसबुक खँगाली, संजना ने कुछ फोटो अपलोड किये थे। एक उदास सा संदेश भी था। मैंने इस मैसेज का कोई उत्तर नहीं दिया। आज मैंने संजना के सभी मैसेज हटा दिये थे। मुझे ऐसा लगने लगा था कि संजना और मेरा रिश्ता बस यहीं

विराम ले लेगा। फिल्मी कहानियों की तरह न तो बगावती तेवर संजना के ही थे और न ही मेरे।

अचानक मेरे कमरे में किसी ने नॉक किया। संजना थी। वह सामने आकर बैठ गयी। संजना और मैं दोनों ही समझ नहीं पा रहे थे कि समस्या का समाधान कैसे हो। मैंने फेसबुक का नोटिफिकेशन देखा-चित्रा ने मैसेज भेजा था। मैं उसे पढ़ने में व्यस्त हो गया। उसने लिखा था कि पति को गुज़रे आठ बरस हो चुके हैं। एक बेटी है जो नोएडा में इंफोसिस में सॉफ्टवेयर इंजीनियर है। उसका अफेयर वहीं किसी के साथ चल रहा है। वह तो चाहती है कि उसी से शादी करे। लेकिन मैं दुविधा में हूँ। उसके दादा-दादी नहीं चाहते कि यह शादी हो। उन्होंने उसे पाल पोसकर बड़ा किया है, मैं उनकी किसी भी बात का विरोध नहीं कर सकती।

इतने में संजना बोल पड़ी थी-'किसका मैसेज है?'

'किसी का है। लोग भी बेवजह मैसेज भेजते रहते हैं।'

'अच्छा मैं चलती हूँ। लंच में मिलेंगे।' ऐसा कहकर वह चली गई थी। मैंने पापा की ओर से चित्रा को जवाब दे दिया था। उसे लिखा था कि हमने अपनी ज़िदगी जी ली। बच्चों को उनकी ज़िदगी अपनी मर्ज़ी से जीने का हक दिया जाना चाहिए। जिन अभावों में हम जिये, कम से कम हमारे बच्चे तो वह दंश न झेलें। मैंने चित्रा को मैसेज भेज दिया था। बिना उम्मीद के कि वह इसका उत्तर भी देगी। इसके बाद मैं अपने काम में व्यस्त हो गया। संजना और मैंने लंच इकट्ठे किया। अपनी-अपनी समस्याएँ साझा कीं। शाम को छुट्टी से पूर्व फेसबुक पर निगाह डाली, पापा की फेसबुक पर चित्रा का उत्तर आया था। उसने लिखा था कि किस प्रकार वह उन्हें चाहते हुए भी शादी नहीं कर सकी थी। वह हिम्मत नहीं जुटा पाई थी। मैंने चित्रा को लिख दिया कि कम से कम अब तो उसे हिम्मत जुटानी चाहिए। उसे उस लड़के के घर जाकर मिलना चाहिए, जिसे उसकी बेटी चाहती है। अब जात-पात वाली कौन सी बड़ी बात रह गई है। मुझे यकीन है कि जिसे तुम्हारी बेटी ने पसंद किया है वो यकीनन नेक होगा।

मैंने चित्रा को सलाह तो दे डाली थी लेकिन मुझे लग रहा था कि मैं एक ही समय में दो-दो

भूमिकाएँ निभा रहा हूँ। एक पापा की और दूसरी चित्रा के प्रेमी की। मुझे ऐसा लग रहा था मानो मैं संजना से ही चैटिंग कर रहा हूँ। मैं कंप्यूटर लॉग ऑफ करके घर आ गया। आज मुझे थोड़ी राहत ज़रूर मिली थी। गुनगुनाते हुए मैं घर के भीतर गया तो मम्मी ने पूछ लिया।

'क्या संजना मिली थी?'

'हाँ, मम्मी मिली थी।'

'कोई बात-?'

'हाँ, बात तो होती ही है, लेकिन जो बात होनी चाहिए, वो नहीं होती।'

'तू कहे तो मैं जाऊँ उनके घर।'

'वहाँ जाने का कोई फायदा नहीं-मम्मी।'

मैंने मम्मी के दोनों हाथ पकड़ लिए थे। उन्हें समझाया था कि जो रिश्ते सहज ही पनपते और बनते हैं, वे ही चिरस्थायी होते हैं।

मम्मी को देखकर मुझे कुछ भी अनुमान नहीं हुआ कि उन्हें मेरी बात ठीक लगी या नहीं। मम्मी ने बस इतना कहा कि आज डिनर बाहर करेंगे। मम्मी बहुत कम अवसर पर डिनर बाहर करने को कहती थीं। जब भी डिनर बाहर करने की बात होती तो मुझे अच्छा लगता कि चलो मम्मी की आउटिंग तो होगी वरना घर की चारदीवारी से बाहर ही नहीं निकलती थीं। मैं नहाने के लिए बाथरूम में जाने ही वाला था कि मोबाइल बज उठा। संजना थी।

'हैलो।'

'मैं बोल रही हूँ विपिन।'

'हाँ, बोलो...।'

'अभी घर पहुँची तो मम्मी ने बताया कि वह आज ही आपकी मम्मी से मिलने आ रही हैं। दादू भी होंगे साथ।'

'क्या कह रही हो संजना?'

विपिन की मम्मी उसके पास आ गई थीं।

'हाँ, विपिन। मम्मी को पता नहीं कहाँ से इतनी हिम्मत मिली कि उसने घर के लोगों से बात की और समझाया कि संजना की खुशी भी तो कुछ मायने रखती है। विपिन पढ़ा-लिखा है, एक बार मिल तो लो उसकी मम्मी से। और सभी राजी हो गए।'

'तो ऐसा करो-हम डिनर पर जा रहे थे-आप सभी लेक क्लब पहुँच जाना।'

'यह लो, मम्मी से बात करो।'

और संजना की मम्मी ने विपिन को बता दिया कि वे लोग उनके साथ ही डिनर करेंगे लेक क्लब पर। विपिन और उसकी मम्मी आश्चर्यचकित थे। विपिन सोच रहा था कि आखिर यह सब कैसे हुआ? विपिन को अचानक पापा की याद आ गई। वह सोचने लगा कि ज़िंदगी के हर महत्त्वपूर्ण मोड़ पर उनके बिना कुछ नहीं हुआ। उसने मोबाइल पर फेसबुक खोली। चित्रा का मैसेज था कि आज अपनी बेटी के लिए बात पक्की करने जा रही हूँ। लेक क्लब पर डिनर करेंगे हम एक साथ। मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैं कुछ क्षण को रुक गया। मम्मी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा और मेरा मोबाइल अपने हाथ में ले लिया। मैं कुछ नहीं बोल पाया। केवल मम्मी के कंधों पर सिर रखकर रो पड़ा। पापा ने अब भी मुश्किल वक्त में मेरा साथ दिया था।

मैंने संजना को फोन मिलाया और उसे बताया कि पापा ने आज फिर मुझे दुविधा से निकाल लिया है।

संजना ने पूछा--

'सच'

'हाँ'

'वो कैसे?'

'एक बात पूछूँ?'

'हाँ-क्यों नहीं।'

'तुम्हारी मम्मी का नाम चित्रांगदा है न?'

'हाँ, तुम्हें पता तो है।'

'क्या वो मेरठ में पढ़ती थीं?'

'हाँ, मेरे नाना-नानी मेरठ में ही रहते हैं।'

विपिन को अब पूरा यकीन हो गया था कि संजना की मम्मी ने उसके पापा की सलाह पर यह फैसला लिया है। उसने संजना से कहा- 'संजना अब आगे कोई सवाल नहीं पूछना कि मैं यह सब कैसे कह रहा हूँ कि पापा ने ही मुझे इस बार भी ऐसे दर्द से निजात दिलाई, जिसे मैं ज़िन्दगी भर सालता रहता।'

मैं संजना को यह बताने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था कि उसकी मम्मी फेसबुक पर जिस शख्स से बातें करती हैं, वह इस दुनिया में नहीं है। लेकिन वह मेरे पापा थे जो कभी मर नहीं सकते। वह मेरे और मम्मी के लिए तो हमेशा ज़िंदा रहेंगे, भले ही फेसबुक पर ही सही।

❐

लघुकथा

जानवर

उपेन्द्र प्रसाद राय

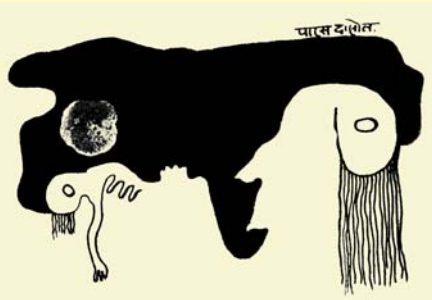

सूनी गली में आठ-दस हथियारबंद दंगाइयों ने उसे घेर लिया -

'बता, तू हिंदू है?'

'नाहीं तो।'

'मुसलमान?'

'नाहीं।'

'तो फिर ईसाई होगा!'

'नाहीं, नाहीं।'

'सरदार है क्या?'

'नाहीं बाबू।'

'तो तू है क्या?'

'हमका नाहीं मालूम।'

'तुझे मालूम ही नहीं कि तू क्या है?'

'ऐ बाबू लोग, हम तो रेलगाड़ी पर पैदा हुआ। टीसन पर भीख माँग कर खाया। हम को तो कोई अब तलक बतैबे नाहीं किया कि हम हैं का? और कोई ज़रूरत तो नाहीं था उसका, सो....'

सब हँसने लगे।

दंगाइयों का लीडर बोला, 'इसका क्या मारना, यार यह तो आदमी ही नहीं है। जिसका कोई मज़हब नहीं, वह तो जानवर है जानवर।....लगा साले को लात और भगा यहाँ से।'

और एक ज़ोरदार लात खाकर वह सरपट भाग खड़ा हुआ।

❐

सात कदम

जय वर्मा

'कभी हमारे भी दिन बदलेंगे। सभी लोग छुट्टियाँ मनाने दूसरे देशों मे घूमने-फिरने के लिए जाते हैं, और एक हम हैं कि इंडिया भी नहीं जाते!... जब से इंडिया छोड़ा एक बार भी घर वापिस नहीं गए।' प्रिंस को अब यह सुनने की आदत सी पड़ गई थी, सिम्मी की इन बातों का उस पर कोई असर नहीं होता था। गर्दन उठाकर चश्मा संभालते हुए धीरे से बोले, 'केवल घूमने के लिए हम इंगलैंड नहीं आए थे। यहाँ आना मेरे इंजीनियरिंग कैरियर के लिए महत्त्वपूर्ण था। रुड़की से इंजीनियरिंग की डिग्री लेने के बाद अगर मैं भारत में ही बस गया होता तो शायद मैं अब तक एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर बनकर रिटायर होने की सोचता होता। नए चैलेंजज़, उन्नति तथा नए अनुभवों के लिए ही मैं यहाँ आया था। न जाने कितने प्रोजैक्ट और बाँध बनाने के काम मैं अपने देश के लिए करता। सिविल इंजीनियर बन जाना उन दिनों भारत में एक सुनहरे पेशे की नींव थी। देश में नई सड़कें, नए बाँध, ऊँची इमारतें और बड़े पुल बनने शुरू हो गए थे। पढ़ते समय मेरे भी कुछ सपने थे। मैं भी अपने जीवन में उन्नति और मानवता के लिए कुछ करना चाहता था।'

'कितने दिनों से आप वायदा करते आ रहे हैं कि अंग्रेज़ों की तरह हम भी हॉलिडे में घूमने के लिए कहीं बाहर गर्म देश जाएँगे। जब हमारी शादी हुई तब आप काम ढूँढ रहे थे...। नौकरी तो आपको भारत में भी अच्छी मिल गई थी, लेकिन उन दिनों विदेश घूमने तथा युवावस्था के जोश में हम अपने घर वालों और देश को छोड़कर यहाँ बेकवैल, डार्बिशायर के पीक डिस्ट्रिक्ट में रहने आ गए। देवदार, चीड़ और ओक के वृक्षों से घिरी ये मैटलोक की पहाड़ियाँ और बेकवैल की ठोस बर्फ से भरी घाटियाँ जहाँ नवम्बर के महीने से लेकर मार्च तक पेड़ों पर पत्ते और ज़मीन पर धूप भी नहीं आती। सुबह अँधेरे में काम पर जाते हैं और अँधेरे में ही घर लौटकर आते हैं। दिन भी इतने छोटे कि तीन बजे से ही कार की लाइट्स ऑन करनी पड़ती हैं। कोहरे और ठंड़ से सिकुड़ते और ठिठुरते ऊनी गर्म कपड़ों में लदे हमें सर्दियों के अंधेरे दिन बिताने पड़ते हैं।' सिम्मी ने शिकायत के लहजे में कहा।

'जब 'नॉर्थ-ईस्ट न्यूकॉसल शिपयार्ड' के मेनेजमैंट कंसलटेंट का काम छोड़कर मैं पीक डिस्ट्रिक्ट में बसने के लिए आया था तब मुझे लगता था कि यहाँ मौसम थोड़ा अच्छा होगा।'

'बिजली से लेकर वैल्डिंग तक के काम में प्रिंस आपका हाथ सधा हुआ है अत: जीवन निर्वाह के लिए आप कोई भी इंजीनियरिंग का काम कर सकते थे। सभी अंग्रेज़ साथी आपको पसन्द करते हैं, फिर आपने लंदन की ब्रांच में क्यों नहीं काम लिया? वहाँ मौसम भी अच्छा है और शहर भी बड़ा। लंदन में रहना मुझे भी अच्छा लगता।'

'आजकल मैं विभिन्न पत्थरों के व्यापार करने वाली फ़र्म में डार्बिशायर, बक्सटन, मैटलोक और मेनचैस्टर इत्यादि शहरों में मेनेजमैंट कंसलटेंट का काम करने जाता हूँ, यह काम मेरी पसंद का है। अगर मैं एक दिन की भी छुट्टी ले लूँ, बॉस से लेकर एडमिन स्टाफ़ तक सब परेशान हो जाते हैं।'

अगर कभी कोई अंग्रेज़ कह देता, 'हिंदुस्तानी बड़े ही मेहनती और ईमानदार होते हैं।' प्रिंस का सीना गर्व से फूल जाता था।

'बिज़नेस के कारण हमारी जान-पहचान काफ़ी लोगों से हो गई है, परन्तु हिंदुस्तानी लोग इस इलाक़े में ना होने के कारण हमारी सोशल लाइफ न के बराबर है। हम दोनों ही एक दूसरे के साथी बनकर अपने आस-पास के वातावरण में जैसे कि समा गए हैं।' मीटिंग में जाने की तैयारी करते हुए सिम्मी बोली।

कई प्रकार की संस्थाओं के वे दोनों सक्रिय सदस्य बन गए थे। माउन्टेन क्लाइंबिंग, रैस्कयू सोसाईटी, हाईकिंग, स्नो रैस्कयू, कनूईंग, वुड़लैंड वॉक, नेचर रिजर्व, साईक्लिंग और फोरस्ट प्रिज़र्वेशन इत्यादि गतिविधियों में उनका काफ़ी मन लगता है। वे दोनों अपने व्यक्तित्व के अनुसार अपनी विशेषताओं के आधार पर अपने आस-पास के लोगों के साथ काम करने में व्यस्त रहने लगे।

पहले तो सिम्मी केक शॉप में काम करती थी; जहाँ के बेकवैल टार्ट दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं, घुड़सवारी वाले घोड़ों के अस्तबल में भी पार्ट-टाइम काम करने शनिवार और रविवार को जाती

जय वर्मा का १९७१ से ब्रिटेन में आवास। 'काव्य रंग नॉटिंघम' की अध्यक्षा। 'प्रवासी टुडे' पत्रिका की यू.के. प्रतिनिधि। 'सहयात्री हैं हम' काव्य संग्रह। 'हिंदू मंदिर नॉटिंघम' पत्रिका की भूतपूर्व संपादिका। भारत, यूएसए तथा ब्रिटेन की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं काव्य संकलनों में हिन्दी कविताओं, लेख एवं कहानीयाँ प्रकाशित। १९७६ से १५ वर्षों तक हिन्दी शिक्षण तथा हिन्दी पाठ्यक्रम का विकास एवं अनुवाद।
ईमेल: jaiverma777@yahoo.co.uk

थी।

सिम्मी की पड़ोसन सहेली सिंथिया ने हँसकर कहा, 'सिम्मी को जानवरों से बहुत प्रेम है, अगर उसका वश चलता तो वह भेड़ों के कई मेमने अपने घर पालने के लिए ले आती।'

'अपने कुत्ते शेरू के साथ घूमने, खेलने और देख-भाल करने में ही मेरा दिन बीत जाता है और 'डोग्स फॉर ब्लाइंड' चेरिटी की सहायता भी हम दोनों करते हैं।' सिंथिया की ओर देखकर सिम्मी हँस पड़ी।

अपने बच्चे न होते हुए भी सिम्मी को बच्चों से अति लगाव था। ज़िन्दगी में मेहनत और अनुशासन जैसे वैस्टर्न अनेकानेक तत्व उनमें समा गए थे।

आज सिम्मी ने संदूकची खोली। माँ के शादी में दिये गहने तथा कुछ कपड़े वह इंगलैंड साथ ले आई थी।

'ये गहने तो न कोई आर्थिक सहारा बन सके और न ही सजावट का सामान।' दो जड़ाऊ कंगन और अंगूठी देखकर उसे माँ की याद आ गई। दोनों ही चीजें बहुत सुंदर लग रही थीं। उनकी चमक आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई थी

'इन्हें पहन कर कहाँ जाऊँगी? जब से बेकवैल में आकर बसे हैं न कोई हिंदुस्तानी माहौल न कोई पार्टी या उत्सव जिसमें ये गहने और भारतीय कपड़े पहने जा सकें।

मेरी माँ को यह जानकर कभी यक़ीन ही न होता कि माँग में सिंदूर भरे बिना और गले में मंगल सूत्र पहने बिना कोई सुहागन औरत अपने पति की लम्बी आयु की कामना कैसे कर सकती है...?' बस मोहित करने वाले ज़ेवर उसने वापस संदूकची में बंद करके रख दिये।

यहाँ पर पहाड़ी झरनों का स्वर ही आभूषण का काम करता है। सिम्मी अक्सर प्रकृति के चारों ओर फैले हुए सुरम्य सौंदर्य के अद्भुत रूप में खो जाती। स्त्री के मानस पटल पर सुन्दरता के मानसिक स्तर से वह ऊपर उठ चुकी थी। सुंदरता की क़ीमत और सराहना तो मन के विकास और अन्तर्मन के विचारों से होती है। पढ़ाई के नए तौर-तरीके और टीचर्स ट्रेनिंग सिम्मी ने इंगलैंड में आकर ही की थी। अपनी भारतीय संस्कृति को उसने सहेज कर रखा था लेकिन पश्चिम के रीति रिवाजों की प्रशंसा करते हुए न जाने वह कब वैस्टर्न रंग में रंग गई। अब तीज-त्योहारों की तारीखें उसे याद नहीं रहती। न आस-पास कोई मंदिर है और न गुरूद्वारा।

रविवार को चर्च में ईसाई धर्म के लोगों को अच्छे कपड़े पहने हुए परिवार के साथ इकट्ठे देखकर सिम्मी ने प्रिंस से एक दिन पूछा, 'क्या आप बता सकेंगे कि हम कौन हैं? और हमारा क्या धर्म हैं?'

'तुम जानो..... ' गंभीरता से सोचते हुए प्रिंस ने कहा, 'पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु से ये उत्पन्न शरीर में ही आत्मा और परमात्मा बसते हैं। उन्हें मैं ढूँढने बाहर क्यों जाऊँ? मेरा धर्म तो इंसानियत है।'

सिम्मी भावनाओं और अनुभूतियों में घिरी हुई बोली 'मुझे नहीं मालूम है कि इंगलैंड में रहना मेरा त्याग और बलिदान है या फिर बनवास। अन्य स्त्रियों की तरह न तो मैं भोग विलास को ही जीवन का परम लक्ष्य समझती हूँ, और न मेरे भीतर भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाने की प्रवृत्ति जाग्रत हुई है। सादगी का रहन-सहन जीकर क्या मैंने अच्छा काम किया है? या अपने अरमानों का ख़ून कर दिया?'

प्रिंस ने सिम्मी का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाया 'आज तुम्हारा मन इतना विचलित क्यों हो रहा है? ज़िन्दगी तो यहाँ इंगलैंड में बीत ही गई, अब पिछली बातों को सोचकर क्यों अपने आपको परेशान कर रही हो।'

आँखों को नीचे झुकाये हुए ही सिम्मी बोली, 'क्या मालूम? अगर जीवन की किसी दूसरी राह का चयन करते शायद और भी अच्छा होता?'

सकारात्मक सोच और अनुभव की परिपक्वता दर्शाते हुए प्रिंस बोले, 'ये सब हिसाब-किताब हमारे बस की बात नहीं। हमें तो परस्पर विश्वास और अपने कथन पर भरोसा है। जाने-अनजाने में हम कितनी आकांक्षाओं और कामनाओं से प्रभावित होते हैं। ख़ुशी मेरे अंदर है, संस्कार मेरे बुज़ुर्गों ने दिए हैं और न जाने अंत समय में हमारा क्या अन्जाम होगा?'

सिम्मी ने बात बदलते हुए कहा, 'बस आप इन्हीं बातों की सोचते हैं। ज़िन्दगी में और भी बहुत कुछ करने के लिए है। हमने क्या जीवन जिया है? जीवन में क्या हासिल किया है? किसकी कितनी मदद की है? बताओ, क्या कुछ सीखा है हमने दुनिया में आकर?'

'अगर हम इन बातों की बहस या उलझन के विस्तार में पड़ गए तो सितम्बर महीने के पतझड़ मौसम का यह दिन ऐसे ही बीत जाएगा। आओ चलें, मैटलोक में हाइटस ऑफ इब्राहिम या डवडेल की पहाड़ियों में घूमने चलते हैं। न तुम्हें ऊँचाई का डर है और न ठंड की फिक्र। टेलीविज़न के अनुसार आज के मौसम की सूचना अच्छी है और धूप निकलने की सम्भावना है। लेकिन इंग्लिश मौसम का कुछ भरोसा नहीं है इसलिए ऊनी स्वेटर, छाता और बरसाती मैक ज़रूर साथ में रख लेना।'

टेलिफोन की घंटी बजी और सहेली सिंथिया से बात करते हुए फ़ोन पर हाथ रखकर सिम्मी बोली, 'डार्लिंग सुना आपने..., कैथी की बेटी को डॉ. मार्क्स ने पेरिस में जाकर आईफल टावर की ऊँचाई पर 'विल यू मेरी मी' कहकर प्रपोज़ किया है। वे दोनों यूरोटनल से कल ही फ्रांस गए हैं।' प्रिंस हँसकर बोले, 'अरे इन लोगों का क्या कहना? इनकी जो इच्छा होती है ये वही करते हैं। इनका तो काम रोज़ कमाना और रोज़ ख़र्च कर देना है। अंग्रेज़ों से हमारा क्या मुक़ाबला, ये लोग ज़िंदादिल होते हैं। भाई हम ठहरे सीधे-साधे लोग। इन बातों से हमें क्या लेना-देना।'

'मैं क्या आपसे पेरिस ले जाने की बात कह रही हूँ जनाब? कभी लंदन तक आप लेकर नहीं गए जबकि डारबी रेलवे स्टेशन से लंदन की यात्रा दो घंटे से भी कम है।'

'भई बिना किसी वजह हम दोनों क्यों लड़ रहे हैं? इस संदर्भ से हमें क्या मतलब? रविवार की सुबह-सुबह दूसरों की बातें न करके हमें अपनी दिनचर्या के बारे में सोचना चाहिए कि आज कौन से पहाड़ी रास्ते पर घूमने चलेंगे? कैसे कपड़े पहनेंगे और आज खाना कहाँ खाने जाएँगे? '

'सुबह से आप इतने इत्मीनान से आज का दैनिक अख़बार पढ़ रहे हैं, अगर अख़बार पढ़ने से फुर्सत हो तो हम घूमने चलें...?'

'तुम अख़बार से इतना सौतेला व्यवहार क्यों करती हो? संडे टाइम्स को पढ़ना अपने आप में एक हफ़्ते भर की खबरों की जानकारी की भूख मिटाना है। परंतु तुम क्यों ऐसा सोचोगी? चलो भाई मैं तैयार हूँ।' अख़बार को एक तरफ़ रखते हुए प्रिंस खड़े हो गए। अकसर इस तरह की नोक-झोंक दोनों पति-पत्नी में आए दिन होती रहती थी।

प्रिंस ने हिलक्रैस्ट कॉटेज की गैराज से लैंडरोवर कार निकाली। लम्बी स्नेक पास की घुमावदार पहाड़ियों वाली सड़क की हरी घाटी के रोचक

रास्ते से वे मैटलोक पहुँच गए। पेड़ों से बनी टनल एवं झरने और नदी के प्राकृतिक सौंदर्य को देखते हुए, बादलों से घिरी घाटियों के बीच से निकलते हुए, दोनों कब पहाड़ी की चोटी पर पहुँच गए, उन्हें पता ही नहीं चला। मेप्लस, बीच, ओक और दूसरे पेड़ों के पत्तों के बदलते सुनहरी रंगों का ख़ज़ाना चारों ओर बिखरा हुआ था।

'आज लंबी सैर हो गई है रात्रि के अंधेरे से पहले आओ अब घर चलें।' झरने की ध्वनि में सिम्मी की आवाज़ खो गई।

सोने जाने से पहले सिम्मी का हाथ लाइट ऑफ करने के लिए स्विच की ओर बढ़ा, वह प्रिंस के हाथ में एक लिफ़ाफ़ा देखकर ठिठकी, 'ये क्या है?'

'तुम स्वयं खोलकर देख लो।'

उसने प्रश्न सूचक निगाहों से लिफ़ाफ़ा खोल कर देखा और आश्चर्य चकित रह गई। चेहरे पर ख़ुशी और कौतूहल की लहर दौड़ गई। उसकी ख़ुशी की कोई सीमा न रही। क्या वास्तव में दो मेडिटेरेनीअन क्रूज़ के टिकट दिखाई दे रहे थे? उसे विश्वास नहीं हुआ। जल्दी से विचित्र स्फूर्ति के साथ टिकट को उलट-पलट कर देखने लगी। निर्णय नहीं कर पा रही थी कि यह काल्पनिक है या यथार्थ। सिम्मी ने प्रिंस के गले में बाहें डाल दी, 'यह करिश्मा कैसे हो गया? अब हम एक ही नहीं बल्कि कई देश घूमने जाएँगें। सुन्दर-सुन्दर जगहों का भ्रमण जल और थल दोनों पर करेंगे। बड़ा मज़ा आयेगा, मैं पहली बार समुद्र देखूँगी।' सिम्मी की प्रतिक्रिया और उत्सुकता देखकर प्रिंस मन ही मन मुस्कराए। उन्हें कितना अच्छा लग रहा था जब सिम्मी 'थैंक यू, थैंक यू' कह रही थी।

अगले दिन से ही सिम्मी ने तैयारी आरंभ कर दी। सूटकेस पर से धूल झाड़ते हुए पुरानी हिंदी फिल्मों के गाने गुनगुना रही थी। चीज़ों को सूटकेस में रखते हुए हाथ तेज़ी से चल रहे थे। 'ख़ुद पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि हम हॉलिडे जा रहे हैं।'

अपनी सहेली सिंथिया और मारग्रेट को फ़ोन पर हँस-हँस कर सिम्मी ने बताया, 'तुम्हें यक़ीन नहीं आएगा कि हम दो हफ़्ते के लिए कल ही क्रूज़ पर जा रहे हैं और घर की चाबी मैं तुम दोनों के पास छोड़ जाऊँगी ताकि हमारी अनुपस्थिति में तुम घर तथा पौधों की देख भाल कर सको।'

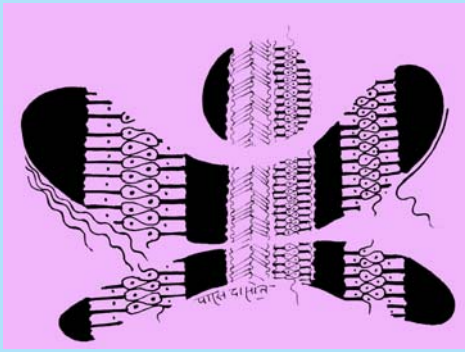

'तुम बहुत भाग्यशाली हो, हैव ए गुड़ हॉलिडे और आकर हमें अपनी यात्रा का आँखों देखा हाल बताना' सिंथिया ने बधाई दी।

'तुम्हें ख़ुश होना चाहिए और प्रिंस को धन्यवाद देना मत भूलना। तुम्हारी यात्रा सुखद हो। सी यू सून।' मारग्रेट बोली।

डार्बिशायर से साउथ हेम्पटन पहुँचने में पाँच घंटे लग गए। पासपोर्ट चैकिंग और सिक्योरिटी से निकलने के बाद केबिन में पहुँच कर सिम्मी ने जूते उतारे और पलंग पर हाथ-पैर फैलाकर लेट गई। 'ताज्जुब! हॉलिडे में इतनी थकान...। मन हवा से बातें कर रहा है परन्तु शरीर थककर चकनाचूर हो गया है।'

शिप के चलने के अनाउन्स्मेन्ट से उसमें नई ऊर्जा और उमंग आ गई। मचलते हुए, 'जल्दी चलो प्रिंस' हाथ पकड़कर दौड़ती हुई डैक में सबसे आगे पहुँच गई।

समुद्री पोर्ट के विशाल रोमांचित दृश्य को देखकर दोनों दम्पती प्रसन्न हो रहे थे। साऊथ हेम्पटन पोर्ट का किनारा धीर-धीरे आँखों से ओझल हो गया।

'भूमध्य सागर के बारे में केवल सुना था कि मिश्र और ग्रीस की मानव सभ्यता सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से है। अब मुझसे प्रतीक्षा नहीं हो रही है।'

लहरों की आवाज़ के साथ सपनों के उतार-चढ़ाव में मिलकर मधुर निंद्रा न जाने कब आ गई।

लिसबन, पुर्तगाल में सुबह का सूरज सुनहरी किरणों के साथ उदय हुआ। क्षितिज में फैले लाल रंग देखकर वास्कोडिगामा के देश को नमन किया। चार-पाँच घंटे शहर में घूमें फिर शिप जिबराल्टर के लिए रवाना हो गया। जिबराल्टर चट्टान अपने आप में एक अद्भुत अजूबा है। मिनोर्का और कोर्सिया आईलैंड होते हुए फ्रांस पहुँच गए; जहाँ उन्होंने समस्त दिन व्यतीत किया। फ्रांस की विश्वविख्यात सभ्यता और संस्कृति के विकास से प्रभावित होकर उन्होंने आगे की यात्रा मेडिटेरेनीअन सागर में स्पेन की तरफ़ अग्रसर की। बारस्लोना में पूरब और पश्चिम की शिल्प कला तथा भवन निर्माण बहुत मोहक थे।

रात में तारों की छाँव में पति का हाथ पकड़कर घूमते हुए सिम्मी ने कहा, 'सुनते हैं कि कश्मीर एवं स्विट्ज़रलैंड धरती के स्वर्ग हैं। वे मैंने देखे नहीं है परन्तु मैं कहती हूँ कि धरती पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है।'

यात्रा में तिलस्मी, आर्टस, शिल्प, वास्तुकला और कल्चर के स्मृद्ध नज़ारे देखते हुए यूनान देश पहुँच गए। रास्ते में गहरे नीले सागर के पानी को सूरज अपनी किरणों की सफेद चमक से पारदर्शी बना रहा था।

प्रिंस देखो 'नीले पानी में मछलियों का संसार साफ़ नज़र आ रहा है, जिसमें छोटी मछलियों के साथ-साथ सील एवं व्हेल जैसी बड़ी मछलियाँ स्वतंत्रता से तैर रही हैं। संतरों के पेड़ों की कतारें, जैतून के बाग, हरे और जामुनी अंजीर से लदे पेड़, अंगूर के विनयार्ड और बादाम इत्यादि के रूमसागरीय पेड़ हमने पहले कभी न देखे थे।'

समुद्री यात्रा में डैक पर खड़े सूर्यास्त के अलौकिक रंगों में भीगे हुए सिम्मी को बाहु पाश में भरकर प्रिंस ने प्रेम से कहा, 'हनीमून पर हम लोग नहीं जा सके थे इसका मुझे अफ़सोस है लेकिन मैं अपने मन की बात बताना चाहता हूँ कि वैवाहिक जीवन का यह हमारा सबसे सुन्दर और विस्मरणीय हॉलिडे है। अगर मैं एक चित्रकार होता तो इस पल को मैं कैनवस पर उतार देता।'

'अब दो दिन साउथहेम्पटन पहुँचने में बाक़ी हैं। छुट्टियाँ समाप्त होने को हैं और मुझे सुख और दु:ख दोनों की अनुभूति हो रही है। कल मैं जहाज़ की सबसे ऊँचाई वाले डैक पर घूमने जाऊँगी।'

सुबह जल्दी उठकर सिम्मी ने देखा कि बहुत लोग समुद्री जहाज़ पर घूम रहे थे और कुछ कुर्सियों पर अपने-अपने तौलिया बिछाकर अपनी डैक-चेयर्स को स्विमिंग पूल के पास रिज़र्व कर रहे थे। शिप पर खाने-पीने के विभिन्न प्रकार के व्यंजन मेहमानों के लिए उपलब्ध थे। अन्जान एवं संभ्रांत लोग अपने-अपने हीरे-जवाहरात, घड़ियाँ एवं डिज़ाईनर्स कपड़े इत्यादि पहनकर घूम रहे थे। एलिट वर्ग के लोग बैस्ट सैलर पुस्तक किंडल पर पढ़ने में

संलग्न थे। कुछ लोग लैपटॉप, कम्प्यूटर और 'आईपैड' पर काम करते दिख रहे थे। विश्व भर से आए हुए यात्री अंग्रेज़ी के साथ-साथ दूसरी भाषाएँ भी बोल रहे थे। युवाओं को मोबाईल पर टैक्स्ट करते अपनी दुनिया में मस्त देखकर वह मंत्रमुग्ध थी।

'कुछ तो परमानैंट गेस्ट ही नज़र आ रहे हैं।'

सिम्मी स्विमिंग पूल पर बराबर-बराबर दो डैक चेयर्स पर अपने बढ़िया तौलिया बिछाकर प्रिंस को बुलाने के लिए अपने केबिन वापस चली आई।

केबिन के दरवाज़े पर सिम्मी ने दस्तक दी, लेकिन कोई हलचल न हुई, 'क्या बात है? हो सकता है प्रिंस कहीं घूमने चले गये, अभी आठ ही बजे हैं।'

वह केबिन को अपनी चाबी से खोलकर स्वयं अंदर आ गई, 'अच्छा हुआ कि सुबह मैंने अपने पास चाबी ट्रेकसूट की जेब में रख ली थी।'

सशंकित निगाहों से उसने बिस्तर की ओर देखा, प्रिंस अभी सो रहे थे, 'जगाऊँ या न जगाऊँ? अब साढ़े आठ बज गए हैं।'

'प्रिंस उठिए, आज क्या देर तक सोने का इरादा है? क्या तबियत ख़राब है?' वह परेशान हो उठी।

कोई जवाब न मिलने पर उसके हाथ-पैर ढीले होने लगे और उसने प्रिंस को झकझोरा। वह डर से काँप उठी। मन में न जाने कैसे-कैसे बुरे विचार आ रहे थे। पुन: प्रिंस का हाथ थामकर माथे को सहलाने लगी। धुँधली नज़र से देखते हुए कहा 'उठिए'। सिम्मी ने झुककर प्रिंस का माथा चूमा। आज वह अपने मन की आवाज़ को सुनना नहीं चाहती थी। बार-बार उसकी नज़र प्रिंस के चेहरे पर जाकर रुक जाती थी। पीड़ा से व्याकुल हुई सीने पर सिर रख पागलों की तरह प्रिंस को आवाज़ देती रही। उसने महसूस किया कि यह सब अंतिम बार है। 'मुझे क्या करना चाहिए? ' मस्तिष्क अनेक दिशाओं में काम करने लगा, नए-नए विचार उसके मन में उभरने लगे। अपने सफ़ेद स्कार्फ़ से प्रिंस का चेहरा ढक दिया और सिम्मी दहाड़ें मारकर रोने लगी।

'किसी को इस बात की ख़बर नहीं लगनी चाहिए।' यह सोचकर वह चुप हो गई।

'यदि किसी को सच्चाई का पता चल गया तो प्रिंस की आख़िरी इच्छा कैसे पूर्ण हो पायेगी? साधारण परिस्थिति में तो डाक्टर जाँच करते और परीक्षण के बाद आवश्यकतानुसार प्रिंस की 'विल' के अनुसार मृत शरीर को मैनचेस्टर मैडिकल कॉलेज के एनॉटमी विभाग में भेज देते।'

अपने दिल की घबराहट को छिपाती हुई वह कमरे की कुर्सी पर बैठ गई और प्रिंस की 'विल ' के बारे में विस्तार से सोचने लगी, 'कैसे उनकी इच्छा को पूरा कर सकूँगी? जहाज़ कल इंगलैंड पहुँचेगा। कल तक कैसे छिपेगी यह बात?' उसे अपनी प्रत्येक धड़कन सुनाई दे रही थी।

दरवाज़े पर खटखटाहट सुनकर सिम्मी काँप गई। अब मैं क्या करूँ? दरवाज़े की ओर देखते हुए घबराहट में माथे से पसीना पोंछने लगी। मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। दूसरी बार दस्तक सुनने पर उसने धीरे से केबिन का दरवाज़ा खोलकर बाहर झाँककर पूछा 'हाँ क्या बात है?'

'मैडम आप दोनों नाश्ते पर नहीं आए। इससे पहले कि हम नाश्ते की सर्विस बंद कर दें, आप ग्यारह बजे तक आकर नाश्ता अवश्य कर लीजिएगा।'

अपने होठों पर उँगली रखकर बोली 'साहब सो रहे हैं उन्हें डिस्टर्ब नहीं करना। यदि आप चाहें तो हमारे नाश्ते की ट्रे यहीं कमरे में ला सकते हैं।'

वेटर जल्दी से क़दम रखता हुआ वापिस चला गया और थोड़ी ही देर में नाश्ते की ट्रे लेकर आ गया। सिम्मी ने इशारे से मेज़ पर नाश्ता रखवा लिया। चेहरे की घबराहट और परेशानी को उसने छिपाये रखा।

उसने वेटर से आँखें मिलाए बिना 'थैंक्स' कहा तथा केबिन का दरवाज़ा जल्दी से बंद कर लिया। केबिन की सब खिड़कियाँ बंद कर दी ताकि रोशनी की किरण भी न पहुँच सके।

शिप के कर्मचारियों और पोर्टर्स से कैसे व्यवहार किया जाए? कितना बताया जाए और कितना नहीं? वह सभी से सशंकित हो रही थी।

'मैं किससे मदद लूँ? किस पर यक़ीन करूँ? एक हिंदुस्तानी पति-पत्नी जो अक्सर खाने की मेज़ पर मिला करते थे उनका केबिन नम्बर भी मुझे मालूम नहीं। प्रबंधकों से सवाल कैसे पूछूँ ? डैथ सर्टिफिकेट पर कौन हस्ताक्षर करेगा?..... शिप का या हॉस्पिटल का डॉक्टर? '

इन सब उलझनों में कर्त्तव्य और प्रिंस की अन्तिम इच्छा पूरी करने के लिए आत्मविश्वास और भी दृढ़ होने लगा। इसी चिंता में उसकी दिमागी हालत बिगड़ने लगी। बैठे-बैठे कभी उसे नींद आ जाती और फिर भयभीत होकर घबरा कर उठ जाती थी।

चुप रहना ही बस एक उपाय सूझ रहा है। इस कठिन समय में कोई निर्णय भी नहीं ले पा रही हूँ। ऐसा लगता है कि विवेक, बुद्धि और चेतना सब सो गए हैं। कैसे करूँ? प्रिंस भी तो नहीं है सलाह देने के लिए.....। कितनी मुश्किल हो गई है? इस दुर्गम परिस्थिति से परेशान और क्रोधित होकर आक्रोश में कोई ग़लत कदम न उठा लूँ? मुझे सोच समझकर व्यवहार करना होगा? पानी के जहाज़ और इम्मिग्रेशन के नियम मुझे मालूम नहीं हैं कि वे मृत शरीर को मोर्चरी में रखेंगे या जहाज़ से पानी में दफ़ना देंगें? मुझे हर हाल में प्रिंस की 'विल' को पूरा करना है। उसके मृत शरीर को मैनचैस्टर हॉस्पिटल के एनॉटमी डिपार्टमैंट को सुपुर्द करना है। यह केवल मेरा पत्नी धर्म ही नहीं बल्कि मानवता का कर्त्तव्य भी है कि प्रिंस का मृत शरीर 'एनॉटमी डिपार्टमैंट' में समय से पहुँच जाए। उनकी अन्तिम इच्छा पूरी करने में कोई भी कमी नहीं होनी चाहिए। मैं अपनी क्षमता और पूर्ण विश्वास के साथ इस काम को करूँगी। हालाँकि ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे पक्ष में इस समय कुछ भी नहीं है। ईश्वर मुझे शक्ति प्रदान करें। रह-रहकर प्रश्न मन में उठ रहे थे....।

'चंद दिनों का साथ कितना सुहाना था। सचमुच क्या ये यात्रा हम दोनों को बिछुड़ने के लिए ही इतना क़रीब लाई थी? ऐसा कभी सोचा न था कि प्रिंस का साथ ऐसे अचानक छूट जाएगा...!'

धरती की तरफ़ देखते-देखते सिम्मी की आँखें अनायास ही ऊपर आसमान की ओर उठने लगीं लेकिन अन्तरिक्ष में बस सब कुछ खाली था। 'इस क्रूर अनहोनी के लिए मैं किसी को दोषी नहीं ठहरा सकती। क़िस्मत के सामने किसका बस चलता है?.... यहीं आकर बीसवीं सदी के साइंस और विज्ञान के युग में भी इंसान को प्रकृति के सामने हार माननी पड़ती है।'

साऊथ हेम्प्टन का पोर्ट पास आते देखकर सिम्मी के अश्रु बिंदु गिरने लगे। स्टूवर्ड से क्रन्दन पूर्ण काँपते होंठों से धीमी आवाज़ में बोली, 'मेरे पति के लिए आप कृपया ऐम्बूलैंस बुला दीजिए.....।'

❐

प्रतिफल

प्रो.शाहिदा शाहीन

इसी शहर में नर्सिंग होम खोलने की प्रबल इच्छा डॉ. विराट की थी। अपना मेडिकल कोर्स उन्होंने यहीं के एक स्थानीय कॉलेज से अर्जित किया था, आज इस जगह से उन्हें विशेष लगाव हो गया था। हम हैदराबाद में रह रहे थे। शहर के बोर्ज़्वा इलाक़े में मेरे ससुर का एक शानदार बंगला था। उनका ओहदा ही कुछ ऐसा था कि जहाँ भी उनकी पोस्टिंग होती थी, विभाग की ओर से बंगला, गाड़ी, ड्राइवर तथा नौकर चाकर भी दिए जाते।

निजी तौर पर कुछ कर दिखाने की प्रबल इच्छा विराट की रही थी, अत: माता पिता के स्निग्ध प्रेम की छत्रछाया से परे अपने बल बूते पर हम दोनों ने एक नर्सिंग होम आरंभ करने का मंसूबा बनाया और यहाँ आ गए।

डॉक्टरी के महान् पेशे में सत्यनिष्ठा के साथ ड्यूटी निभाने के लिए चौबीस घंटे भी कम पड़ जाते हैं, चुनाँचे हम दोनों भी अत्यंत न्यायपरता के साथ समस्त समय और पूरा ध्यान अपने पेशे की प्रति समर्पण करने लगे। भगवान की दया से मेरी गोदी में पहलूटी के जुड़वाँ बच्चे थे। व्यस्तता के हुजूम में एक साथ दो बच्चों की देख भाल करना एक कठिन समस्या है। समय निकालकर हम दोनों बारी बारी बच्चों के पास रहते।

वह हमारे नर्सिंग होम में पिछले कई दिनों से काम कर रही थी। देखने में साफ़ सुथरी लंबा क़द, गोरा रंग सतर्क और मुस्तैद भी थी। संसार में उसका सगा संबंधी कोई नहीं था। पति का स्वर्गवास हो चुका था, तब से उसका एकमात्र व निरंतर ठिकाना यहीं पर था। मैंने उसे सर्वेंट्स रेस्ट रूम में असबाब रखने और सोने की अनुमति दे रखी थी। खाना वह कैंटीन से खा लेती और रात को ड्यूटी समाप्त होने के पश्चात रेस्ट रूम में सो जाती। एमर्जेन्सी के समय अक्सर आधी रात को भी यदि उसे बुलाया जाता तो तुरंत प्रस्तुत हो जाती। मुझे महसूस हुआ कि एक आया के रूप में वह मेरे नौनहालों की देखभाल के लिए उपयुक्त रहेगी। उसकी ओर से सुनिश्चित उत्तर पाकर अपने जुड़वाँ बच्चों की ज़िम्मेदारी संपूर्ण रूप से उसके हाथों सौंपकर मैं निश्चिंत हो गई। हालाँकि वह निस्संतान थी परंतु बच्चों की देख-रेख कुछ इस प्रकार करने लगी मानो इस कृत्य में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया हो। बच्चे तुरंत ही उससे हिल गए तथा उसकी कुशल देख-रेख में फलने फूलने लगे।

रात गए नर्सिंग होम से लौटना हुआ था, शायद इसी लिए सुबह सवेरे निकल गए थे। मेरी तबियत पर सुस्ती सी छाई हुई थी। बहुत दिनों बाद आज बच्चों के संग कुछ समय बिताने का मन कर रहा था। स्नान, नाश्ता आदि से फ़ारिग़ होकर ड्राइंग रूम में आ बैठी। आया को आवाज़ देते हुए बच्चों को तैयार कर लाने के लिए कहा। थोड़ी देर में दोनों बच्चों को एक साथ हाथों पर उठाए लड़खड़ाती हुई सी वह कमरे से दाख़िल हुई और सोफ़े पर बच्चों को पटक दिया। मैं चौंकते हुए बोल उठी -

'यह क्या ! बच्चों को घुमाने वाली तीन पहिया गाड़ी कहाँ गई ? और इस प्रकार हाँप क्यों रही हो ! तुम ठीक तो हो ना .....।'

पास से देखा तो उसका चेहरा पीला और कमज़ोर भी लगा। किंचित ध्यान से पारखी नज़रों के साथ नख से लेकर शिख तक निरीक्षण किया तो उसकी चाल ढाल कुछ और ही कहानी सुनाती हुई सी प्रतीत हुई। वास्तविक स्थिति का आभास होते ही मैं सन्न रह गई। एक डॉक्टर होते हुए भी व्यस्तता की अफ़रा-तफ़री में पता तक न चल सका था और मेरे अपने घर के अंदर बात यहाँ तक पहुँच गई। ऐन मेरी नाक के नीचे ये सब कुछ होता रहा और मैं स्वयं बेख़बर रही। जी खिन्न हो उठा। नीच, औछी औरत ने मेरे उपकार का यह सिला दिया। मेरे अंधे एतबार की धज्जियाँ उड़ चुकी थीं ..... सपने में भी नहीं सोचा था कि विराट इस हद तक गिर सकते हैं.....।

अनादर व तिरस्कार की हीन भावना ने मुझे झकझोर कर रख दिया। दु:ख क्रोध व अपमान के मारे सिर से लेकर पैर तक पसीने में नहा गई। खेदयुक्त यह पल, मेरी दस वर्षीय वैवाहिक जीवन पर भारी पड़ गए। बड़ी कठिनाई के साथ अपने आपको संभालते हुए तुरंत उसे नर्सिंग होम चलने का आदेश दे दिया। मारे लज्जा के वह मुझ से नज़रें नहीं मिला पा रही थी। उसके हाथ पैर प्रकट रूप से

शाहिदा शाहीन की भीगी पलकें (कहानी संग्रह), दिल आईना (उर्दू कहानी संकलन), दिल आईना (कहानी संग्रह), कई कहानियाँ तथा लेख उर्दू तथा हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। एन. डी.आर.के महाविद्यालय-हासन, में प्राचार्य एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से हाल ही में सेवानिवृत्त।
संपर्क: D.No:371, 6th Cross Opp.Nehru Park,Udayagiri, Mysore-19 Karnataka-India.

काँप रहे थे। परीक्षण के बाद पता चला कि छह मास ऊपर हो चुके हैं। कड़ी पूछ-ताछ के उत्तर में प्रकट रूप से उसने जो व्यक्त किया, उसे सुनकर मेरे पाँव तले धरती खिसक गई, कानों पर विश्वास नहीं हुआ –

'तुम्हें ज़रा भी लाज नहीं आई, इतने कम उम्र लड़के के साथ !'

वह विवर्ण होकर बोल उठी – 'मैं विवश थी मैडम .... उस दिन गहरी नींद में थी, सहसा आँख खुली तो छोटे साहब को बिलकुल क़रीब पाया। कुछ कहने अथवा करने के पूर्व ही उन्होंने दृढ़ता के साथ अपना हाथ मेरे मुँह पर रख दिया। उसके बाद जो कुछ हुआ, उस पर मेरा वश नहीं रहा। दूसरी बार भी यही हुआ। फिर मैंने दरवाज़ा अंदर से बंद करके सोना शुरू कर दिया। बहुत कोशिश की, परंतु आपको बताने का साहस नहीं जुटा पाई.... पहली बार दिन चढ़े थे, कोई पूर्व अनुभव भी तो नहीं था और काम की व्यस्तता में उधर ध्यान ही नहीं गया। जब वास्तव स्थिति का आभास हुआ तब बहुत देर हो चुकी थी।'

मैंने उसकी बात काटकर ग़ुस्से से काँपते हुए कहा – 'अब बस करो, और दफ़ा हो जाओ मेरी नज़रों के सामने से। सर्वेंट क्वार्टर में कमरा ख़ाली है, हलका होने तक तुम्हें वहीं रहना होगा और आज के बाद मेरी आँखों के सामने भी मत आना वरना अच्छा नहीं होगा।'

विकास अपने भैया और भाभी के लाडले, बहुत स्मार्ट, शरीर और मेरे इकलौते देवर थे। दो भाइयों के बीच उमर का कुछ ज़्यादा ही अंतर था। जब मेरी शादी हुई तब वे स्कूल जाया करते थे। शादी के कई वर्ष बाद हमारे बच्चे हुए थे, लिहाज़ा विक्की ने हम दोनों से ख़ूब लाड़ प्यार बटोरा था। विशेषकर मुझ से बहुत मानूस थे, मैं उनकी भाभी माँ जो थी। अब इंजीनियरिंग के अंतिम वर्ष में थे।

कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि मेरा नटखट व भोला भाला देवर, एक उत्तम परिवार का सदस्य इतनी ओछी हरकत कर सकता है ! हो सकता है कभी किसी मद भरी रात के तिलस्म के प्रभाव में या फिर किसी ज़ोरदार पार्टी शार्टी के ख़ुमार में घर वापसी के बाद अपने कमरे का रास्ता भूल गए हों ..... विक्की के द्वारा यदि किसी मैदान में कामयाबी के झंडे गाड़ने वाली बात हुई होती तो अलग बात थी, असलियत डैडी जी को किस मुँह से बताई जाती .... दबे शब्दों में विराट से ज़िक्र किया तो वे चौंक पड़े, उनके चेहरे पर एक काला बादल सा आकर गुज़र गया ..... नज़रें चुराते हुए बोले–

'कुछ दे दिलाकर मामले को रफ़ा – दफ़ा कर दो, वरना परिवार और नर्सिग होम दोनों की बदनामी होगी।'

परिवार की साख को बचाना गोया अब मेरी ज़िम्मेदारी बन गई थी। मन परेशान हो उठा था कि किसी की एक ग़लती पर परदा डालने की ख़ातिर ना जाने मुझे कितने झूठ बोलने पड़ेंगे और पता नहीं कौन से रूप में इस सबका प्रतिफल भोगना पड़ेगा !

वह एक भयानक तूफ़ानी रात थी। अचानक सन्नाटे को चीरती हुई टेलिफ़ोन की कर्कश ध्वनि सुनकर मैं जग गई। नर्सिग होम से फ़ोन था कि आपकी पेशंट लेबर में चली गई है। तेज़ बिजली की गड़गड़ाहट और आँखों को चकाचौंध कर देने वाली चमक से पूरा कमरा तेज़ रोशनी में नहा गया। पहलू में विराट बेख़बर सो रहे थे। मैं तत्क्षण बिस्तर से नीचे उतर आई। आधी रात को बाहर जाकर ड्राइवर को जगाया और तुरंत गाड़ी निकालने के लिए कहा।

आठवाँ महीना समाप्त होते ही उसे प्रसव वेदना आरंभ हो गई थी। डेलिवरी करवाने बहुत दिक्क़त पेश आई। बच्चा कमज़ोर पैदा हुआ था। इन्क्युबेटर में रखना पड़ा। वैसे डेलिवरी नॉर्मल ही हुई थी। मैं ने जच्चा व बच्चा की सूरत तक नहीं देखी। फ़ारिग़ होते ही वापस अपने चेंबर में आकर काफ़ी देर तक दोनों हाथों में अपना सिर थामे चिंताग्रस्त स्थिति में बैठी रही।

तीसरे दिन उसे अपने चेंबर में बुलवा भेजा। वह धीरे से अंदर दाख़िल हुई और अपना सिर झुकाए हुए नाख़ून से ज़मीन कुरेदती क़दमों में नज़रें गड़ाए जैसे किसी कठोर आदेश की प्रतीक्षा में खड़ी रही। पर्स में जितनी रकम थी मैंने गिने बग़ैर निकालकर उसके सामने धर दी और नज़रें फेरकर तल्ख लहजे में कहा –

'यह पैसे उठाओ और जहाँ जाना चाहो चली जाना, लेकिन ख़बरदार फिर कभी अपनी सूरत न दिखाना और न ही इस शहर में दिखाई देना वरना मुझसे बुरा कोई न होगा!'

लेकिन वह हिली नहीं, मैंने दाँत पीसे और दहाड़ते हुए कहा –

'जाओ न, अब खड़ी क्यों हो ! बच्चा तुम्हें नहीं मिलेगा, वैसे भी वह बहुत कमज़ोर है और बचने का कोई चांस नहीं। ज़्यादा से ज़्यादा एक घंटा और बस ..... लेकिन तुम यहाँ से दूर कहीं भी अपना जीवन दोबारा शुरू कर लेना।'

अपनी ध्वनि व लहजे पर स्वंय मुझे विश्वास नहीं हो रहा था। अश्रुयुक्त नज़रों से उसने मेरी ओर देखा। उन दर्द भरी आँखों में असीम फ़रियाद व अनगिनत प्रश्न मचल रहे थे; जिन्हें होंठों तक लाने का साहस नहीं था। उसके होंठ बस काँपकर रह गए। हतप्रभ सी वह उलटे पाँव बाहर निकल गई, पैसे जैसे के तैसे मेज़ पर पड़े रहे, मैं निश्चेष्ट सी बैठी रह गई। थोड़ी देर बाद एक ठंडी साँस भरते हुए काँपते हाथों से रिसीवर उठाकर आईसीयू का नबंर डायल किया। पूछने पर जवाब मिला –

'बेबी अब ख़तरे से बाहर है और क्रेडल पर डाल दिया गया है।'

'ओके, उसका अच्छी तरह ध्यान रखना और ऊपर का दूध फीड करती रहना, लेकिन सावधान, उसकी माँ अथवा अन्य कोई अंदर न आने पाए।'

नर्स को निर्देश देने के उपरांत मैंने फ़ोन बंद कर नौकर को इशारा किया। अगले क्षण वे दोनों पति-पत्नी अंदर आ गए; जो इलाज के सिलसिले में पिछले दो महीनों से बिला नाग़ा नर्सिग होम के चक्कर काट रहे थे। प्रकट रूप से दोनों बेहद दरिद्र जान पड़ते थे परंतु पागलपन की हद तक संतान के अभिलाषी भी थे। उद्विग्र विचारों को परे झटकते हुए मैंने अपने आपको सँभाला और बोली –

'तुम्हारे टेस्ट्स के परिणाम आ गए हैं, खेद के साथ बताना पड़ रहा है कि किसी अंदरूनी नुक्स के कारण तुम कभी माँ नहीं बन सकतीं लेकिन एक आख़िरी चांस है। अभी थोड़ी देर पहले एक गुमनाम और ग़रीब स्त्री प्रसव के दौरान गुज़र गई लेकिन उसका बच्चा जीवित है। यदि तुम दोनों चाहो तो वह बच्चा तुम्हें मिल सकता है। जल्दी से फ़ैसला कर लो, वरन हम अधिक समय तक उसे यहाँ नहीं रख सकते। क़ानूनन उसे किसी एडॉप्शदन सेंटर भेजना होगा।'

दोनों ने कुछ क्षणों के लिए एक दूसरे की आँखों में देखा। एकबारगी वह मेरे क़दमों में गिर पड़ी और दामन फैलाकर बच्चे की भीख माँगने लगी। उसके पति ने भी बैठे-बैठे ही याचना में अपने हाथ जोड़ दिए थे। मैंने सिस्टर को बुलाकर

हिदायत दी कि बच्चा तुरंत इन दोनों के हवाले कर दिया जाए। उसके बाद मैं निश्चिंत होकर घर वापस आ गई। विराट को मुझ पर पूरा विश्वास था। इसीलिए उन्होंने इस विषय में फिर कभी मुझ से कुछ नहीं पूछा। बात आई गई हो गई।

मैं अक्सर विकास के चेहरे का निरीक्षण करती रही परन्तु वहाँ यौवन के खिलन्दड़ेपन के अतिरिक्त और कुछ न मिला। लगता था कि उनके दिल में उस हादसे की न कोई स्मृति शेष थी और न कोई पछतावा। बड़े घराने की संतान, जिसकी दृष्टि में एक ग़रीब औरत की औक़ात एक दिल बहलावे की वस्तु से अधिक और कुछ नहीं। शायद वह एक क्षणिक जुनून ही था; जिसके चिह्न समय की तेज़ मौजों की चपेट में आकर मिट चुके थे।

एक बहू का कर्त्तव्य निभाते हुए मैंने अपने परिवार की साख को बचा लिया था, लेकिन संतान को खोकर उस ग़रीब स्त्री के मन पर क्या बीती होगी..... उस तूफ़ानी रात की याद आते ही मेरा दिल दहल उठता है .... ऐसा लगता है मानो सीने पर एक वज़नी पत्थर रखा हो। उस बोझ तले दबकर कब तक जियूँ आख़िर.... शायद यही मेरे पापों का प्रतिफल है। पाप की काली छाया न केवल पापी के जीवन को अंधकारयुक्त बनाती है बल्कि अक्सर उसके अपने भी चपेट में आ जाते हैं–

'पता नहीं, मेरा पाप कब सर चढ़कर बोलेगा?'

मैं सिहर उठी..... परंतु उस समय मैं और कर भी क्या सकती थी, परिस्थिति ही कुछ ऐसी थी कि तुरंत निर्णय लेना पड़ा। विक्की के कोर्स का फ़ाइनल इम्तिहान चल रहा था। समाप्त होते ही उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए कैनेडा चले गए।

कुछ समय पश्चात ससुर जी फ़ोन पर बड़े उत्साहपूर्ण अदांज़ में बता रहे थे कि एक प्रतिष्ठित परिवार की सुंदर व पढ़ी-लिखी लड़की के साथ विकास का रिश्ता तय हो गया है। वे पंद्रह दिन की छुट्टी पर घर आए हुए थे। बड़े धूम-धाम के साथ शहर के सबसे महंगे सात सितारा होटल में विवाह संपन्न हो गया। शादी के तुंरत बाद पति-पत्नी दोनों वापिस कैनेडा चले गए। हनीमून वहीं मनाने का इरादा था।

आज चित्रा का फ़ोन आया था। फफक-फफक कर रोए जा रही थी बेचारी। तीसरी बार उसका गर्भपात हुआ था। अत्यंत सतर्क रहने पर भी उसकी उम्मीद एक बार फिर पानी की तरह बह गई थी।

इस प्रकार बार-बार अबॉर्शन होना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता था। मैंने फ़ेक्स द्वारा समस्त रिपोर्ट्स मंगवा लिए। बारीकी के साथ उसका निरीक्षण किया और अन्य माहिर डॉक्टरों के संग विचार विमर्श करने के पश्चात भविष्य में फिर कभी ऐसा चांस न लेने की उसे सख्त ताकीद कर दी। बेचारी चित्रा और विक्की के जीवन में हमेशा के लिए अंधेरा छा गया।

सब्ज़ी, तरकारी नौकरों के हाथ मँगवाने के बजाए कभी-कभी मैं ख़ुद चली जाती हूँ। बाज़ार से ढेरों ताज़ा तरकारी, फल आदि लेकर लौटती हूँ, क्योंकि विराट को सलाद और ताज़ा तरकारी के बने पकवान बहुत पंसद हैं..... काश उस दिन मैं बाज़ार न गई होती लेकिन लगता है नियति भी मुझे कुछ दिखाने पर उतारू थी !

वहाँ कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं दे रही थी। तरकारी बेचने वाले एक से बढ़कर एक आवाज़ में बोली लगा रहे थे .... 'गाजर तीस रुपए किलो, शलग़म पैंतीस रुपए किलो, ताज़ा माल, अस्सी रुपए किलो ले लो बहन जी, भैया जी .....।'

अचानक उस तरकारी के ढेर के पीछे एक परिचित सा चेहरा दिखाई पड़ा। मस्तिष्क पर ज़ोर देकर सोचने लगी कि इसे कहाँ देखा है! वैसे तो दिन में सैकड़ों लोगों से साबिक़ा पड़ता रहा है लेकिन इसे अनदेखा करके आगे बढ़ जाने को मन नहीं मान रहा था। मारे उत्सुकता के क़दम अनायास ही उस स्त्री की ओर उठ गए।

यादों के धुंधलके से निकलकर अचानक आज से इक्कीस बरस पहले वाला वह दृश्य निगाहों में घूम गया ..... वह तूफ़ानी रात, संतान के लिए तरसते हुए दो मायूस चेहरे, उनको सांत्वना देते हुए मेरे शब्द .....।

'एक लावारिस बच्चा है, गोद लेना चाहते हो तो उसे लेकर चुपचाप यहाँ से कहीं दूर चले जाना वरन् उसे एडॉप्शन सेंटर भेज दिया जाएगा .....।'

बेध्यानी में उसी पर नज़रें गढ़ाए मैं क़रीब पहुँच गई थी; जैसे ही उसने मुझे देखा तुंरत पहचान लिया। उसके चेहरे पर हैरत के साथ कृतज्ञता के भाव भी उभर आए थे। थोड़े फ़ासले पर उसका आदमी बैठा हुआ था। जोश भरे अंदाज़ में इशारा करते हुए उसे पुकारकर पास बुला लिया। उसने भी देखते ही पहचान लिया था। आश्चर्य चकित और भाव विभोर स्थिति के अंतर्गत उन दोनों को सूझ नहीं रहा था कि क्या कहें और क्या करें। यह वही दोनों थे; जो उस तूफ़ानी रात में मेरे निर्देशानुसार नवजात शिशु को लेकर रात के अंधेरे में चुपके से कहीं ग़ायब हो गए थे।

'ओहो ! डॉक्टरनी साहिबा ! कितने वर्षों बाद आपके दर्शन हुए, दरअसल उस रात के बाद हम यह शहर छोड़कर चले गए थे, लेकिन क्या करें, वतन की याद आख़िरकार वापस खींच ले आई। मैडम! आपका हम पर बहुत बड़ा उपकार है, जो चाहे ले जाइए, सब कुछ आप ही का है।'

'जल्दी से बताओ, वह कहाँ है जिसे तुम उस रात ले गए थे! मैंने बेताबी के साथ इधर-उधर देखते हुए पूछा।'

'वही तो है हमारे जीवन का सार, हमारे बुढ़ापे का सहारा। हम तो निस्संतान ही रह गए होते यदि आप ने दया न की होती! वह देखिए, हमारा दायाँ बाज़ू, वहाँ बैठा हुआ है।'

मेरी निगाहें उसके हाथ के इशारे की ओर उठ गईं मैली चीकट बनियान, पाजामा पहने हुए और सिर पर एक गंदा सा तौलिया लपेटे आलती-पालथी मारे वह प्याज़ के एक बड़े से ढेर पर बैठा हुआ ऊँची आवाज़ में ग्राहकों का ध्यान आकृष्ट करने में लगा हुआ था।

'भैया, प्याज़ ले लो,सिर्फ, अस्सी रुपए किलो, ताज़ा माल है,आके ले जाना बहन जी! मैडम कितने किलो तोल दूँ, जल्दी बताइए, धंधे का टाइम है, अस्सी रुपए किलो, ताज़ा माल, ताज़ा माल।'

विस्फ़ारित नयनों से हतप्रभ सी मैं ईश्वर की अद्भुत लीला को निहार रही थी! डील- डौल और नाक नक़्शे से वह बिल्कुल विक्की की कार्बन कॉपी था !!

❐

और टल गई फाँसी

ब्रजेश राजपूत

ये बारिश भी इस बार रुकने का नाम नहीं ले रही है। ऐसी बरस रही है जैसे सारी दुनिया का पानी हमारे गाँव में ही बरसने को उतावला हो रहा हो। वो तो भला हो मगनलाल का जिसने जिद कर ये झोंपड़ा गाँव से थोड़े दूर पहाड़ पर बनाया था। पूरे गाँव की गलियों में नदियाँ बह रही हैं मगर हमारा ये झोंपड़ा पानी की मार से बचा है। हाँ ये जरूर है कि पानी नीचे से नहीं तो उपर खपरैल से टपकता है। और जब बारिश तेज होती है तो ये टपकना बहने में बदल जाता है। घर में जितने बर्तन है सब इस टपकने और बहते पानी को भरने में लग जाते हैं। और थोड़ी देर में ही ये बर्तन भी खत्म हो जाते हैं पर पानी टपकना बंद नहीं होता। वैसे भी बर्तन उतने ही हैं जितने इस घर में लोग है। मगनलाल के जेल जाने के बाद मैं यानी बसंता, बहन संता और हम दोनों के दो-दो बच्चे। यानी कि छह लोग और एक कमरे का ये झोंपड़ा। पर मैं अपनी चार मुर्गियों और दो कुत्तों को भी गिनती हूँ; जो हमारे परिवार के ही हैं और धूप बारिश इस झोंपड़े में ही गुजारते हैं।

मगनलाल के जाने के बाद सारे इंसानों की नजर हमको लेकर बदल गई, मगर ये जानवर आज भी वैसे ही हैं जैसे पहले थे। इनको देख कभी-कभी सोचती हूँ, काश! कितना अच्छा होता हमारे गाँव में भी जानवर ज्यादा होते ओर लोग कम तो हम औरतें बेफ्रिक महसूस करते। जब तक मगनलाल था, गाँव के किसी आदमी की नजर हमारी तरफ उठती नहीं थी, मगर अब गाँव के बड़े बूढ़े तो राह चलते या अकेले में छींटाकशी करते ही हैं। रिश्ते के मर्दों की ललचायी नजरें भी छिपती नहीं हैं।

कितनी खुशी-खुशी पास के गाँव से इस गाँव में आई थी। चचेरी बहन संता से मगनलाल पहले ही शादी रचा चुका था। तीन साल बाद मुझे एक शादी में देखा तो मगन हो गया। जिद ठानकर बैठ गया कि अब पूरवो मुझसे भी शादी करेगा। पहले तो मैं भी घबड़ायी मगर मगनलाल की कदकाठी और गठीला बदन मुझे भी अच्छा तो वो लगता ही था। फिर घरवालों ने भी समझाया कि तेरी बड़ी बहन भी तो है क्यों डरती है। मगनलाल मेहनती था दिन रात खेतों में काम करता और खाली वक्त में हम दोनों को प्यार। बड़ी बहन से तीन बच्चे तो उसे थे ही मेरे भी जल्दी जल्दी चार बच्चे हो गए।

दो-तीन बीबियों का भरा पूरा परिवार हमारे आदिवासी समाज में बुरा नहीं माना जाता। शादी तो जल्दी हो ही जाती है उसके बाद यदि घर कुटुम्भ में कोई विधवा हो जाती है तो उसे भी मर्द अपने साथ रख लेता है। इसे समाज शादी कह ले या कुछ और नाम दे, एक विधवा औरत को तो जिंदगी जीने के लिये मर्द का सहारा मिल ही जाता है। सुना है गाँव और शहर में लोगों की एक ही बीबी होती है। मगर उनके मर्दों के चक्कर कई होते हैं ऐसा गाँव की औरतें कहती हैं। वैसे तो गाँव जाना कम ही होता है मगर गेहूँ पिसाने और राशन लेने गाँव जाते हैं तो पंसारी की लड़कियाँ और उसकी सहेलियाँ मजाक में छेड़ती थीं, एक मर्द और दो बीबियों को लेकर। कैसे रहती हो कैसे सोती हो। ये पूछकर मजाक करती थीं।

एक बार तो मैंने कह ही दिया- 'बिन्नी तू भी अपने मरद की दो शादी करवाजे, मजे में रहोगी। गिरस्ती के काम कम करने पड़ेंगे और मरद की मार भी कम पड़ेगी।' देर तक हँसती रही थीं वो सब। हँसते तो हम सब भी खूब थे जब मगनलाल खेत से थका हारा लौटता था और हमें खेत के किस्से सुनाता था। बेटियों की तोतली जुबान सुनना और उनके साथ देर तक खेलते रहना उसका पसंदीदा काम था। बाहर लगे नीम के पेड़ पर झूला उसी ने अपने हाथों से डाला था। छोटी रामरती जब एक बार झूले से गिरकर लहूलुहान हो गई थी तो उसने हम दोनों को बुरी तरह डाँटा था और ताकीद की थी कि अब कोई बच्चा झूले से गिरा तो वो हम दोनों की टांगें तोड़ देगा। उसके बाद से मैं या फिर संता बच्चों के खेलते समय झोपड़े के बाहर ही खड़े रहते थे।

बड़ा परिवार खुशियों के साथ-साथ बड़ी परेशानियाँ भी लाता है। बारह लोगों का पेट पालना मगनलाल के लिए दिनों दिन मुश्किल भरा होने लगा था। उस पर तीन साल पहले ऐसी ही बारिश

ब्रजेश राजपूत, एबीपी न्यूज, भोपाल में विशेष संवाददाता, अखबारों में काम करने के बाद पिछले पंद्रह सालों से इलेक्ट्रानिक मीडिया में सक्रिय, टीवी रिपोर्टिंग के अलावा अखबारों में सामयिक विषयों पर लेखन, टीवी खबरों के लिए कई सम्मानों से सम्मानित, चुनावी रिपोर्टिंग पर किताब।
संपर्क: ई.१०९ ३० शिवाजी नगर, भोपाल, ०९४२५०१६०२५,
brajeshrajputbhopal@gmail.com

की मार ने हमारी मक्के की फसल को चौपट कर दिया था। बहुत मान मनुहार के बाद पटवारी ने मुआवजे का पैसा दिया दो सौ रुपये। उसमें से भी पचास रुपये अपने पास रख लिये थे। अब भला डेढ़ सौ रुपये में दो हजार के नुकसान की भरपाई कैसे होती। घर में खाने को दाना नहीं था। बच्चे भूख से तड़पते थे। ऐसे में हाथ फैलाना पड़ा मगनलाल को गाँव के साहूकार के आगे। मगर वो जो पैसे लाया था उसमें से आधे पैसे तो गाँव के उस चौकीदार को दे दिये जिससे पैसे लेकर मक्का लगाया था। उम्मीद थी फसल अच्छी आएगी तो सभी के पैसे चुका देंगे। मगर गाँव तो एक से उधारी लेकर दूसरे की उधारी चुकानी पड़ रही थी। जो बचे उनसे भला कितने दिन गुजारा हो सकता था।

फिर एक दिन वही हुआ जिसका डर मगनलाल को था। उधारी वाले सारे लोग एक साथ आ गए पैसा मांगने। कोई बैल खोलकर ले जाने को तैयार था तो कोई घर में रखा अनाज। बड़ी मुश्किल से बला टली। उस दिन के बाद से मगनलाल गुमसुम ही रहने लगा। हँसी गायब हो गई थी उसकी। चुप हो गया था एकदम। रात में बगल में लेटा-लेटा भी जागता। कम बोलने वाली संता भी उसकी चुप्पी पर हैरान रहने लगी थी। एक दिन संता ने दोपहर में मुझसे कहा भी इस मरद के हावभाव ठीक नहीं लग रहे कुछ कर ना बैठे। गाँव छोड़कर भाग ना जाये। मगर मैं जानती थी आदिवासी मरद घर-गाँव छोड़कर भागने वाले नहीं होते। वो तो हर हाल में जीने और दुश्मन को मरने मारने वाले होते हैं।

कहते हैं दुःख तकलीफ कह कर नहीं आती। और हमारी जिंदगी का वो काला दिन आ ही गया। जिसका हमें डर था। हम दोनों बहनें जंगल में लकड़ियाँ बीनने गए थे। ये लकड़ियाँ बीनकर और गाँव में बेचकर हम कुछ पैसा कमा लेते थे; जिससे दो तीन दिन का राशन पानी आ जाता था। हमारे साथ दो बड़े बेटे भी थे; जो हाथ बंटा रहे थे। तभी गाँव की ओर से चीख पुकार मचने लगी। हमारे जेठ का बड़ा बेटा फागराम भागा-भागा हमारी ओर आ रहा था, वो दूर से ही चिल्लाया चाची मगनलाल चाचा ने फाँसी लगा ली। बस इतना सुनना ही था मैं सन्न रह गई, इसी बात का डर था। यही होना बाकी था। मेरे पैर सरपट गाँव की ओर दौड़े जा रहे थे, काँटों और झाड़ियों की परवाह नहीं थी मुझे।

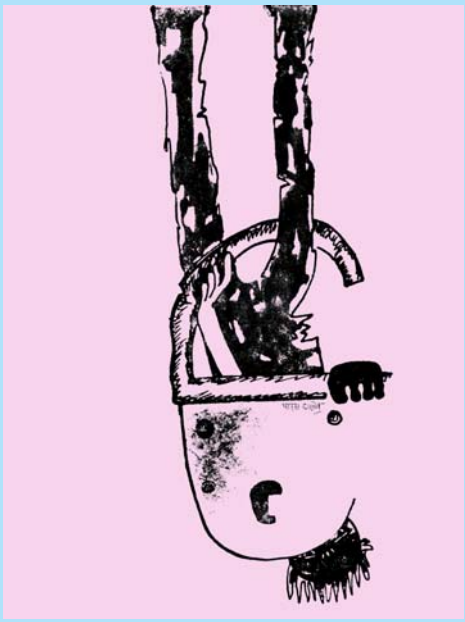

साड़ी कई जगह फंसने के कारण फट गई। पैरों से खून निकलने लगा मगर सबसे आगे मैं, पीछे बच्चे और संता दौड़ रहे थे। दूर से ही घर दिखा। भीड़ लगी हुई थी। मगनलाल के दोनों भाई भाभी दिखे। मगर मेरी आँखें तलाश रहीं थी अपने बच्चों और मगनलाल को। मगनलाल नीम के पेड़ के नीचे पसीना-पसीना बैठा था। शायद उसने नशा किया हुआ था। आँखें लाल थीं और वो लगातार हाँफ रहा था। पास में रस्सी पड़ी थी। उसे बचा लिया गया था मगर मेरे जेठ उसे लगातार गालियाँ बके जा रहे थे। इस बीच में उन्होंने उसके सीने में लात भी मारी मैं चीख पड़ी और कूद पड़ी, उसे बचाने के लिए। क्या किया है जो इसे मार रहे हो। जेठ गरजे क्या नहीं किया इस पापी ने। जा देख घर के अंदर। अब फिर मुझे अपने बच्चों की याद आई, पाँचों बच्चे इस भीड़ में नहीं दिख रहे थे। तेज हवा सी मैं घर के दरवाजे की ओर लपकी। अंदर क्या था। साक्षात् नरक का दृश्य था। जिसे देखकर मुझे चक्कर आने लगे। खून की नदी बही हुई थी। और इस नदी में पाँच छोटे-छोटे बच्चों की लाशें तैर रहीं थी। पास में ही मगनलाल की खून से सनी कुल्हाड़ी पड़ी थी।

दो साल की जमुना दरवाजे के पास पड़ी थी। मुँह खून से लथपथ था। लग रहा था बस अभी सोयी है। लीला को पहचानना कठिन हो रहा था। उस बच्ची का भी गला रेंता गया था। आरती और सविता की लाशें पास-पास पड़ी थीं। कहीं गीले तो कहीं सूखे खून का अंदर दरिया सा बहा हुआ था। सबसे बड़ी फूलकुंवर चूल्हे के पास बिछी पड़ी थी। उसका भी गला काटा गया था। दो से छह साल की इन मासूमों का कत्ल कर दिया गया था। कमरे में बिखरे ताजे खून की गंध से मुझे उबकाई और चक्कर आने लगे। माजरा समझते देर नहीं लगी। कुछ कह पाती उससे पहले ही मैं ढेर हो गई।

होश जब आया तो मैं संता की गोद में थी; जो चीख मार-मार कर रो रही थी। शाम रात में बदल गई थी। पुलिस की गाड़ियों ने घर को घेरा हुआ था। इस गहमागहमी में मैं उस दानव को तलाश रही थी; जिसने मेरी फूल सी बेटियों की जान ले ली थी। थोड़ी दूर पर ही मगनलाल दिखा। बहुत सारे कैमरों के सामने कुछ बोल रहा था। अँधेरे में उसके मुँह में पड़ रही रोशनी में वो राक्षस जैसा ही दिख रहा था। मैं घर के बाहर पड़ा हंसिया लेकर चीखते हुए उसकी तरफ लपकी मगर तब तक पुलिस ने उसे गाड़ी में बिठा लिया था।

जिंदगी उजड़ चुकी थी हमारी। ना तो दिन को चैन ना रात को आराम। खाली बैठे हम सोचते रहते क्यों मार डाला उस नराधम ने हमारी बेटियों को। क्या सोच कर मार डाला उसने। मारते समय हाथ नहीं काँपे होंगे उसके। जिन बेटियों को पेट पर लिटाकर उसने गाने सुनाये। पीठ पर और कंधे पर बिठाकर जिन बच्चों को उसने गाँव भर में घुमाया था, उनकी गर्दन काटते वक्त वो क्या सोच रहा होगा। कभी इन सवालों का जबाव हमें नहीं मिल पाया। इस बीच में तीन साल गुजर गए। कोर्ट कचहरी का चक्कर चलता रहा। पता चलता रहता कि मगनलाल की पेशी चल रही है सिहोर में। वो जेल में बंद है। हम कभी मगनलाल से मिलने नहीं गए। उसके भाई बताते रहते थे कि सिहोर की अदालत में वो हम दोनों यानी संता-बसंता को पूछता था। चारों बच्चों के बारे में भी सवाल करता था। कभी मन तो होता था उससे मिलने का। मगर सिहोर तक जाने के पैसे भी तो हमारे पास नहीं जुड़ते थे। मगनलाल के जाने के बाद खेती तो चौपट हो ही गई। उसके भाइयों ने कुछ खास मदद नहीं की। उनके अपने दुःख दर्द हैं किससे शिकायत करें। ले देकर जंगल का ही सहारा था। जहाँ से लकड़ियाँ चुनकर गाँव में बेच देते थे। वह भी यदि कहीं जंगल के साहब आ गए तो लकड़ी का गट्ठर

छीनते थे और इज्जत पर हाथ डालने की कोशिश करते थे। हम बताते हमारा मरद अभी जेल में है, मरा नहीं, तो वो हँसते हुये कहते ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहेगा वो, फाँसी होगी फाँसी। बहुत दिनों के बाद हमको फाँसी का मतलब समझ में आया। जिसे जान कर हम डर गए। क्या मगनलाल को रस्सी पर लटकाकर मार डालेंगे। फिर इन बच्चों और हमारा क्या होगा। कैसे जिएँगे हम। भले ही वो जेल में है, मगर जिंदा तो है, कभी तो छूटकर इन बच्चों से मिलने आएगा; अपनी बीबियों से मिलने आयेगा। इतने दिनों में हम उसे मन ही मन माफ भी कर चुके थे। हम जानते थे मगनलाल के सिर पर गरीबी का भूत सवार हो गया था। जिसके बस में आकर उसने बेटियों को कत्ल कर दिया और खुद भी मरने की कोशिश की।

एक दिन गाँव का चौकीदार ओमप्रकाश भागा-भागा आया। उसने बताया सिहोर से साहब आए हैं। मगनलाल के भाइयों को ले जाने के लिये। क्यों भाइयों ने क्या किया। क्यों ले जा रहे हो उनको। मैं चीखी। बदले में उन्होंने भाइयों को किनारे ले जाकर कुछ समझाया। फिर मगनलाल के बड़े भाई ने कहा संजू को तैयार कर दो। उसे जबलपुर ले जाना है। दो दिन बाद उसके बाप की फाँसी है। क्या मगनलाल को रस्सी पर लटका दोगे। यानी कि इन बच्चों का बाप जिंदा नहीं रहेगा। ये अनाथ और हम दोनों बीबियाँ विधवा हो जाएँगी। मुझे फिर गश आ गया।

होश आया तो संजू जा चुका था सरकारी साहब के साथ। मगनलाल का भाई भी साथ गया था। दिन भर बैचेन रही मैं। बेटियों की हत्या के बाद संता तो जैसे चुप सी हो गई है। उसकी आवाज सुने मुझे भी कई दिन हो जाते है। फिर वो लंबी चुप्पी पर है। मैं ही उससे पूछ रही हूँ। फाँसी पर क्यों लटकाते हैं। क्यों नहीं सोचते कि इस आदमी को तड़पा-तड़पा कर मार देने से वो जिंदा नहीं हो जाएँगे; जिसे इसने मारा था। वो बुराई नहीं मर जाएगी, जिसका गुलाम होकर इसने अपराध किया। इसे मारोगे तो इसका परिवार भी जीते जी नहीं मर जाएगा क्या। कितने लोगों को मारोगे एकसाथ और क्या मिल जाएगा इसे मारकर। ये तो ऐसे ही मर चुका है।

मगनलाल का बड़ा भाई जब उससे मिलने सिहोर जेल गया था तो वो कह रहा था कि जिंदा लाश बन गया है मगनलाल; कहता भी है वो कि मैं तो कब का मर चुका है बस संस्कार होना बाकी है। तो क्या संस्कार करने के लिए ही फाँसी दोगे। मैं बड़बड़ा रही थी और संता बच्चों में मगन चुप थी। वो बोली चल कुछ खा ले सुबह उसके मरने की खबर आएगी तो कुछ खा नहीं पायेगी। पर मेरी तो भूख प्यास ही मर चुकी थी। बच्चों को खिलाकर ही पेट भर जाता था। रात में कुछ खाया नहीं गया। दो गिलास पानी पीकर लेटी तो आँखों में नींद गायब थी। मगनलाल से मिलने शादी करने और फिर उसके साथ मेला जाने की यादों के दृश्य आँखों में घूम रहे थे। कब नींद लग गई पता भी नहीं चला।

सुबह आँख खुली तो चौकीदार ओमप्रकाश चिल्ला रहा था, भाभी ओ भाभी दरवाजा खोलो देखो कौन आए हैं। मुझे समझते देर नहीं लगी मगनलाल की लाश लेकर सरकारी साहेब आए होंगे। तभी ओमप्रकाश साथ में आया है। संता भी जाग गई थी। वो दरवाजा खोलने बढ़ी तो मैंने रोका नहीं। मैं देख नहीं पाऊँगी। मुझे भी मर जाने दो। उसके बाद दरवाजा खोलना। मैंने घर में रस्सी तलाशनी शुरू कर दी। संता ने मेरे इरादे भांपकर रस्सी छीनी और मुझे एकतरफा धक्का दिया। मैं गिर पड़ी मगर मैं तो मरने पर उतारू थी। फसल में डालने की कीटनाशक दवा की शीशी मुझे दिखी। उसे खोलकर मुँह में उड़ेल ही रही थी कि ओमप्रकाश की आवाज आई। ओ भाभी मगनलाल बची ग्यो, नीं हुई फाँसी। अरे खोलो जल्दी। मुझे कानों पर भरोसा नहीं हुआ। तीन सालों के बाद कोई अच्छी खबर सुन रही थी। लपक कर दरवाजा खोला तो ओमप्रकाश के साथ कुछ लोग थे। उसने बताया भाभी ये पत्रकार हैं भोपाल से आए हैं। उनमें से कोई चश्मे वाला आदमी बोला मगनलाल की फाँसी टल गई हैं, वो बच गया है। वो मुझसे खुशी से चहकने की उम्मीद कर रहे थे मगर मैं तो उलझन में पड़ गई थी। वो बच गया ये तो मैं समझ गई पर टलना क्या होता है ये मेरी समझ से परे था। साहेब ये फाँसी क्या ऐसी ही जिंदगी भर टली रहेगी। मेरी बात पर वो सारे हँस दिए और पलटकर गाँव की ओर चल पड़े। मगर मेरे सवाल का जबाव नहीं दिया। क्या किसी के पास मेरे सवाल का कोई जबाव है .।

❐

लघुकथा

कनफ़ैशन

डॉ. सुधा गुप्ता

माइकेल कई बरस से बीमार था, साधारण - सी आर्थिक स्थिति पत्नी, बच्चे, सारा भार। जितना सम्भव था, इलाज कराया गया; किन्तु सब निष्फल। शय्या-कैद होकर रह गया। लेटे-लेटे जाने क्या सोचता रहता....अन्ततः परिवार के सदस्य भी अदृष्ट का संकेत समझकर, मौन रह, दुर्घटना की प्रतीक्षा करने लगे। एक बुज़ुर्ग हितैषी ने सुझाया-'अब हाथ में ज़्यादा वक्त नहीं, फादर को बुला भेजो ताकि माइकेल 'कनफ़ैस' कर ले और शान्ति से जा सके।' बेटा जाकर फ़ादर को बुला लाया। फ़ादर आकर सिरहाने बैठे, पवित्र जल छिड़का और ममताभरी आवाज़ में कहा-'प्रभु ईशू तुम्हें अपनी बाँहों में ले लेंगे मेरे बच्चे! तुम्हें सब तकलीफ़ों से मुक्ति मिलेगी, बस एक बार सच्चे हृदय से सब कुछ कुबूल कर लो।'

माइकेल ने मुश्किल से आँख खोलीं, बोला-'फादर मैंने कभी किसी को धोखा नहीं दिया।'

फादर ने सान्त्वना दी- 'यह तो अच्छी बात है, आगे बोलो!'

माइकेल ने डूबती आवाज़ में कहा-'फादर मैं झूठ, फरेब, छल-कपट से हमेशा बचता रहा।'

फादर ने स्वयं को संयमित करते हुए कहा-'यह तो ठीक है पर अब असली बात भी बोलो....माइकेल!'

माइकेल की साँस फूल रही थी, सारी ताकत लगाकर उसने कहा 'फादर, दूसरे के दुःख में दुःखी हुआ, परिवार की परवाह न कर दूसरो की मदद की...।'

अब फादर झल्ला उठे-'माइकेल, कनफ़ैस करो....कनफ़ैस करो...गुनाह कुबूलो....वक्त बहुत कम है...।'

उखड़ती साँसों के बीच कुछ टूटे-फूटे शब्द बाहर आए-'वही तो कर रहा हूँ. फ़ादर. !'

❐

क़र्ज़

प्रतिभा सक्सेना

'उस दिन मैं मर गया होता तो आज तुम विधवा होतीं। ये बच्चे अनाथ ...।'

'बस, अब कुछ मत कहना,.' हाथ से बरजते हुए रमना बीच में बोल पड़ी, 'ये तो अपनी-अपनी किस्मत है।'

प्रकाश कुछ सुनना नहीं चाहता, वह चुप कैसे रहता- 'किस्मत ? अरे, मेरी मौत उसने अपने सिर ले ली। अस्पताल में कितनी पीड़ा झेल कर मरा है वह।'

'खर्चा तो सारा तुम करते रहे !'

'क्या पैसा ही सब कुछ होता है ? कितनी भाग-दौड़, दिन-रात की सेवा उन लोगों ने की ! मानसिक कष्ट उन लोगों ने झेला और ज़िन्दगी भर झेलेंगे। अरे, मैं तो आधा हिस्सा ही देता हूँ। अगर तुम पर यह मुसीबत पड़ी होती तो ...कैसे क्या होता सोच कर ही दहल जाता हूँ ?'

'बस,चुप करो! अशुभ बातें मुँह से मत निकालो।'

'तुम्हें सुनना भी सहन नहीं होता, और वह जो झेल रही है,मेरी वजह से !'

'किसी की वजह से कोई नहीं मरता। जिसकी लिखी होती है उसी की आती है।'

'यह तुम्हें लगता है न! उसके साथ कैसे क्या हुआ मुझे मालूम है। मैंने जो देखा है,जो बीती है मुझ पर वह तुम नहीं जानतीं और जान सकती भी नहीं। तुम वहाँ होती तब जानती। मैं जो कर रहा हूँ वह कितने साल ? उसके लड़के कमाने लगेंगे तब क्या वह कुछ लेंगे हमसे ?'

प्रकाश के मुँह से अनायास निकलता चला जा रहा था, 'वह तो अभी भी कहती है -भाई साहब दुकान डलवा दीजिए, लड़का बैठेगा पर मैं सम्हालूँगी। आपने बहुत किया पर आपकी अपनी गिरस्थी है। मैं बहिन के सामने सिर नहीं उठा पाती।'

'तो दुकान डालने में क्या हर्ज़ ?'

'उसके सपने थे एक बेटे को डाक्टर, एक को वकील बनाएगा, मैं कम से कम उन्हें पढ़ने-लिखने में मदद कर सकता हूँ। आगे वो जो करें वह उनकी किस्मत ! उस दुखी विधवा को देख मुझे तुम्हारा ध्यान आता है,वह दु:ख मुझसे सहन नहीं होता।'

'मत कहो। आगे से कभी मेरे लिये ये शब्द मत बोलना।'

'उन बच्चों के चेहरे देखे हैं तुमने ? कितने खुश थे पहले। अब कैसे हो गए हैं -क्यों ? कभी समझने की कोशिश की तुमने ? नहीं न ? अपने बच्चे होते इस हालत में तब .. ..?'

कानों पर हाथ रख लिए रमना ने, चीख उठी, 'बस करो ! नहीं सुना जाता मुझसे। मेरे बच्चों के लिए मत कहो ऐसे !'

'ओह, सुन कर मन इतना इतना खराब हो जाता है। अगर ..खैर जाने दो।....और वह -जो दूसरे का दुर्भाग्य ज़िन्दगी भर झेलेगी ? उसका कर्ज़दार तो मैं हूँ।'

रमना सन्न बैठी है।

'तुमने वह नहीं देखा जो मैंने देखा है। अपनी मौत देखी मैंने, तुम्हें, बच्चों को कैसे-कैसे देखा- क्या-क्या सुना ..कैसी गुज़री मेरे ऊपर, तुम कुछ नहीं जानतीं।'

अवसन्न-सी रमना को देख प्रकाश चुप हो गया।

अब भी, चन्दू की मृत्यु की चर्चा सुनता है, तो सिर घूमने लगता है - कानों में आवाज़ें आने लगती हैं। तमाम लोग इकट्ठा हैं। हाँ, पुलिसवाले, अखबारवाले और जाने कौन-कौन। खोज-बीन चल रही है। लोग कह रहे हैं 'प्रकाश वर्मा मर गया।...चेहरा पहचान में नहीं आ रहा।... 'च्च्चच् चच्च' हो रही है.....,उधर देखो पिछली सीटवाला आदमी हिल रहा है... लगता है होश आ गया।...क्या नाम है ?...ये जॉकेट में पर्स और कुछ कागज़-पत्तर निकले हैं।...हाँ, चन्द्रभान है ...। चन्द्रभान होश में आ गया है।...और प्रकाश ? बुरी तरह घायल -शरीर की दशा देखो ज़रा, उफ़ देखा नहीं जाता... पता नहीं बचेगा या नहीं, होश ही नहीं है।... जॉकेट में रखे पर्स से और काग़ज़ों से पहचान हो गई है। 'प्रकाश' नाम सुनकर कुछ-कुछ होने लगता है, अंदर कुछ हिल जाता है। क्षत-विक्षत, बेहोश और मृत ! कितने नाम लिये जा रहे हैं पर एक यही नाम जाकर बार-बार मन से टकराता है, कानों में बार-बार गूँजता है। 'प्रकाश','चन्द्रभान' कितने जाने-पहचाने नाम। कौन हैं ये? मैं कौन

प्रतिभा सक्सेना हिन्दी की वरिष्ठ कवयित्री, कहानीकार हैं। प्रमुख कृतियाँ सीमा के बंधन (कहानी संग्रह), घर मेरा है (लघु-उपन्यास), फ़ैसला सुरक्षित है (कुछ हास्य कुछ व्यंग्य), उत्तर-कथा (खंडकाव्य) हैं। स्वतन्त्र लेखन में व्यस्त, सेवा निवृत्त (रीडर) हैं।
1341 Parsons Court,
Folsom, CA-95630
pratibha_saksena@yahoo.com

हूँ? सब कह रहे हैं मैं चन्द्रभान हूँ –हो सकता हैं। भारी चोट लगी है सिर पर अभी तक चक्कर खा रहा है। कैसा अजीब-अजीब लग रहा है। दिमाग़ में कुछ आता है, फिर एकदम गायब हो जाता है। बोलने की कोशिश करता है गले में आवाज़ नहीं, जीभ हिलती नहीं। आवाज़ें ही आवाज़ें। बस सुन रहा है।

'हाँ होश आ गया –चन्द्रभान को ...बस में उछल गया ऊपर सिर टकराया था..., पाँव पर कुछ भारी चीज़ गिरी है। उँगली से खून बह रहा है बिल्कुल पिच गई।' वह अपना पाँव देखने की, हिलाने की कोशिश करता है। आँखें खुलती नहीं, शरीर पर वश नहीं। सारे इन्द्रिय-बोध कुंठित हो गए हैं, शरीर बिल्कुल सुन्न। कुछ जानने –समझने में सामर्थ्य चुक गई-सी !

आज भी प्रकाश की नज़र अपने पाँव पर जाती है। उसे भ्रम होने लगता है –यह उँगली किसकी है –पिची हुई उँगली चन्द्र भान की थी ?और फिर मैं.. ? याद कर उसी मन:स्थिति में पहुँच जाता है। भ्रम होने लगता मैं कौन हूँ? प्रकाश ? चन्द्रभान ? सिर घूमने लगता है सब कुछ भूल जाता है सोचने –समझने की क्षमता ग़ायब हो जाती है। मैं कौन हूँ ? पहचानने की कोशिश करता है। चारों ओर देखता है। कुछ अपना नहीं लगता। घर,पत्नी ! ध्यान से देखता है सबको। सब अपरिचित-से। उस काल उसके भीतर का 'मैं' कुछ नहीं रहता, कहीं नहीं रहता। जैसे विलीन हो गया हो – न वर्तमान, न अतीत –कहाँ होता है कुछ पता नहीं। समय का कौन सा विभाग है जो सब निगल लेता है। जहाँ जाकर बार-बार फँस जाता है प्रकाश?

बड़ी आसानी से टिकट मिल गया था उस दिन। बस भरने में भी अधिक समय नहीं लगा। अभी तो घाटी में काफ़ी दूर चलेगी। पहाड़ों के पास आते ही ठंडक बढ़ने लगेगी। थोड़ी चाय अभी थर्मस में है। पी ली जाय। प्रकाश उठा और टँगा हुआ थर्मस उतारने पीछे घूमा, बस के झटकों में बैलेन्स बना रहा था कि पीछे से आवाज़ आई 'अरे, प्रकाश ! तुम भी चल रहे हो ?'

पीछे घूम कर देखा उसने –'वाह चन्दू, तुम कहाँ से टपक पड़े ?'

उसका बचपन का दोस्त चन्द्रभान। चलो, रास्ता अच्छा कटेगा। चन्दू उठ कर चला आया।

'तुम कब आए ? मैंने देखा नहीं।'

'बस भरनेवाली थी, वो तो ये कहो सीट मिल गई। पीछे ही सही, बैठने को तो है।'

प्रकाश की सीट पर दोनों आगे पीछे होकर बैठ गए।

'कितनी अच्छी जगह पाए हो। तीनों तरफ का व्यू बस तुम्हारा ही है।

प्रकाश को आगे ड्राइवर के साइड में सीट मिली थी। सामने का पूरा व्यू। साइड के शीशे भी अपने।

पहाड़ों पर पहली बार जा रहा था चन्दू। दृश्य देखने का लोभ प्रकाश की सीट पर खींच लाया था।

'इधर बैठना है ?'

'नेकी और पूछपूछ।'

'मेरा तो महीने में एक चक्कर लग ही जाता है इसलिए कुछ नया नहीं लगता। कल रात जगना पड़ा, आँखें बंद हुई जा रही हैं।'

'तो तू चला जा मेरी सीट पे। आराम से सोइयो।'

'ठीक है। तू चाहे तो खुशी से बैठ यहाँ। मैं उधर सो लूँगा। पहली बार जा रहे हो ऊपर ?'

'हाँ, नीचे तो हमेशा घूमता रहा हूँ। ऊपर जाने का मौका नहीं लगा। एक बार हो आऊँ फिर बीवी-बच्चों को भी घुमा दूँगा।'

'तो मैं जा रहा हूँ तुम्हारी जगह। पर इधर वो शीशे की सँध से बला की ठंडी हवा आएगी फिर मत कहना कि ...।'

'नहीं कहूँगा, नहीं कहूँगा तेरी सीट की बला मेरे सिर ! बस और कुछ ?

पहाड़ों की परिक्रमा करती बस आगे बढ़ने लगी थी। हरियाली से भरी घाटियाँ और ढलानों से ऊपर उठते पेड़, जिन पर लिपटी लताएँ कहीं- कहीं माला जैसी लटक रही थीं। कहीं ऊपर से गिरते झरने, कहीं छोटे- छोटे गाँव।

सामने की हवा खिड़की की सँधों से आ रही थी। प्रकाश को झुरझुरी हो आई।

'सामने बैठोगे तो रात पड़ते ही ठिठुर जाओगे।'

'जॉकेट पहन लूँगा। तुम फ़िकर मत करो।'

पहाड़ों पर पहली बार जा रहा था वह। दृश्य देखने का लोभ था, प्रकाश की सीट से सब कुछ दखाई देता है न।

प्रकाश उठ कर चल दिया। फिर घूम कर बोला- 'अरे, मेरी जॉकेट सीट पर रह गई, देखना, मोटी है पहन लेना, नहीं तो कुल्फ़ी जम जाएगी।'

'कोई बात नहीं मेरी भी उधर है, ऐसे ही उठ कर चला आया था। पहन लेना ज़रूरत हो तो।'

'ठीक है, मुझे क्या? फिर जैसा हो तुम्हीं निपटना, मुझे दोष मत देना ?

'कह दिया न तेरी बला मेरे सिर अब तू जा, निश्चिंत सो !'

और मेरी बला उसने अपने सिर ले ली। उसे क्या पता मेरी सीट पर क्या बला टूटने वाली है। उसने तो भावी जीवन के कितने अरमान सँजोये थे। सब बताता था मुझे। वे सारी बातें मुझे याद हैं। पर अचानक सब बदल गया। मेरी जगह वह चला गया।

बड़ा मुश्किल लगता है, रमना को। कभी-कभी तो असहनीय हो उठता है। प्रकाश से नहीं कहे तो किससे कहे ? रहा नहीं गया तो बोली – 'जाने कैसी छाया-सी छा गई है हमारे घर पर।'

'छाया ही छाई है न ? वज्रपात तो नहीं हुआ ? किस पर गिरनी थी और किसने झेल ली। जिस पर गिरी उस की सोचो।'

क्यों कहते हैं ऐसा ?

क्यों कहता है प्रकाश ?

वज्रपात हुआ था उस दिन। हुआ था उसी जगह.... पर किस टूटना था किस पर टूट पड़ा। ...

चन्दू ने कहा था –'तेरी बला मेरे सिर। जा, निश्चिंत सो जा।' और वह निश्चिन्त सो गया था।

चन्दू की सीट कोज़ी लगी थी, सामने वाली ठण्डी हवा की सिहरन यहाँ नहीं थी।

पहाड़ों पर बस चक्कर खाती घूम-घूम कर चल रही थी। कभी खाई इधर, पहाड़ उधर, कभी पहाड़ इधर, खाई उधर। नीचे घरघराती बहती नदियाँ काफ़ी दूर साथ चल कर ओझल हो जाती थीं। जलधार धूप में चमकती कभी पथरीली सतह पर फुहारे बिखेरती।

चन्दू कभी सामने शीशे से देखता फिर सिर घुमा कर साइड से दृश्य को पकड़ने की कोशिश करता। 'कितने सुन्दर दृश्य हैं, अब की बार बसन्ती और बच्चों को पहाड़ की सैर करा दूँगा।' चन्दू बोला था।

जाने कब प्रकाश की आँख लग गई। पता नहीं कितनी देर सोया। अचानक बड़े ज़ोर के झटके से उछल गया। प्रकाश का सिर छत से जा टकराया। लोग ऊपर-नीचे झोंके खाते चिल्ला रहे थे। ऊपर रखा सामान लोगों के ऊपर आ-आ कर गिर रहा था। चारों ओर –चीख पुकार। प्रकाश गिरा तो अपने

को सम्हाल नहीं पाया, एकदम वहीं गिर पड़ा। एक हाथ इधर दूसरा नीचे दबा,पाँव बीच के रास्ते में फैले हुए। फिर क्या हुआ कुछ नहीं मालूम। चेत आया तो सीट पर टिका था। किसी ने साध कर सीट पर कर दिया था।

'क्या हुआ' -प्रकाश के मुँह से निकला ?

धीरे-धीरे समझ पाया। उनकी बस की टक्कर हो गई थी, दूसरी बस तो झटका खाकर नीचे खड्ड में जा गिरी। ज़रा स्थिर हुआ तो देखा चारों ओर ख़ून ही ख़ून। साइड का शीशा टूट कर यात्रियों के खुले अंगों हाथों और चेहरों को घायल कर गया था। कुछ लोग बेहोश पड़े थे चीखें और कराहें चारों ओर गूँज रही थीं।

चन्दू कहाँ है? कुछ पता नहीं। छत की टक्कर से सिर में घुमनी आ रही हैं। पाँवों पर कोई भारी चीज़ ऊपर से आ गिरी थी कितना दर्द। पाँव ! हिलाते बन नहीं पाता कहीं हड्डी तो नहीं टूट गई ?

पता नहीं चन्दू कैसा है? इतनी बुरी टक्कर थी ! आगे की सीटों की हालत सबसे खराब है। पता नहीं कितने बचेंगे ! इधर ये ६-७ बुरी तरह घायल हैं। कुछ थोड़ा होश में हैं। बाकी तो ..।'

आगे के कुछ लोग बुरी तरह घायल,उनका बचना मुश्किल है। इस तरफ़ पाँच-छः तो गए! और चन्दू आगे बैठा था। चन्दू को पुकारना चाहता है। मुँह से आवाज़ नहीं निकलती। सिर घूम रहा है।

कैसा-कैसा लग रहा है। चन्दू का बार-बार ध्यान आ रहा है। कैसा है वह ? जो लोग सामने बैठे थे, उनके बारे में जानना चाहता है। पर मुँह से आवाज़ नहीं निकल रही। बार बार सुन रहा है, आगेवालों को सबसे ज़्यादा चोट आई -बहुत बुरा हुआ उनके साथ।।

अब भी इस कटी उँगली को देखते ही प्रकाश को याद आ जाता है। चंदू की उँगली है सब कह रहे थे, और जो शरीर खून से लथपथ निश्चेष्ट पड़ा था वह मेरा। कभी-कभी सचमुच लगने लगता है प्रकाश मर गया था उस दिन। यह जो ज़िन्दा है चन्द्रभान है, चन्दू !

उसे लगता है वह न इधर में है न उधर में।

विवाह के बाद चन्दू मिलता था तो भावी जीवन की योजनाएँ बताता था। उसकी शादी प्रकाश से दो साल पहले हुई थी। दो बच्चे हो गए थे -प्रकाश के बच्चों से बड़े।

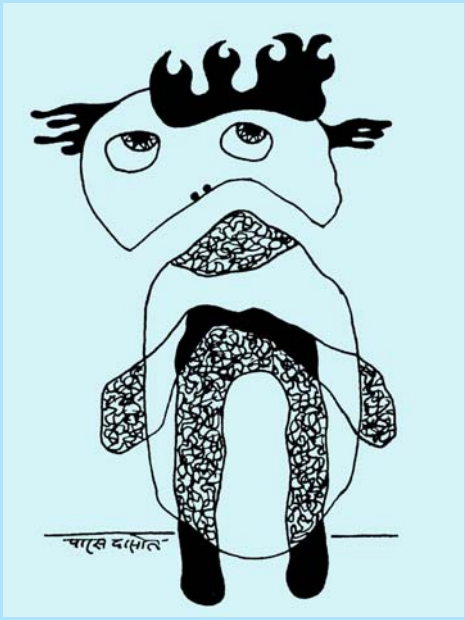

साधारण क्लर्क की चाहना थी एक डॉक्टर बने, और दूसरा बेटा इंजीनियर, सी.ए. या और कुछ। कोई बढ़िया लाइन। सब को पढ़ा-लिखा कर ....और क्या- क्या कहता था ?..एकदम उतर गया उसके दिमाग से। क्या सोच रहा था याद नहीं आ रहा। सिर में ऐसी घुमनी आई, सब ओझल हो गया।

बार बार सुनाई देता है प्रकाश वर्मा की मृत्यु हो गई। जॉकेट की जेब से पर्स निकला उसी से पहचान हो रही है। पत्नी और बच्चों की फ़ोटो देख कर लोग 'चच्च्चच' कर रहे हैं। यह स्त्री विधवा हो गई, बेचारी को पता भी नहीं। बच्चे अनाथ हो गए। अरे, कोई घर पर ख़बर भेजो। अब तो लाश ही पहुँचेगी। उसे अपनी विधवा पत्नी और अनाथ बच्चे दिखाई देने लगते हैं; ये सब क्या कह रहे हैं। प्रकाश मर गया, ओफ़ सिर घूम रहा है। मैं मर गया हूँ। मरने के बाद ऐसा ही लगता है क्या ? बहता खून शीशों से बिंधा घायल विरूपित चेहरा, यह मैं हूँ ? सब कह रहे हैं प्रकाश का शरीर है - कुछ बचा ही नहीं इसमें। कितने लोग इकट्ठा हैं - सब कह रहे हैं प्रकाश मर गया। मैं कौन हूँ ? सब धुँधला गया है, कुछ भी भान नहीं ! प्रकाश ? यह नाम बड़ा परिचित है। नाम तो कई लिये जा रहे हैं इस नाम से मैं क्यों चौंक रहा हूँ। बार- बार क्या हो रहा है मुझे ? जैसे आँखों के सामने से सब कुछ ग़ायब, अजीब सी सनसनी। मरने पर ऐसा ही होता है ?

कानों में आवाज़ आ रही है - चंद्रभान के सिर में चोट लगी है। हाँ होश में है -थोड़ा-थोड़ा। चंद्रभान ? चन्दू ! लोग उसके पास आ गए हैं। नाक के आगे हाथ लगा कर देख रहे है साँस चल रही है। यह तो मैं हूँ। मैं ..मेरा नाम ..?, ये लोग चंद्रभान कह रहे हैं। ओह! सिर घूम रहा है। कौन हूँ मैं,कहाँ हूँ ? जो चंद्रभान है, ज़िन्दा है। प्रकाश मर गया। लेकिन मैं ? मैं कौन - सोचते ही सब गड्मड्ड होने लगता है, सिर के अन्दर कैसे झटके से उठते हैं।चारों तरफ़ भनभन की आवाज़ सुनाई देने लगती है। मैं जिन्दा हूँ या मर गया ? कुछ समझ में नहीं आता। रोशनी है, अँधेरा है क्या है। क्या हो रहा है सब घूम रहा है ? अरे, मेरे साथ सब घूम रहा है। ये चक्कर छोटे, और छोटे, और छोटे होते जा रहे हैं, जैसे बहुत अंदर से कुछ खिंचा जा रहा है। झकझोरा देती चेतनाएँ क्षीण होती जा रही हैं, साथ छोड़ती जा रही हैं। पता नहीं क्या हो रहा है - बेबस, अकेला, निरुपाय!

वह उदास रहता है -हर समय कुछ सोचता-सा, मेरी बला उसने अपने सिर ले ली। उस बेचारे को भान भी न होगा कि इस सीट पर क्या बला टूटने वाली है। अन्दाज़ तो मुझे भी नहीं था पर जो हुआ वह मेरे लिए था भावी जीवन के कितने अरमान सँजोए थे उसने। शादी के शुरू के कुछ साल तो पत्नी ससुराल में रही थी। दो बहनों की शादी होनी थी। चन्दू सबसे बड़ा बेटा था। सब बताता था मुझे। अब बसन्ती को साथ रखूँगा। पर अचानक सब बदल गया। मेरी जगह वह चला गया। दिमाग़ में ! और भी बहुत कुछ बराबर घूमता रहता है।

रमना पढ़ी-लिखी है, समझदार। पर मन नहीं मानता। हज़ार तरह के तर्क सामने रखता है - बीतती उसी पर है जिस पर बीतनी होती है। और सब तो उपकरण बन जाते हैं, उस परिणति के लिये ! मैं क्या कर सकती हूँ? किसी का कोई बस नहीं होता। होनी हो कर रहती है। अपना आदमी सामने-सामने आधी कमाई उस परिवार पर खर्च कर देता है। कैसे समझाए उसे ? और कोई मेरे लिये यह सब करता अगर मैं ...? नहीं,नहीं हे भगवान! आगे नहीं सोच पाती। उस रूप में अपनी कल्पना भी असह्य है। मिन्टू और मीतू को देखती है। फिर उसके बच्चों का ध्यान आता है। जी भर आता है।

नहीं ऐसा नहीं हो सकता। पति तो मेरा है। तुम्हारे पति को हटा दिया था उसने वहाँ से जहाँ

मौत टूटने वाली थी। और खुद उसकी चपेट में आ गया। तभी तुम विधवा नहीं हुई। वह सिहर उठती है।

लोग कहते हैं –प्रकाश बाबू, तुम्हारे जैसा होना इस ज़माने में मुश्किल है। इतना कर पाना तो किसी के बस की बात नहीं, और वह भी सिर्फ मित्रता के नाम पर ? असंभव। पर असंभव क्या है। दूसरे की बला अपने सिर लेना संभव है ? उससे कह देना कि तुम निश्चिंत रहो,मैं झेल लूँगा तुम्हारी जगह पर ? कोई संभव मानेगा ? पर ऐसा हुआ है। असंभव कुछ नहीं होता।

प्रकाश सोचता है – उसने जो किया उसकी भर पाई क्या संभव है ? रमना से कहा था उसने –हम सब पर उसका कर्ज़ है, उतारने की कोशिश कर रहा हूँ। कुछ कह नहीं पाती रमना। बस सोचती है – दुनिया में क्या कोई मरता नहीं ? सब अपनी मौत मरते हैं।

'अब जाड़े आ गए हैं। स्वेटर बिनने को ऊन लाऊँगी और तुम्हारा कोट भी बड़ा पुराना–सा लगता है। एक महीने में कपड़ा लेकर दूसरे में सिलवा लेना।'

'मुझे अभी कोट की ज़रूरत ही नहीं। यह वाला तो अभी दो साल और चलेगा।'

'अरे, देखो कितना घुरेला लगने लगा है। तुम तो कपड़ों के मामले में बड़े चौकस थे ?'

'समय–समय की बात है। जाड़े से बचाव का इन्तज़ाम है, वही काफ़ी है। और स्वेटर भी मुझे अभी चाहिए नहीं। पूरी बाहों का –और दूसरावाला दोनों ठीक हैं। तुम लोग अपने लिए बनवा लो।'

'अपने बनवा लो ' कैसे आराम से कह दिया !

'क्या करे रमना ?' प्रकाश की कठिन मुद्रा के आगे बोलना मुश्किल हो जाता है।'और खुद भी तो ....! एक शर्ट नहीं बनवाई,वही घिसी पहने चल देते हैं। अब तो खुद ही प्रेस करने बैठ जाते हैं। कहो तो कहते हैं –अपना काम कर रहा हूँ, काहे की शरम ? उसे प्रेस करने को दो तो दो दिन तो वहीं पड़ी रहेंगी और मेरे पास तीन शर्ट हैं। कहीं जला दीं या फाड़ दीं तो... ? वह तो कह कर छुट्टी पा लेगा –साब पुरानी थी प्रेस करने में फट गई, नुकसान तो मेरा होगा।'

'तभी तो कहती हूँ ...।'

'क्यों पुराने कपड़े क्या फेंक दिये जाते हैं ? मैंने कह दिया मुझे अभी नहीं चाहिए।'

'हर महीने डेढ़ सौ रुपये अपनी जेब में रखते थे – बाहरी खर्च, चाय–पानी। अब नहीं लेते। कह देते है क्या करूँगा ? घर खर्च के काम आएँगे।'

रमना सब समझ रही है। खिसियाती है,कुढ़ती है।कमाते हैं इतना,अपने को ही कसते जा रहे हैं।

पहले वाले प्रकाश कहाँ खो गए –ठहाके लगाते, खाने में नुक्ता–चीनी करते, अच्छा पहनने–पहनाने के शौकीन प्रकाश? अब तो सब छोड़ते जा रहे हैं। कुछ कहने को नहीं, बेबस हो रह जाती है। रोना आता है – कैसे करे, क्या करे ?ऑफिस में चाय–नाश्ता करते थे बंद कर दिया है।

उसने कहा था, 'आफिस में इत्ती देर बैठते हो भूख तो लगती होगी ?'

'भूख नहीं लगती।'

अपना आदमी खुद को कस कर दूसरों पर खर्च दे, हम देखते रह जाएँ, मन तो दुखेगा ही। एक दो बार नहीं हर महीने ! जैसे उधार चढ़ा हो उनका !

उसे याद है प्रकाश ने कहा था – 'हाँ,उसका कर्ज़ है मुझ पर।'

कितनी योजनाएँ थीं। पहाड़ों पर तो ले जा चुके हैं, अब की बार साउथ जाने का सोच रहे थे। अब तो हो चुका। रमना बस जा रही है। बड़ा मन था अब के देवर की शादी में भाभी जैसी मैसूर सिल्क की साड़ी पहने। और यह मंगल–सूत्र कितना पुराना लगता है, नये डिज़ाइन का तीन लड़ोंवाला बनवाने की तमन्ना थी। कितना सुन्दर लगता है बीच में काले मोतियों की लड़ और दोनों ओर सुनहरी चेन ! अपने गले में उसकी कल्पना करते अचानक बसंती का सूना गला और उजड़ी माँग सामने आ गई। नहीं मुझे कोई जल्दी नहीं है। सुविधा से सब हो जायेगा।

प्रकाश कहते हैं उस दिन वह नहीं होता तो मैं मर गया होता मेरी मौत की जगह उसने ले ली ! क्या सचमुच ? रमना के मन में द्वंद्व मचा रहता है। अगर, चन्दू भाई साब इनकी जगह न आए होते ? तो आज बसन्ती की जगह मैं ..?.नहीं,नहीं जो होना होता है वही होता है।उसके साधन अपने आप बन जाते हैं इसमें मेरा क्या दोष ? मैं क्या करूँ ? अरे, मैं तो मैं, बच्चे भी छोटी–छोटी चीज़ों के लिए डाँट खा जाते है। मन मसोस कर रह जाते हैं, बेचारे ! दीवाली पर आधे पटाखे और मिठाई उधर चली गई। बच्चों से कहा था प्रकाश ने –'बेटा,उनके पापा मर गये,कौन लाएगा ? बेचारे दीवाली में भी ऐसे ही रहेंगे ? ज़रा सोचो जिसके पापा नहीं होते उन्हें कैसा लगता होगा !'

और बच्चों ने कह दिया ' पापा,इसमें से आधा उन्हें दे दीजिये।'

'तो बेटा तुम खुद पहुँचा आओ।' चलो, ठीक है उनकी भी दीवाली मने, पर हर बार बच्चों का हिस्सा बँटता रहे ? जी दरकने लगता है उसका। मन मानता नहीं और मना कर पाती नहीं। कितनी अच्छी तरह सब चल रहा था। कभी–कभी जी करता है जाए बसंती के पास। वह आराम से रह रही है, निश्चिन्त! किसके बल पर ? पूछना चाहती है बसंती से कि हमारे हिस्से का लेते तुम्हें कुछ झिझक–शरम है या नहीं ? दूसरे के सिर पर कब तक डाले रहोगी अपना बोझ। तुम्हें कुछ करना चाहिए।

ताव में एक दिन पहुँच गई उनके घर। देखा, उजड़ी सी बसंती, सफ़ेद धोती में हाथ गला सब सूना।आँखें रोई–रोई। उसे देख दौड़ कर आई कंधे से लग गई,'बहन, तुम लोग नहीं होते तो क्या होता हमारा ? हमारे लिये तो भगवान हो तुम दोनों। ये बच्चे न पेट भर खा पाते न स्कूल जाते ! सब तुम्हारी दया है, तुम नहीं चाहतीं तो भाई साहब कहाँ कुछ कर पाते ! बहुत बड़ा दिल है तुम्हारा !'

'सबर करो बहिन, दु:ख तो किसी पर भी पड़ सकता है। एक दूसरे के काम न आए तो इन्सान कैसा !'

'अपने रिश्तेदार, हमारे सगे भाई –बहन बातें बड़ी–बड़ी करते थे। करने की नौबत आई तो सब किनारा कर गए! आप तो इन्सान नहीं देवता हो। भगवान ने तो नइया बीच धार में डूबने को छोड़ दी थी हमारी। असली खेवनहार तो आप बने हो। हमारी आत्मा से हमेशा दुआएँ निकलती हैं। हमेशा आपके एहसान तले दबे रहेंगे ...आपका ऋण ...'।

'बस,बस। बसंती बहन, इतना मत कहो। यह तो फ़र्ज़ है हमारा। आज तुम मुसीबत में हो,अगर हम होते ..' कहते–कहते वह काँप गई।

अंतर में कोई बोल उठा –किसका किस पर ऋण है कौन जाने !

'हमने तो भाई साहब से पहले ही कहा था,जो हमारे पास है सब लगा कर लड़के को दूकान डलवा दें। वो तो बस बैठेगा,सम्हालेंगे हम। पर भाई साब

को ठीक नहीं लगा।कहने लगे -चंदू ने क्या-क्या अरमान सँजोए थे। बहिन, उनके अरमान उनके साथ गए। पर हम भाई साहब की बात कैसे टालें? हमारे लिये तो देवता हैं वो और आप। जो शिकन नहीं लाईं माथे पर ! कहने लगे लड़के को पढ़ने दो। जितना हो सके उसके सपने पूरे करो। हम सहारा लगाए हैं।

'उन्हीं ने तो हमारी ट्रेनिंग के लिए भाग-दौड़ की, हमारे बस में तो कुछ नहीं था। कभी घर से निकले नहीं,बाहर क्या होता है कुछ पता नहीं।'

'टीचरी की ट्रेनिग के लिये फ़ार्म भरा है हमने। बस,एक बार नौकरी लग जाए। फिर तो खींच ले जाएँगे। एक बार पाँव पर खड़े हो जाएँ। थोड़े दिन और ....।'

बसंती कहे जा रही थी 'बहुत दिन आपका हिस्सा नहीं बटाएँगे।'

मेरा हिस्सा ? रमना काँप गई। मेरा कौन सा हिस्सा महादुख का या ..?

कुछ रुक कर बोली,'हाँ बताया था इन्होंने, बल्कि हमीं ने सुझाव दिया था कि आप अपने पाँव पर खड़ी हो सकें तो अच्छा। किसी की दया पर कहाँ तक पड़ी रहेंगी!'

'हाँ बहिन, हम तो ज़्यादा पढ़े-लिखे हैं नहीं,इन्टर पास हैं। एक बार लग जाएँ फिर तो मेहनत कर आगे भी इम्तहान दे लेंगे।'

'बस ऐसी ही हिम्मत रखना..'

'सहारा आप लोगों का है, हिम्मत भी आप ही दे रही हैं। आप जो कर रहे है, उसे कैसे चुका पाएँगे हम ?'

'चुकाना तो हमें है, तुम्हारे पति जो चढ़ा गए हैं, तुम नहीं जानती, बसन्ती,' रमना के भीतर कोई बोल उठा।

उसे धीर बँधा कर चली आई वह। उसकी जगह अपनी कल्पना नहीं कर सकती। नहीं, बिल्कुल नहीं !

'सिर्फ़ इन्टर. पास से क्या होता है आज कल ? बसंती एक साल की ट्रेनिंग करने जा रही है। फिर कहीं टीचर लग जाएगी।और कौन सा काम करेगी बेचारी ? कभी अकेली बाहरी दुनिया में निकली नहीं।'

प्रकाश ने कहा था 'पर आज वह जैसी है कल वैसी नहीं रहेगी। '

रमना सोच रही है - भारी दुःख पड़ा है उस

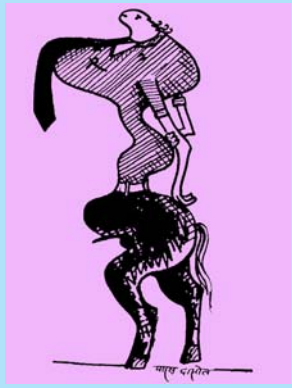

पर। जीने के लिए उसे बदलना होगा। अच्छा है, बाहर निकल कर काम करेगी। दुनिया का ऊँच-नीच समझेगी। बेचारी इन्टर पास है। कर ले जाएगी धीरे-धीरे। परीक्षा हो रही है उसकी। कितने उदाहरण सामने हैं। पति की मृत्यु के बाद औरतें कहाँ से कहाँ पहुँच गईं -सिर्फ़ अपनी मेहनत के बल पर। यह भी कर लेगी। जब दुःख पड़ा है तो उबरने का उपाय भी सुझा देगा। आज जैसी है कल वह वैसी नहीं रहेगी। अपने पाँव पर खड़ी हो जायेगी।फिर उसे किसी की सहायता की जरूरत नहीं रहेगी। समय के साथ धीरे-धीरे दुःख की तीव्रता कम हो जायेगी। निराशा के बादल छँट जाएँगे। नई दिशाएँ खुल जाएँगी और बसंती भोगे हुये दुःख का गहन गांभीर्य समेटे अपनी ज़िम्मेदारियों का निर्वाह करेगी। अपनी रुचि के अनुसार जीवन जीने को स्वाधीन होगी।किसी की दया की पात्र नहीं अपने श्रम की उपलब्धि से गौरवान्वित ! शिकायतों की जगह गहरे आत्मतोष की आभा से दीप्त ! व्यक्तित्व संपन्ना हो जायेगी बसंती !

आज कल उसके दिमाग में बसंती छाई रहती है। उसे याद आ जाती हैं अपने कॉलेज की लेक्चरार्स। कुछ के बारे में सुना था, छोटे-छोटे बच्चे छोड़ कर पति चल बसे। मायके में नौकरानी की तरह रखी गई,ससुराल में और भी दुर्दशा ! बड़ी मुश्किल से नौकरी करने दी।और आज देखो,अपनी मेहनत से कहाँ पहुँच गईं, हमीं लोग कॉलेज में हसरत भरी निगाहों से देखा करते थे। समय के साथ-साथ आगे बढ़ रही हैं। कैसा पहनना-ओढ़ना,कितने ढंग से रहना। अब कितनी पूछ है, कितनी इज़्ज़त है। माँ का परिश्रम देख बच्चे भी एक -से एक बढ़ कर निकले हैं।

बहुत चुप रहती है रमना -बिल्कुल शान्त ! पर भीतर ही भीतर निरंतर एक युद्ध चलता है। आज बसन्ती जो है,कल वैसी नहीं रहेगी ! उसके बदले हुए जीवन की कल्पना करती है। दुःख जो पड़ा है उस पर, बहुत भारी है। पर, समय के साथ सब सहनीय हो जायेगा। ये दिन बीत जाएँगे -एक नई बसंती को जन्म देते हुए। बदलती हुई बसंती ! बाहर के संसार में अपनी जगह बनाती, आगे बढ़ते समय के साथ कदम मिलाती। चार लोगों के बीच दुनिया के रंग देखती अपने को ढालती-सँवारती हुई वह धीरे-धीरे परिपक्व हो जायेगी,कर्मठ, कुशल। आज मैं उसे दूसरों की दया पर निर्भर समझ रही हूँ। पर कितने दिन ? फिर यही बसंती समर्थ हो जायेगी।अपने लिये स्वयं करने में सक्षम।आत्म गौरव से पूर्ण ! और मैं ? इनका मुँह देखनेवाली, बस। अपनी छोटी-सी दुनिया में, सीमित सोच लिए, छोटी- छोटी बातों में उलझती, आगे बढ़ते समय और दुनिया से तटस्थ, बँधे हुए घेरे में निरंतर चक्कर खाती - धीरे-धीरे आउट आफ डेट होती हुई। बच्चे भी कौन हमेशा साथ रहेंगे? तब कैसा होगा जीवन ? एक जगह रुक गया सा ! दिन पर दिन निष्क्रिय ! मैं तो बी.ए. पास हूँ। मैं कुछ नहीं कर सकती ? उलझन में पड़ी है रमना, पर इससे बाहर निकलना होगा - अपने लिए रास्ता ख़ुद तलाशना होगा !

फिर एक दिन उसने प्रकाश से कहा -'सुनो, बसंती टीचर्स ट्रेनिंग कर रही है मैं भी तो कर सकती हूँ ?'

'हाँ,क्यों नहीं कर सकतीं ! तुम बी.ए. हो उससे बढ़कर,बी.एड. कर सकती हो'

उसके आगे भी कुछ कर सकती हूँ -सोचा रमना ने, बोली,'हाँ,बच्चों के, घर के साथ थोड़ा मुश्किल तो पड़ेगा,तुम्हें भी परेशानी उठानी पड़ेगी। पर मुझे लगता है मैं कर लूँगी।'

'बिल्कुल कर सकती हो। मेहनत करनी पड़ेगी। पर मैं भी तो हूँ न।'

'हाँ,करूँगी। मेहनत कर लूँगी मैं।'

उसका प्रस्ताव सुनकर प्रकाश के चेहरे पर एकदम जो चमक आ गई थी वह क्या था - उत्साह, प्रसन्नता या संतोष ? यह भी संभव है कि झलक उठी हो मन की गहरी आश्वस्ति !

रमना समझने की कोशिश कर रही है।

सूरज की तिरछी होती किरणें खिड़की से अंदर आने लगी हैं। कमरा उजास से भर गया है।

❐

घर एक शब्द भर नहीं है

सुशील सिद्धार्थ

बी.-२/८बी, केशवपुरम्,
लारेंस रोड,
नई दिल्ली-११००३५
मोबाइल: ०९८६८०७६१८२
sushilsiddharth@gmail.com

कई कहानियाँ पढ़ने के बाद मन बहुत देर तक उनकी अन्तर्ध्वनियाँ सुनता रहता है। जितना व्यक्त हो चुका है उससे कही ज़्यादा प्रकट होने की प्रतीक्षा करता रहता है। दरअस्ल, तब वह रचना अपने संदर्भों और निहितार्थ के साथ पाठक की संवेदना में रचने-बसने लगती है। सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'बेघर सच' को एक बार तब पढ़ा जब दूसरी परम्परा के अंक-2 में प्रकाशित करना था। दुबारा तब पढ़ा जब इस कहानी में मौजूद घर शब्द जाने कितने अर्थों /आशयों /अवधारणाओं के साथ मेरे विचारों से टकराने लगा। कहानी की नयिका रंजना और उसकी माँ सुनयना के वृत्तांत किसी अंत तक न पहुँच कर असमाप्त विमर्श का रूप धारण करने लगे। रंजना ने पैतृक घर में परिवार के बुज़ुर्गों से पूछा था क्या यह घर मेरा नहीं है ? उसे तड़ाक सा उत्तर मिला था, नहीं यह घर तेरे भाइयों का है। पति का घर तेरा होगा। जब इन वाक्यों पर मन ठहरा तो अपने प्रिय गायक कुंदनलाल सहगल के गीत बाबुल मोरा नैहर छूटो जाय की यह पंक्ति उभरी ले बाबुल घर आपनों मैं चली पिया के देश। अच्छी रचनाएँ स्मृतियाँ जगाती हैं।

कहानी अपने शीर्षक से ही बहुवचनात्मक हो जाती है। बेघर सच सभ्यताओं और संस्कृतियों के लम्बे इतिहास में सच प्राय: बेघर ही रहा है। झूठ बहुत सुविधा से अपने ठिकाने बना लेता है। स्त्री और पुरुष से निर्मित समाज में पुरुष वर्चस्व के कितने झूठ सदियों से अपने ठिकाने बना कर स्त्रियों को ठिकाने लगा रहे हैं, इसे अब स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। स्त्री के अस्तित्व ,आचरण चिन्तन और जीवन को लेकर झूठों के साम्राज्य सक्रिय हैं। आश्चर्य क्या कि सभ्यता में इतना आगे आ जाने के बावजूद स्त्री अपने हिस्से का सच पाने के लिए लगातार जूझ रही है। स्त्री केवल देह नहीं है, इसे झूठ सिद्ध करने के लिए ही बलात्कार होता है। धर्मग्रंथों से लेकर तथाकथित 'महान साहित्य' के बीच भी स्त्री सच को लहूलुहान किया जाता रहा है। कुछ दिन पहले छपी पुस्तक 'चूड़ी बाज़ार में लड़की' में शिक्षाविद् कृष्ण कुमार ने इसे एक भिन्न तरह से साबित किया है।

इस कहानी में सुधा ने 'घर' शब्द को एक व्यापक अर्थ दे दिया है। कथा सारांश यह है कि रंजना बचपन से 'अपना घर' चाहती है। तमाम उपेक्षा के बीच माँ सुनयना देवी उसे समझाती है और घर में एक कमरा दिलवाती है सबने कहा कि पति का घर स्त्री का अपना होता है। .... पर माँ का अनुभव अलग था पति का घर भी कभी औरत का नहीं होता, वहाँ भी उसे दूसरे घर की पराए घर की ही कहा जाता है। सुनयना ने पति के घर में आकर सारी योग्यताओं के बावजूद अपना अस्तित्व खो दिया था। शादी के बाद रंजना पति संजय के साथ न्यूयार्क आ जाती है। जब सुनयना बेटी की गृहस्थी देखने पहुँचती है तो उनकी मूर्तिकला और संगीत विद्या को नया जीवन मिलता है। माँ की बनाई कुछ मूर्तियाँ रंजना अपने घर में सजा लेती है। पति की व्यस्तता से ऊबी रंजना कलाओं की दुनिया में रुचि लेने लगती है। मूर्तिकार एम.सदोष की मूर्ति 'होमलेस आइज़' से प्रभावित होकर उससे पत्राचार करती है। किसी काम से कैलिफोर्निया गई रंजना एक प्रदर्शनी में सदोष की मूर्ति 'इन द आइज़ आफ टाइम' को खरीद लेती है। उसी समय संजय का फ़ोन आता है। उसे शक नहीं भरोसा था कि रंजना सदोष से मिलने ही कैलिफोर्निया गई है। घर लौटकर संजय अपनी कुंठाएँ खोलता है। घर मेरा है कहकर वह रंजना द्वारा करीने से सजाई मूर्तियाँ तहस नहस करने लगता है। रंजना माँ की खंडित स्मृतियों को चादर से समेट कर आहत तन मन के साथ संजय का घर छोड़कर एक खाली मकान में आ जाती है। वह खाली मकान जिसे अब रंजना घर बनाएगी।

गुस्से में चिल्लाते हुए संजय कहता है, यह घर मेरा है मैं सहन नहीं कर सकता कि मेरे घर में मेरे साथ रहकर तुम किसी और को चाहो ....। सुधा की टिप्पणी है तिनका तिनका चुन कर नर मादा नीड़ बनाते है फिर वह नीड़ सिर्फ नर का कैसे हो जाता है ? यह सनातन प्रश्न है। जिस घर सभ्यता संस्कृति और सृष्टि को बनाने सँवारने बचाने में स्त्री की बराबर की भूमिका है उसे वहीं से बेदखल किया जाता रहा है। इन सबका इतिहास जैसे औरत के विस्थापन का समानान्तर इतिहास है।

घर जैसे अपने होने का अनुभव करते हुए अपनी स्वतंत्रता क्षमता इच्छा से जीने का प्रतीक है। 'यह घर मेरा नहीं' कहानी में श्रीलाल शुक्ल इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। 'बेघर सच' कहानी यह भी कहती है कि अपने घर में पुरुष स्त्री के साथ इस तरह रहता है कि स्त्री को भी अपना घर समझने लगता है। जैसे कोई यह तय करता है कि घर का नक्शा कैसा हो रंग रोगन कैसा हो फर्नीचर और सजावट कैसी हो आदि आदि इसी तरह पुरूष या मर्द तय करने लगता है कि 'स्त्री के वजूद' को अपने घर में कैसे बदला जाय। 'स्त्री रूपी घर' के विचारों का नक्शा कैसा हो आदि। 'स्त्री घर' का दरवाज़ा किसके लिए खुले, कौन सी खिड़की हमेशा के लिए बंद कर दी जाए इसकी चिन्ता मर्दवाद को हमेशा रही है। गालिब ने भिन्न संदर्भों में कहा था 'बेदरो -दीवार का इक घर बनाया चाहिए।' पुरुष वर्चस्व शताब्दियों से स्त्रियों को बेदरोदीवार के घर में बदलता आया हैं।

आर्यसामजी परिवार से आई सुनयना होम सांइस में एम.ए. और ललित कलाओं में प्रवीण थी। हुआ क्या। पति के घर में 'सितार, तानपूरा के तार टूट चुके थे और हारमोनियम माँ की तरह स्वर खो

चुका था।' हमारा ध्यान 'स्वर खोना' के मुहावरे पर जाना चाहिए। यह सुधा का अचूक प्रयोग है इसीलिए सुनयना अपनी बेटी रंजना का विवाह समझदार व्यक्ति से करना चाहती है 'जो तुझे प्यार करे तेरे गुणों तेरी रुचियों की कद्र करे। पति पत्नी के साथ-साथ तुम दोनों एक दूसरे के साथी बन सको।' यह अलग बात है कि ऐसा हो न सका! विवाह के वक्त दादी ने कहा था कि अब तुम्हारा अपना घर होगा। और रंजना ने भी सोचा था कि 'अब अपने घर को वह अपनी इच्छानुसार सजाएगी सँवारेगी।' घर सजता सँवरता रहा जब तक सब संजय के मन मुताबिक था। जैसे ही रंजना के अस्तित्व ने पंख फैलाए कि ज़मीन से आसमान तक संजय की शंकाएँ, आपत्तियाँ काली छायाओं की तरह उड़ने लगी। रंजना ने इस सीमा तक समझौता कर लिया था कि संजय की घोर आत्मकेन्द्रित जीवन शैली के बाद भी 'उसे संजय से कोई गिला नहीं था।' एकरसता और नीरसता से उकता कर रंजना कलाओं की दुनिया में आवजाही कर रही थी। सदोष से परिचय के बाद वह उसे कविताएँ भेजती थी। उन पर सदोष मूर्तियाँ बनाता और उनके चित्र भेजता। रंजना संजय को वह चित्र दिखाती 'पर वह तो कंपनी के प्रेजिडेंट की कुर्सी देख रहा था, उसे वह सब दिखाई नहीं देता था।' सुधा ने सधे शब्दों में व्यक्त कर दिया है कि रंजना और संजय की दृष्टि कितनी अलग थी। दृश्य तो अलग थे ही। संजय विस्तार में लगा था, उसे रंजना का जीवन व्यर्थ लगता था। उससे सत्ता की कोई शाखा नहीं निकलती थी।

कैलिफोर्निया में मूर्ति खरीदने की घटना के बाद संजय को जैसे अपने ज़रख़रीद गुलाम पर गुस्सा आया। वह जिस तरह रंजना को अपमानित प्रताड़ित करता है उससे घृणा, उपेक्षा, क्रोध के जाने कितने चेहरे प्रकट होते हैं। यहाँ सुधा ओम ढींगरा के कुशल कहानीकार की प्रशंसा करनी चाहिए। संजय का क्रोध लगभग एकालाप में है। वह स्वयं आरोप गढ़ रहा है, फिर तर्क जुटा रहा है फिर विश्लेषण कर रहा है और अन्त में फैसला सुना रहा है। सुधा ने बिना 'कथाकारीय हस्तक्षेप' के बता दिया है दोनों में संवाद की स्थितियाँ नहीं है। संजय के प्रलाप की शब्दावली भी गौर करने योग्य है। वह झूठ, नफरत, यार, धोखा जैसे शब्द इस्तेमाल कर रहा है। वह पूछ नहीं रहा अपने स्वघोषित संदेह की पुष्टि बलपूर्वक रंजना से करवाना चाहता है 'तुम्हें मानना होगा कि तुम उसे चाहती हो ..मानती क्यों नहीं।' राम ने भी सीता से पूछा नहीं था स्वघोषित संदेह के आधार पर बेघर कर दिया था। रंजना गुस्से और आक्रोश से भरकर कह उठती है, 'हाँ मैं उसे प्यार करती हूँ ....।' सुधा अर्थपूर्ण मिसाल देती है कि. 'मीरा को ज़हर का प्याला पीने के लिए दिया गया और उसने वह पिया।' इसके बाद 'अपने घर' में रखी मूर्तियों को संजय ने ऐसे ध्वस्त किया जैसे रंजना के अस्तित्व को नेस्तनाबूद कर रहा हो। दिखा दिया 'उसके घर' में रहने वाली रंजना की हैसियत क्या है। ऐसी ही किसी समानान्तर स्थिति में मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' की सारंग अपने पति रंजीत से कहती है 'जिस घर की मिट्टी का रेशा रेशा मेरे हाथों सजा सँवरा है जिसके आँगन में मेरे पाँवों के निशान जीवित हैं विश्वास नहीं होता रंजीत कि एक पल में ही वह मुझसे कैसे छिन गया।' याद आ सकता है कि 'द सेकेंड सेक्स' से पहले 'श्रृंखला की कड़ियाँ' लिखने वाली महादेवी ने छायावादी वक्रता के साथ यही कहा था 'विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना।' आज स्त्री विमर्श इस कथन से आगे बढ़कर प्रश्न पूछ रहा है। इसे लक्षित करते हुए आलोचक शंभुनाथ 'स्त्री की कथा स्त्री की लड़ाई' लेख में लिखते हैं 'स्त्रियाँ इतिहास शाश्वत मूल्य और परिवार के पितृसत्तात्मक ढाँचे से विद्रोह करके दरअसल एक बुनियादी सवाल उठा रही हैं। इतिहास संस्कृति और समाज में हमारी जगह कहाँ है ?' संजय के घर में या इस घर में रंजना की जगह कहाँ है? यह सवाल पूरी मार्मिकता के साथ सुधा पूछती है। और कहानी में जवाब देने का उत्तरदायी संजय कहता है 'सच तो मैं जानता हूँ। वह सच मैं तुमसे उगलवाना चाहता हूँ ....।'

सत्ता और प्रतिगामी शक्तियों की यह अटूट मूर्खता है कि उन्हें सच जानने का एकतरफा विश्वास होता है। सुधा लिखती है, 'किनारे पर खड़े होकर सच नहीं जाना जाता गहरे में डुबकी लगानी पड़ती है।' कहानी पढ़ते हुए भरोसा होता है कि सुधा ने मानव मन की गहराईयों में डुबकी लगाकर अपने कथ्य का विस्तार किया है। इसीलिए उन्होंने एक ऐसा यथार्थ समझा जिसे जानने का दावा बहुतेरे करते हैं, कहने का साहस बहुत कम जुटा पाते है। जिन सत्ताओं ने रंजना और सुनयना को पीड़ित किया वे हैं 'घर में कई सत्ताएँ थीं। पितृसत्ता दादीसत्ता और पिता जी की चाची।' और रंजना – 'बचपन से अब तक उसने माँ को उन सत्ताओं के आगे झुके हुए चकरघिन्नी सा घूमते ही देखा है। ... माँ की सारी इच्छाएँ और भावनाएँ कहीं गुम हो गई थीं।' सुधा की टिप्पणी को आत्म करती रंजना यह नहीं समझ पाती कि पुरुषवादी कुतर्कों को महिलाएँ भी मान रही हैं। कहानी परिवर्तित होती स्थितियों को भी लक्षित करती है।

'बेघर सच' स्त्री के भीतर संचरित सकारात्मकता को सलीके से रेखांकित करती है। जब सुनयना रंजना के पास विदेश पहुँचती है तो अवसर मिलते ही वह कैसे अपनी भावनाएँ मूर्तियों में व्यक्त कर देती है। एक मूर्ति में भँवर में डूबती महिला दोनों हाथ उठाकर अपनी बच्ची को बचा रही है। यह स्त्री की जिजीविषा है। और संजय द्वारा तोड़ी गई मूर्तियाँ– 'रंजना ने सब मूर्तियों को बड़े प्यार से संभाल कर वैन में रखा टूटी हुई मूर्तियाँ भी उठाली। इन्हें लेकर वह अपने घर में आई'। 'अपने बेघर हुए सच और मूर्तियों की सुरक्षा के लिए उसकी दृष्टि चारों ओर घूम रही थी।' खंडित स्मृतियों, मूल्यों, विश्वासों को एक स्त्री ही सहेज, संभाल सकती है। यही कारण है कि रंजना सोच रही है... उसका 'अपना घर' जिसमें वह रहेगी। रंजना के बहाने सुधा ने जाने कितनी स्त्रियों का सच लिख दिया है।

हिन्दी कहानी के वर्तमान परिदृश्य में सुधा ओम ढींगरा ऐसी ही कहानियों के कारण एक सम्मानित स्थान बना चुकी हैं। प्रचालित शब्दावली में वे प्रवासी लेखिका कही जा सकती हैं। लेकिन सही अर्थ में उन्हें व्यापक हिन्दी संसार की महत्त्वपूर्ण लेखिका मानना होगा। 'बेघर सच' इसका प्रमाण है। सुधा की भाषा व्यंजनाओं से समृद्ध और सहज है। जटिलताओं को व्यक्त करते हुए वे भाषा से प्राणायाम नहीं करती। शब्दों की साँसें सम पर रहती हैं।

मेरे प्रिय शायर शहरयार ने कहा है –'घर की तामीर तो ख्वाबों में ही हो सकती है, अपने नक्शे के मुताबिक ये ज़मीं कुछ कम है।' फिर भी 'बेघर सच' की रंजना को जितनी ज़मीन मिली उस पर वह घर की तामीर कर रही है इस सोच को साकार करने के लिए सुधा ओम ढींगरा को बधाई।

❐

दुर्योधन के वंशज

प्रेम जनमेजय

७३ साक्षरा अपार्टमेंटस ए-३
पश्चिम विहार
नई दिल्ली -११००६३

मुझे अपने मामा जी से ज्ञान मिला है कि दिल्ली की सड़कों पर दुर्योधन के वंशजों का शासन है। वो कैसे, आप भी जानिए।

मेरे एक मामा जी हैं। ये वैसे वाले मामा नहीं हैं जो आपको मामू बना दें और ये ऐसे वाले मामा भी नहीं हैं जो मामू बन जाएँ। वैसे तो मेरे पाँच मामा हैं पर ये उन सबसे अलग हैं इसलिए उनका परिचय मैं आपसे 'मेरे एक मामा' जी के रूप में करा रहा हूँ। ऐसे मामा आपके चाचा जी भी हो सकते हैं, जीजाजी हो सकते हैं, भाई-भतीजा आदि रिश्ते में कुछ भी हो सकते हैं। मेरे एक मामा जी जैसा आपका दोस्त भी हो सकता है, आपकी पत्नी हो सकती है एवं पति भी हो सकता है। जैसे सत्ता मिलते ही हर दल सरकार जैसा हो जाता है एवं चुनाव-युद्ध के समय चुनाव लड़ने वाला हर योद्धा हाईकमांड एवं मतदाता के सामने भिखारी हो जाता है वैसे ही रिश्ता कोई भी हो वो मेरे एक मामा जी जैसा हो जाता है।

कौरवों और पांडवों के भी एक मामाश्री थे, शकुनि मामा जो पासों के खेल में माहिर थे और दूसरे मेरे मामा जी हैं जो पास से गुज़रने वाले को कोंचने में माहिर।

आपने गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी पढ़ी है ? इस कहानी के आरंभ में, अमृतसर की गलियों में टांगा चलाने वाला, की हर आने-जाने पर, चाहे वो सुने न सुने, नॉन स्टॉप टिप्पणियाँ करता है। मेरे ये एक मामा जी भी वैसा ही करते हैं। उन्हें दूसरे के फटे में टाँग घुसेड़ने में आनंद आता है। वे हर उस चीज़ पर बिन माँगे सलाह देते हैं, टिप्पणी करते हैं, टोकते हैं- जो उनकी दृष्टि में गलत है। कोई ऐसे क्यों खड़ा है, कोई वैसे क्यों खड़ा है। किसी ने कार इधर क्यों पार्क की है, किसी ने कार उधर क्यों पार्क की है। उसकी लड़की ऐसे कपड़े क्यों पहनती है, उसकी लड़की वैसे कपड़े क्यों पहनती है। न न न इसे आप भारतीय प्रजातंत्र के 'महत्त्वपूर्ण' हिस्से, विरोधी दल, की दृष्टि जैसा न समझें, वे तो अधिकांशत: आँख मूँद विरोध के लिए विरोध करते हैं पर हमारे मामा जी खुली आँखों का विरोध करते हैं। अवसर मिलते ही उनकी कोंच -दृष्टि सजग हो जाती है और इस दृष्टि पथ पर जो भी आता है, कोंचा जाता है। उनके कोंच- बाण अधिकांशत: अलक्षित होते हैं। वे तो लगातार बाण छोड़ते जाते हैं। ये दीगर बात है कि जिसे वो अपनी कोंच-वाणी से कोंचते है, वो कम कुँचता है, सुनने वाला अधिक।

मेरे मामा जी मध्य प्रदेश के अति पिछड़े गाँव, पिछाड़ा, में रहते हैं पर आप उन्हें गँवार भी कहने की गलती न करें। वे कभी- कभी मेरे पास शहर में ऐसे ही आ जाते हैं जैसे प्रजातंत्र में चुनाव आते हैं और जैसे चुनाव अच्छे से अच्छे गँवार को उसके मूल्य का अहसास करा उसे चतुर-सुजान कर देता है वैसे ही मेरे एक मामा जी भी हो गए हैं। भारतीय प्रजातंत्र की यह खूबी है कि उसने सत्ताधारियों को इस देश की भाषाओं और संस्कृति का कम से कम चुनाव के समय सम्मान करना सिखा दिया है। किसी धार्मिक की निगाह में चाहे सब बराबर हों या न हों, उसके सतसंग में वी आई पी दर्शन के अलग मानदंड चाहे हों या न हों पर प्रजातंत्र में सभी के मत का एक ही मूल्य है। यहाँ हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि सब बराबर हैं। गाँव के गँवार के मत का भी वही मूल्य है; जो शहर के अमीरज़ादे का। बल्कि कहूँ तो अधिक मूल्य है। अमीरज़ादे के चंदे के आगे आप बिकते हैं पर गँवार की झोपड़ी में सर झुकाए घुसने को विवश होते हैं।

मैं भी किस पचड़े में पड़ गया। व्यंग्य लेखक में खराबी यही है, बात हिंदुस्तान की अर्थ व्यवस्था की करता है और पहुँच अमेरिका के द्वार जाता है। रक्षक पुलिस की बात करते हुए भक्षक पुलिस की बात करने लगता है, देशसेवक नेता की बात करते हुए किसी 'स्वयंसेवक' भ्रष्टाचारी की बात करने लगता है। और तो और, जब-जब धर्म की हानि होने पर अवतरित होने वाले प्रभुओं की बात करते हुए उनके आश्रम के शयनकक्ष की चर्चा करने लगता है। बहुत बहकता है व्यंग्यकार। हे व्यंग्यकार भैया ! तुम तो कोल्हू के बैल की तरह उस मार्ग पर चलो जो तुम्हें दिखाया जा रहा है, काहे इधर-उधर ताँक- झाँक करते हो। ज़्यादा ताँका झाँकी करोगे तो लेखकीय बिरादरी से बाहर कर दिए जाओगे, हुक्का-पानी बंद हो जाएगा।

तो मित्रो ! मामा जी को पता चला कि मैंने नई कार ली है तो आ गए दिल्ली मुझे बधाई देने। मेरे पड़ोसी ने कार देखी तो बधाई नहीं दी अपितु बहुमूल्य सुझाव दे डाले... आपने ये कार क्यों ली वो ले लेते, थोड़ी महँगी ही तो थी... आपने सी एन जी क्यों नहीं ली... आपने इसका हायर मॉडल क्यों नहीं लिया... आपने उस बैंक से कार लोन क्यों नही लिया... आदि आदि। यानी उन्होंने बधाई के स्थान पर सलाह दी और मुझे मूर्ख सिद्ध किया जबकि मेरे मूर्ख मामा जी गाँव से बिना अपने बजट की चिंता किए बधाई देने दिल्ली के लिए रवाना हो गए।

मेरे एक मामा जी, मेरी इकलौती कार में दिल्ली की सैर करने को बहुत उत्सुक थे। वे वैसे उत्सुक नहीं थे जैसे साहित्यकार पुरस्कार पाने को, देवता स्वर्ग से फूल बरसाने को, आधुनिक बाबा आपकी माया को अपनी बनाने को, बाज़ार आपकी जेब हल्की करने आदि को उत्सुक होते हैं अपितु वे वैसे उत्सुक थे जैसे गरीब अपनी ग़रीबी मिटाने को, बच्चा नया खिलौना पाने को, बुजुर्ग नैतिकता का पाठ पढ़ाने को होते हैं। कार में बैठने से पहले मामा जी ने कार का नख शिख सौंदर्य पान किया और एक स्वाभाविक प्रसन्नता उनके चेहरे पर खेल रही थी।

मैंनें मामा जी को जैसे ही अपने साथ वाली

सीट पर बैठाया और कार स्टार्ट की, उनकी कोंच - दृष्टि सजग हो गई एवं कोंच -वाणी सक्रिय। हर आने -जाने वाले को वे अपने कोंच-बाणों का निशाना बनाने लगे। दिल्ली की सड़कों पर ड्राइव करते समय अच्छे-अच्छे की कोंच वाणी सक्रिय हो जाती है, फिर वो तो मेरे मामा जी थे।

'अरे मरेगा क्या ... बाप ने पैदा कर मरने के लिए छोड़ दिया है क्या ....सड़क तेरे बाप की है क्या ...अरे अंधा है क्या...अरे बहरा है क्या...? 'कोई कार तेज़ी से, बाईं ओर से गुज़रती या फिर मुझे अचानक ब्रेक मारनी पड़ती तो उनके मुँह से निकलता - हरि ओम!

मामा जी औरों को ही अपनी वाणी से कृतार्थ नहीं कर रहे थे अपितु मुझे भी बीच-बीच में कृतार्थ करते जा रहे थे... 'अरे मुन्ना संभल के... अरे देख लाल बत्ती आने वाली है... अरे साइकल वाले को बचा कर चल... ब्रेक मार।' मैं तो जब आवश्यकता हो रही थी तब ब्रेक लगा रहा था पर मामा जी मेरे साथ वाली सीट पर बैठे बिना ब्रेक के पैरों से हवा में ब्रेक लगा रहे थे।

एक ट्रेफिक लाईट पर रुका तो, कभी दाएँ से और कभी बाएँ से जिक -जैक करते हुए मोटर साइकलों और स्कूटरों ने मेरी कार के आस-पास जैसे झुंड-सा बना लिया।

'सब साले दुर्योधन के वंशज हैं...।'

'दुर्योधन के वंशज, कौन ? मैं समझा नहीं मामा जी !'

'ये मोटर बाइक और स्कूटर वाले।'

'वो कैसे ?'

'अरे, तुझे याद है न- महाभारत युद्ध से पहले कृष्ण, दुर्योधन के पास, शांति प्रस्ताव लेकर गए थे कि वह पाँडवों को पाँच गाँव ही दे दे। तब दुर्योधन ने कहा था कि मैं एक इंच ज़मीन भी न दूँगा। ये मोटर बाइक और स्कूटर वालों को तूने देखा... एक इंच ज़मीन भी नहीं छोड़ते हैं। जहाँ खाली स्थान देखा, वहाँ अपना वाहन घुसेड़ दिया। और देख अभी लाल बत्ती होने में २० सैकेंड है पर सभी धीरे-धीरे घूँ घूँ करते आगे बढ़ रहे हैं कि यह जगह दूसरे को न मिल जाए।'

तभी किसी ने लाल बत्ती के बावजूद पीछे से ही हॉर्न दे दिया तो मामा जी उच्चारे- 'अरे तूँ क्यों शंखनाद कर रहा है, अभी युद्ध होने में १० सैकेंड का समय शेष है।'

'मामा जी, बड़े शहरों में दूरियाँ बहुत होती हैं, सबको पहुँचने की जल्दी होती है।' यह कहकर मैंने कार आगे को बढ़ाई। इतने में बाएँ से एक बाइक वाले ने लगभग मेरी कार को छूते हुए तेज़ी से निकलने के लिए मेरी कार के आगे से आया तो लगा जैसे आत्महत्या के मूड में है। मैंने ज़ोर से ब्रेक लगाई और उसने एक्सलेटर पर पाँव दबाया। मामा जी बोले - 'हरि ओम!' मैं इस होने वाले हादसे से स्वयं को बचा अनुभव कर संतोष की साँस लेता कि इतने में एक और बाईक सरसराता हुआ मेरे आगे से निकल गया। और दुर्घटना बचाने को रुकी मेरी कार को मेरे पीछे के वाहनो ने पौं पौं कर सड़क-पथ पर चलने को धकेलित किया।

'ये बाइक वाले तो साले सारे नाग हैं। कैसे सरसराते हुए, बलखाते हुए निकल जाते हैं। इनके लिए तो कोई जनमेजय पैदा होना चाहिए।'

'मामा जी, आपने तो दिल्ली की सड़कों को कुरुक्षेत्र का मैदान जैसा बयान कर दिया है। महाभारत के सारे पात्र आपने...।''

'मैंने क्या बनाया, तुम्हारे दिल्ली जैसे शहर की हर सड़क कुरुक्षेत्र का मैदान है। रोज़ पढ़ते-सुनते हैं कि सड़कों पर कभी हथियारों से और कभी वाणी से युद्ध लड़े जाते हैं।'

सही ही कहा मामा जी ने कि दिल्ली जैसे महानगरों की सड़कें दुर्योधन के वंशजों से पटी पड़ी हैं। प्रतिदिन कहीं न कहीं महाभारत के लघु संस्करण खेले जाते हैं। एक अव्यवस्थित व्यवस्था में हम रोज़ जीते हैं और रोज़ ही मरते हैं।

❐

Hindi Pracharni Sabha

(Non-Profit Charitable Organization)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001

'For Donation and Life Membership
we will provide a Tax Receipt'

Annual Subscription: $25.00 Canada and U.S.A.

Life Membership: $200.00

Donation: $

Method of Payment: Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"

सदस्यता शुल्क
(भारत में)
वार्षिक : 400 रुपये
दो वर्ष : 600 रुपये
पाँच वर्ष : 1500 रुपये
आजीवन : 3000 रुपये

Contact in Canada:
Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham,
Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
Fax: (905)-475-8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:
Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guymon Court
Morrisville,
North Carolina
NC27560
USA
(919)-678-9056
e-mail: ceddlt@yahoo.com

Contact in India:
Pankaj Subeer
P.C. Lab
Samrat Complex Basement
Opp. Bus Stand
Sehore -466001, M.P. India
Phone: 07562-405545
Mobile: 09977855399
e-mail: subeerin@gmail.com

स्वर्ग-नरक के बँटवारे की समस्या

कुमारेन्द्र किशोरी महेन्द्र

११० रामनगर, उरई
(जालौन) २८५००१

महाराज कुछ चिन्ता की मुद्रा में बैठे थे। सिर हाथ के हवाले था और हाथ कोहनी के सहारे पैर पर टिका था। दूसरे हाथ से सिर को रह-रह कर सहलाने का उपक्रम भी किया जा रहा था। तभी महाराज के एकान्त और चिन्तनीय अवस्था में ऋषि कुमार ने अपनी पसंदीदा 'नारायण, नारायण' की रिंगटोन को गाते हुए प्रवेश किया। ऋषि कुमार के आगमन पर महाराज ने ज़्यादा गौर नहीं फरमाया। अपने चेहरे का कोण थोड़ा सा घुमा कर ऋषि कुमार के चेहरे पर मोड़ा और पूर्ववत् अपनी पुरानी मुद्रा में लौट आये। ऋषि कुमार कुछ समझ ही नहीं सके कि ये हुआ क्या? अपने माथे पर उभर आई सिलवटों को महाराज के माथे की सिलवटों से मिलाने का प्रयास करते हुए अपने मोबाइल पर बज रहे गीत को बन्द कर परेशानी के भावों को अपने स्वर में घोल कर पूछा-'क्या हुआ महाराज? किसी चिन्ता में हैं अथवा चिन्तन कर रहे हैं?'

महाराज ने अपने सिर को हाथ की पकड़ से मुक्त किया और फिर दोनों हाथों की उँगलियाँ बालों में फिरा कर बालों को बिना कंघे के सँवारने का उपक्रम किया। खड़े होकर महाराज ने फिल्मी अंदाज में कमरे का चक्कर लगा कर स्वयं को खिड़की के सामने खड़ा कर दिया। ऋषि कुमार द्वारा परेशानी को पूछने के अंदाज ने महाराज को दार्शनिक बना दिया-'अब काहे का चिन्तन ऋषि कुमार? चिन्तन तो इस व्यवस्था ने समाप्त ही कर दिया है। अब तो चिन्ता ही चिन्ता रह गई है।'

ऋषि कुमार महाराज के दर्शन को सुनकर भाव-विभोर से हो गये। आँखें नम हो गईं और आवाज़ भी लरजने लगी। वे समझ नहीं सके कि ऐसा क्या हो गया कि महाराज चिन्तन को छोड़ कर चिन्ता वाली बात कर रहे हैं? अपनी परेशानी को सवाल का चोला ओढ़ा कर महाराज की ओर उछाल दिया। महाराज ने तुरन्त ही उसका निदान करते हुए कहा-'कुछ नहीं ऋषि कुमार, हम तो लोगों के तौर-तरीकों, नई-नई तकनीकों के कारण परेशान हैं। समझो तो हैरानी और न समझो तो परेशानी। अब बताओ कि ऐसे में चिन्तन कैसे हो?'

ऋषि कुमार समझ गए कि महाराज की चिन्ता बहुत व्यापक स्तर की नहीं है। ऋषि कुमार के ऊपर आकर बैठ चुका चिन्ता का भूत अब उतर चुका था। वे एकदम से रिलेक्स महसूस करने लगे और बेफ़िक्र अंदाज़ में महाराज के पास तक आकर थोड़ा गर्वीले अंदाज में बोले-'अरे महाराज! हम जैसे टेक्नोलोजी मैन के होते आपको परेशान होना पड़े तो लानत है मुझ पर।' महाराज ने ऋषि कुमार के चेहरे को ताका फिर इधर-उधर ताकाझाँकी करके वापस खिड़की के बाहर देखने लगे। महाराज के बाहर देखने के अंदाज को देख ऋषि कुमार ने भी अपनी खोपड़ी खिड़की के बाहर निकाल दी।

अच्छी खासी ऊँचाई वाली इस इमारत की सबसे ऊपर की मंजिल की विशाल खिड़की से महाराज अपने दोनों साम्राज्य-स्वर्ग और नरक-पर निगाह डाल लेते हैं। ऋषि कुमार को लगा कि समस्या कुछ इसी दृश्यावलोकन की है। अपनी जिज्ञासा को प्रकट किया तो महाराज ने नकारात्मक ढंग से अपनी खोपड़ी को हिला दिया।

'कहीं स्वर्ग, नर्क के समस्त वासियों के क्रिया-कलापों के लिए लगाए गए क्लोज-सर्किट कैमरों में कोई समस्या तो नहीं आ गई?' ऋषि कुमार ने अपनी एक और चिन्ता को प्रकट किया। महाराज के न कहते ही ऋषि कुमार ने इत्मीनान की साँस ली। सब कुछ सही होना ऋषि कुमार की कालाबाज़ारी को सामने नहीं आने देता है। 'फिर क्या बात है महाराज, बताइये तो? आपकी परेशानी मुझसे देखी नहीं जा रही।' ऋषि कुमार ने अपनत्व से महाराज की ओर चिन्ता को उछाल दिया।

महाराज ऋषि कुमार की ओर घूमे और बोले-'बाहर देख रहे हो कितनी भीड़ आने लगी है अब मृत्युलोक से। मनुष्य ने तकनीक का विकास जितनी तेज़ी से किया उतनी तेज़ी से मृत्यु को भी प्राप्त किया। अब दो-चार, दो-चार की संख्या में यहाँ आना नहीं होता; सैकड़ों-सैकड़ों की तादाद एक बार में आ जाती है। कभी ट्रेन एक्सीडेंट, कभी हवाई जहाज दुर्घटना, कभी बाढ़, कभी भू-स्खलन, कभी कुछ तो कभी कुछ.....उफ!!! कारगुजारियाँ करे इंसान और परेशान होते फिरें हम।'

ऋषि कुमार हड़बड़ा गए कि महाराज के चिन्तन को हो क्या गया? इंसान की मृत्यु पर इतना मनन, गम्भीर चिन्तन? अपनी जिज्ञासा को महाराज के सामने प्रकट किया तो महाराज ने समस्या मृत्यु को नहीं बताया। महाराज के सामने समस्या थी स्वर्ग तथा नरक के बँटवारे की। ऋषि कुमार ने अपनी पेटेंट करवाई धुन 'नारायण, नारायण' का उवाच किया और महाराज से कहा कि इसमें चिन्ता की क्या बात है, हमेशा ही अच्छे और बुरे कार्यों के आधार पर स्वर्ग-नरक का निर्धारण होता रहा है; अब क्या समस्या आन पड़ी?

महाराज ने अपने पत्ते खोल कर स्पष्ट किया कि 'महाराजाधिराज ने युगों के अनुसार कार्यों का लेखा-जोखा तैयार कर रखा है। चूँकि भ्रष्टाचार, आतंक, झूठ, मक्कारी, हिंसा, अत्याचार, डकैती, बलात्कार, अपराध, रिश्वतखोरी, अपहरण आदि-आदि कलियुग के प्रतिमान हैं, इस दृष्टि से जो भी इनका पालन करेगा, जो भी इन कार्यों को पूर्ण करेगा वही सच्चरित्र वाला, पुण्यात्मा वाला होगा शेष सभी पापी कहलायेंगे, बुरी आत्मा वाले कहलाएँगे.....।'

'तो महाराज, फिर चिन्ता कैसी? जो पुण्यात्मा हो उसे स्वर्ग और जो पापात्मा हो उसे नरक में भेज दें, सिम्पल सी बात।' ऋषि कुमार ने महाराज के शब्दों के बीच अपने शब्दों को घुसेड़ा। अपनी बात को कटते देख महाराज ने भृकुटि तानी और इतने पर ही ऋषि कुमार की दयनीय होती दशा देख नम्र स्वर में बोले-'कितनी बार कहा है बीच में मत टोका करो, पर नहीं। यदि स्वर्ग-नरक का निर्धारण इतना आसान होता तो समस्या ही क्या थी।'

ऋषि कुमार को अपनी गलती का एहसास

हुआ और अबकी वे बिना बात काटे महाराज की बात सुनने को आतुर दिखे। महाराज ने उनसे बीच में न टोकने का वचन लेकर ही बात को आगे बढ़ाने के लिए मुँह खोला-'समस्या यह है कि धरती से जो भी आता है वह भ्रष्टाचार, आतंक, बलात्कार, रिश्वतखोरी, मक्कारी, अत्याचार आदि गुणों में से किसी न किसी गुण से परिपूर्ण होता है। ऐसे में महाराजाधिराज के बनाए विधान के अनुसार उसे स्वर्ग में भेजा जाना चाहिए किन्तु स्वर्ग की व्यवस्था को सुचारू रूप से बनाए रखने के लिए ऐसे लोगों में अन्य दूसरे गुणों-दया, ममता, करुणा, अहिंसा, धर्म आदि-को खोज कर उन्हें नर्क में भेज दिया जाता है।' तभी महाराज ने देखा कि ऋषि कुमार अपने मोबाइल के की-पैड पर उँगलियाँ नचाने में मगन हैं। 'क्या बात है ऋषि कुमार, हमारी बातें सुन कर बोर होने लगे?' 'नहीं, नहीं महाराज, ऐसा नहीं है। हम तो मोबाइल स्विच आफ कर रहे थे ताकि आपकी बातों के बीच किसी तरह का व्यवधान न पड़े।' ऋषि कुमार अपनी हरकत के पकड़ जाने पर एकदम से हड़बड़ा गये। महाराज ने ऋषि कुमार की ओर से पूरी संतुष्टि के बाद फिर से मुँह खोला-'पहले स्थिति तो कुछ नियंत्रण में थी किन्तु जबसे धरती से राजनीतिक व्यक्तियों का आना शुरू हुआ है तबसे समस्या विकट रूप धारण करती जा रही है। इन नेताओं में तो किसी दूसरे गुण को खोजना भूसे में सुई खोजने से भी कठिन है। इस कारण स्वर्ग की व्यवस्था भी दिनोंदिन लचर होती जा रही है। सब मिलकर आये दिन किसी न किसी बात पर अनशन, धरना, हड़ताल आदि करने लगते हैं। किसी दिन ज्ञापन देने निकल पड़ते हैं। अब यही सब मिल कर हमारे अधीनस्थों को चुनाव के लिए, लाल बत्ती के लिए उकसा रहे हैं।' महाराज ने दो पल का विराम लिया और कोने में रखे फ्रिज में से ठंडी बोतल निकाल कर मुँह में लगा ली। गला पर्याप्त ढंग से ठंडा करने के बाद उन्होंने ऋषि कुमार की ओर देखा। ऋषि कुमार ने पानी के लिए मना कर आगे जानना चाहा।

महाराज धीरे-धीरे चलकर ऋषि कुमार के पास तक आए और उनके कंधे पर अपने हाथ रखकर समस्या का समाधान ढूँढने को कहा-'कोई ऐसा उपाय बताओ ऋषि कुमार जिससे इन सबको स्वर्ग की बजाय नरक में भेजा जा सके और यहाँ के लिए बनाया महाराजाधिराज का विधान भी भंग न हो।' ऋषि कुमार महाराज की समस्या को सुनकर चकरा गए। महाराज की आज्ञा लेकर पास पड़ी आराम कुर्सी पर पसर गए। दो-चार मिनट ऋषि कुमार संज्ञाशून्य से पड़े रहने के बाद उन्होंने आँखें खोलकर महाराज की ओर देखा। महाराज को चुप देख ऋषि कुमार आराम से उठे और बोले-'महाराज धरती के नेताओं की समस्या तो बड़ी ही विकट है। उनसे तो वहाँ के मनुष्यों द्वारा बनाये विधान के द्वारा भी पार नहीं पाया जा सका है। बेहतर होगा कि मुझे कुछ दिनों के लिए कार्य से लम्बा अवकाश दिया जाये जिससे कि विकराल होती इस समस्या का स्थायी समाधान खोजा जा सके। तब तक एकमात्र हल यही है कि धरती पर नेताओं को हाथ भी न लगाया जाये। बहुत ही आवश्यक हो तो उनके स्थान पर आम आदमी को ही उठाया जाता रहा जाये।' इतना कहकर ऋषि कुमार महाराज की आज्ञा से बाहर निकले और अपनी मनपसंद रिंगटोन 'नारायण, नारायण' गाते हुए वहाँ से सिर पर पैर रखकर भागते दिखाई दिये। ❐

अर्चना पेन्यूली की कहानी 'हाईवे-४७' का अंतर्पाठ

साधना अग्रवाल

बी-१९ एफ, दिल्ली पुलिस अपार्टमेंटस,
मयूर विहार फेज-१
दिल्ली-११००९१
मो०-९८९१३४९०५८
ईमेल-
agrawalsadhna2000@gmail.com

वस्तुत: कहानी का यथार्थ वैसा ही नहीं होता जैसा जीवन का यथार्थ होता है। यदि ऐसा होता तो किसी भी रचना का यथार्थ बहुत सतही होता। प्रेमचंद ने कहीं लिखा है कि यथार्थ वह नहीं है; जो आँखों के सामने दिखता है बल्कि यथार्थ वह है जिसके कारण वैसा दिखता है। उदाहरण के लिए सड़क पर बैठा भिखारी यथार्थ नहीं है। यथार्थ वह व्यवस्था है; जिसके कारण भीख माँगना उसकी मजबूरी थी। आज की हिंदी या प्रवासी कहानी में जिस तरह हमारे जीवन या समय का इतिहास सामने उभर कर आ रहा है, उसमें चमक-दमक तो बहुत है लेकिन यथार्थ के नाम पर सतहीपन ज़्यादा है। कहने की ज़रूरत नहीं कि आज थोक भाव से जिस तरह लम्बी-लम्बी कहानियाँ लिखी जा रही हैं, उसके पीछे रचनाकारों के यश प्रार्थी होने की आकांक्षा के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह अकारण नहीं है कि कवि कहानी लिखने लगे हैं और कहानीकार कविता। रचनाकार के लिए विधा का बंधन नहीं होता, यह सच है लेकिन इससे भी बड़ी सच्चाई यह है कि अभिव्यक्ति का विकल्प फैशन नहीं है। मेरे कहने का आशय यह है कि कवि कहानी लिखकर अपने लेखन को सार्थक समझता है और कहानीकार कविता लिखकर। इधर जिस तरह की कहानियाँ लिखी जा रही हैं उसमें फार्म और कंटेंट (वस्तु और रूप) के स्तर पर इतनी तोड़-फोड़ हुई है कि कहानी कविता लगने लगी है और कविता कहानी। मेरी बात पर यदि यकीन न हो तो काशीनाथ सिंह का सद्य: प्रकाशित उपन्यास 'महुआ चरित' देखें। चिंता की बात यह नहीं है कि कहानी से कंटेंट गायब हो गया है, बल्कि असली चिंता की बात यह है कि विधा का मौलिक स्वरूप बदल गया है। यह मात्र विधागत परिवर्तन नहीं है, बल्कि हमारे जीवन में तेज़ी से बदलते यथार्थ के समानांतर है।

इस बार इस स्तंभ के अंतर्गत हमने अर्चना पेन्यूली की कहानी 'हाईवे-४७' अतंर्पाठ के लिए चुनी है। भारत में जन्मी अब डेनमार्क में बसी अर्चना पेन्यूली एक अरसे से कहानियाँ लिख रही हैं।

अर्चना पेन्यूली की किंचित लंबी कहानी 'हाईवे-४७' का कथ्य बहुत छोटा है लेकिन ज़िन्दगी और मौत का बड़ा फासला लिए हुए। हाईवे ४७ पर एक कार दुर्घटना में एक दम्पती की मौत होती है और मृत पत्नी द्वारा दान में दी हुई किडनी का प्रत्यारोपण शुभ में होता है। एक तरफ मौत है और दूसरी तरफ ज़िन्दगी। मौत और ज़िन्दगी के बीच वह यथार्थ है; जो मनुष्यता को बचाए रखने के लिए दृढ़ संकल्पित है। कहानी का असली यथार्थ यही है।

इस कहानी का आरंभ फ़ोन की घंटी बजने से होता है-'फ़ोन की घंटी ने सन्नाटे को चीर दिया। एक पल के लिए शुभ बिस्तर पर हिली। मगर खामोश लेटे हुए फ़ोन की घंटी सुनती रही। कुछ पल पूर्व ही वह बिस्तर पर आकर लेटी है और यह फ़ोन बज गया। कौन कर रहा फ़ोन इतनी रात गए ? उसे अपने बेटे राहुल की पदचाप ड्राइंगरूम की तरफ जाते सुनाई दी। फिर उसके रिसीवर उठाने की आवाज़।' आगे के प्रसंग में माँ-बेटे का संवाद है-'माँ'। 'हूँ' शुभ ने आवाज़ की। 'हास्पिटल से फ़ोन था।' 'हास्पिटल से ?' 'हाँ। उन्हें आपके लिए किडनी मिल गई है।' कहने की ज़रूरत नहीं कि शुभ इस कहानी की मुख्य स्त्री पात्र है; जिसकी किडनी खराब हो गई है और उसे जीने के लिए किडनी प्रत्यारोपण की ज़रूरत है। हीमोडायलिसिस एक साल से यह मशीन उसकी ज़िन्दगी का एक अभिन्न हिस्सा बनी हुई है। शुभ की शादी इंजीनियर कॉलेज में प्रोफेसर संदीप से हुई थी। उसके दो बेटे-मयंक और राहुल थे। उनकी ज़िन्दगी संतोषमय थी लेकिन संदीप कुछ बदलाव चाहता था और इसी बदलाव के लिए वह इलाहाबाद से डेनमार्क की टेक्नीकल यूनिवर्सिटी में नौकरी करने के सिलसिले में कोपनहेगन शुभ को यह आश्वासन देकर चला जाता है कि वहाँ पहुँचकर स्थिर हो जाने के बाद वह शुभ को जल्द ही बुला लेगा। कोपनहेगन से संदीप के शुभ के लिए पत्र आते, फ़ोन आते। हरेक फ़ोन व पत्र में सिर्फ़ कोरा आश्वासन कि वह जल्दी ही परिवार को अपने पास बुलाने का इंतजाम कर रहा है। इंतजारी में एक वर्ष बीत गया। फिर आया वह पत्र जिसने शुभ को दहला दिया। संदीप ने नि:संकोच ऐना, अपने डिपार्टमेंट की सेक्रेटरी, के प्रति अपनी अनुरक्तता का खुलासा किया था, उससे शादी करने की मंशा व्यक्त की, और शुभ से तलाक माँगा। निश्चित रूप से शुभ के लिए यह एक अप्रत्याशित घटना थी। कहाँ तो वह कोपनहेगन जाने की तैयारी कर रही थी लेकिन बीच में यह हादसा। पत्रों का सिलसिला जारी रहता है और शुभ से तलाक की याचना भी। शुभ स्थिति को समझती ही नहीं थी बल्कि व्यावहारिक तरीके से मामले को सुलझाने के लिए भी गौर कर रही थी। संदीप के सामने उसने एक शर्त रखी कि वह पहले शुभ और अपने दोनों बेटों को कोपनहेगन बुलाए क्योंकि अकेले वह बेटों की परवरिश नहीं कर सकती। संदीप ने शर्त मंजूर कर ली और शुभ कोपनहेगन पहुँच जाती है।

दरअसल शुभ का सोचना था कि अपने देश और परिवार से दूर होने और अकेलेपन की वजह से संदीप किसी गोरी औरत की तरफ झुक गया होगा। अब शुभ व बच्चे करीब होंगे तो संदीप का मन बदल जाएगा। मगर शुभ की सोच गलत होती है क्योंकि डेनिश कानूनी नियमों के तहत पति-पत्नी एक वर्ष के कानूनी विच्छेद के पश्चात तलाक

के अधिकारी हो सकते थे। तब जाकर वे किसी और से शादी कर सकते थे। मगर संदीप बगैर शादी के ऐना के साथ उसका पति बनकर रह रहा था। फिर जब उसको यह मालूम होता है कि ऐना संदीप के बच्चे की माँ बनने वाली है तो शुभ स्वयं कोर्ट में तलाक की याचिका डाल संदीप के साथ अपनी छः वर्षों की शादी का अंत कर डालती है।

लेकिन ऐना के साथ पन्द्रह वर्षों तक रहने के बावजूद एक अनंत रिश्ता; जो कि मौत तक ले जाता है, उनके बीच पनप नहीं पाया। वह अपना घर, फर्नीचर व बच्चे ऐना के पास छोड़कर एक छोटे से फ़्लैट में अकेला रहने लगा। शुभ को यह सब जानकारी अपने बच्चों से टुकड़ों में मिली थी। 'पापा ने हमारे घर के पास ही फ़्लैट लिया है,' एक दिन राहुल उससे बोला था।

बच्चों से मिलने के बहाने संदीप शुभ के घर आने-जाने लगता है। संदीप के पूछने पर कि तुमने अपने लिए कोई साथी ढूँढ़ने की कोशिश कभी नहीं की ? शुभ कहती है, 'मैंने किसी अन्य आदमी को अपनी ज़िन्दगी का हिस्सा सिर्फ़ मयंक व राहुल की वजह से नहीं बनाया। मैंने देखा कि तुम अपने दूसरे परिवार में इस कदर व्यस्त हो कि मयंक व राहुल के लिए तुम्हारे पास बित्ते भर का भी समय नहीं। ऐना, विलाड व मीला ही तुम्हारी ज़िन्दगी थे। तुम मयंक व राहुल से ऐसे मिलते थे जैसे दूर के रिश्तेदार मिला करते हैं। अगर मैं भी तुम्हारी तरह एक दूसरा परिवार बसा लेती-नया पति, नए बच्चे तो मयंक व राहुल पूरी तरह उपेक्षित हो जाते। मैं उनके साथ ऐसा नहीं होने देना चाहती थी।' संदीप उससे फिर से साथ रहने का आग्रह करता है लेकिन शुभ उत्तेजित होकर पूछती है, 'मैं पच्चीस साल की थी जब बेवजह ही तुम्हारे विश्वासघात का निशाना बनी। अब मैं पैंतालीस की हूँ-क्या तुम मुझे मेरी ज़िन्दगी के वे बहुमूल्य बीस साल लौटा सकते हो ?' संदीप के पास शुभ के प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था। शुभ उससे अपनी ज़िन्दगी में हस्ताक्षेप न करने के लिए कहती है। कुछ समय बाद उसे पता चलता है कि संदीप को एक नई गर्लफ्रेंड मिल गई है; जिसके साथ वह रहता है। जिसके साथ उसके दोनों जवान बच्चे काफ़ी घुलमिल गए हैं। शुभ हताश हो जाती है। वह सोचती है। 'पहले एक औरत ने उसका पति छीना, अब दूसरी औरत उससे उसका बेटा छीनने लगी है।'

एक दिन शुभ को संदीप की मौत की खबर देते हुए मयंक ने कहा, 'माँ, पापा इस दुनिया में नहीं रहे।' उसकी मौत की खबर ने शुभ को यद्यपि दहलाया नहीं लेकिन खेद प्रकट करते हुए उसने कहा, 'अरे वह बहुत जल्दी मर गया।' जब उसे पता चलता है कि संदीप की मौत एक एक्सीडेंट में हुई तो वह काँपते स्वर में पूछती है, 'क्या जिन्जर उसके साथ थी ?' 'हाँ, मगर दोनों में से कोई भी नहीं बचा।' 'कब हुआ एक्सीडेंट?' राहुल बोला, 'संयोग से आपके आपरेशन से कुछ घंटे पहले ही।' शुभ ने थरथराते होठों से अन्तिम प्रश्न पूछा, 'कहाँ हुआ था वह एक्सीडेंट ?' 'एक हाईवे पर-हाईवे-४७'।

इस तरह यह कहानी दाम्पत्य के घात-प्रतिघात से टकराकर मृत्यु के कगार पर पहुँचकर अनजाने में शुभ को जीवनदान देती है। कहानी ठीक-ठाक है लेकिन कथ्य में कोई नवीनता नहीं है। फिर भी जीवन और मृत्यु का विपर्याय इस कहानी को उल्लेखनीय बनाता है। विदेशी परिवेश में एक भारतीय युवक का बदलता चेहरा है। यदि मानवीय संबंधों में शिथिलता आई है तो इसका स्पष्ट कारण है विदेशी चमक-दमक के बीच एक प्रवासी युवक का आकर्षण। अर्चना पेन्यूली ने इस कहानी में यह संकेत दिया है कि डेनमार्क में गंभीर बीमारी के इलाज का खर्चा सरकार वहन करती है। इस कहानी की भाषा प्रवाह में कहीं-कहीं शिथिलता है जैसे कुछ पल पूर्व ही, शुभ ने आवाज़ की, शुभ बैड पर लुढ़क गई, शुभ ने अपने कान, नाक बाहों व गले को आभूषणों से रिक्त कर दिया आदि।

❐

ग़ज़लें

अमर नदीम

आँख के आकाश पर बदली तो छाई है ज़रूर
हो न हो कल फिर किसी की याद आई है ज़रूर

उड़ चला जिस पल परिंदा कुछ न बोली चुप रही
डाल बूढ़े नीम की पर थरथराई है ज़रूर

मयकशों ने तो सँभल कर ही रखे अपने क़दम
वाइज़ों की चाल अक्सर डगमगाई है ज़रूर

लोग मीलों दूर जा कर फूँक आए बस्तियाँ
आँच पर थोड़ी तो उनके घर भी आई है ज़रूर

हिटलर-ओ-चंगेज़ के भी दौर आए पर नदीम
ज़िन्दगी उनसे उबर कर मुस्कराई है ज़रूर।।

o

हों ऋचायें वेद की या आयतें क़ुरआन की
खो गई इन जंगलों में अस्मिता इन्सान की

कैसी तनहाई! मेरे घर महफ़िलें सजती हैं रोज़
सूर, तुलसी, मीर,ग़ालिब, जायसी, रसखान की

कितने होटल, मॉल, मल्टीप्लेक्स उग आए यहाँ
कल तलक उगती थीं इन खेतों में फ़सलें धान की

इस कठिन बनवास में मीलों भटकना है अभी
तुम कहाँ तक साथ दोगी; लौट जाओ जानकी

तुम भी कैसे बावले हो; अब तो कुछ समझो नदीम
अजनबी आँखों में मत खोजो चमक पहचान की।।

❐

Mahesh Patel
Zan Financial & Accounting Service
Mortgage,Life Insurance, BookKeeping ,Personal Income Tax,
Corporate Income Tax, RRSP & RESP
88 Guinevere Road, Markham,
ON L 3S 4 v2 416 274 5938
Mahesh2938@yahoo.ca

ल्युमिनिता (नन्ही रोशनी)

रीनू पुरोहित

रीनू पुरोहित का रुझान समन्वित संस्कृति के प्रति अधिक रहा है। यही कारण है कि कैनेडा की धरती पर भी भारतीय जीवन और परंपरा से जुड़ी निकट अतीत की ऐतिहासिक - सांस्कृतिक स्मृतियाँ मथती रहती हैं। कनाडा के भिन्न परिवेश ने उन अनुभूतियों को और सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण बना दिया।

हाल ही में इनका उपन्यास 'सिन्दूर की वक्ररेखा' का प्रकाशन हुआ है। यह उपन्यास उड़िया भाषा में भी अनूदित हो चुका है। जीवन की विविधताओं से रीनू सुपरिचित हैं, और इन्ही विविधताओं को ल्युमिनिता (नन्ही रोशनी) के माध्यम से पाठकों तक लाने का प्रयास है।

खिड़की के बाहर अँधेरा घिरा था। इस समय घर के पीछे ढलान पर साथ-साथ खड़े देवदार के तीन पेड़ नज़र नहीं आ रहे थे। पर ओंकारनाथ त्रिपाठी को मन में इन तीनों पेड़ों की आज से पच्चीस साल पुरानी छवि दिखाई दे रही थी। तब दो बड़े पेड़ों के बीच सहेजा, सम्भाला तीसरा छोटा पेड़ तेज़ हवा में झूमता खड़ा था। नन्हा मानव उछल-उछल कर, पापा ट्री, मम्मी ट्री एंड मानव ट्री गला फाड़े दोहराता जा रहा था। अँधेरे में नज़र नहीं आ रहे हैं... पर ओंकारनाथ जानते हैं कि तीनों पेड़ आज भी साथ-साथ खड़े हैं - पापा ट्री, मम्मी ट्री एंड मानव ट्री। आँखों पर ज़ोर देने पर भी खिड़की के शीशे में सिर्फ ख़ुद का अकेला खड़ा प्रतिबिंब ही दिखाई दे रहा है। नो मम्मी, नो मानव जस्ट पापा! जब ख़ुद का प्रतिबिंब भी आँखें भर आने पर धुँधला होने लगा तो ओंकारनाथ खिड़की के सामने से पलट गए।

पीछे दीवार पर पत्नी की चंदन की माला चढ़ी तस्वीर टँगी थी। भारती के साथ उन्होंने भरा पूरा खुशहाल जीवन बिताया था। अंतिम तीन साल अपनी बीमारी के कारण भारती ने बड़ा कष्ट पाया था। जब मौत आई तो भारती का कष्ट और दर्द से छुटकारा रहमत सी लगी। सारी ज़िन्दगी हंसों के जोड़े की तरह बिताने के बाद कभी मन में भी ओंकारनाथ ने पत्नी से अकेले रह जाने की शिकायत नहीं की। पर आज पत्नी की तस्वीर के सामने खड़े हुए उन्हें बहुत अकेला लग रहा था। गहरी साँस छोड़ पलंग की तरफ बढ़ने को हुए तो पत्नी की माला लगी तस्वीर में, मेज़ पर रखी मानव की तस्वीर की परछाईं पड़ती दिखाई दी। पूरे शरीर में सिरहन सी दौड़ गई। काँपते हाथों से उन्होंने मानव की तस्वीर उठाई और उसे दराज़ में रख कमरे से बाहर निकल आए। कमरे से बाहर निकल कर नीचे बैठक में आकर वे टहलने लगे। लैण्डोर में इस समय ठंड बहुत थी। रात के समय बाहर टहलना ठीक नहीं था। इस साल बर्फ भी बहुत गिरी थी।

भारती के गुज़र जाने के बाद पिछले पाँच सालों से दिल्ली वाला घर बंद कर वे यहीं लैण्डोर में रह रहे थे। इतनी बर्फ यहाँ पहली बार देख रहे थे। यूँ तो एक आध फुट बर्फ पूरी सर्दियों भर में गिर ही जाती है पर कुछ ही दिनों में पिघल कर साफ़ भी हो जाती है। इस बार बर्फ के ढेर ऊँचे ही होते जा रहे हैं। हर दो-तीन दिन में बर्फ गिर जाती है और कोहरा पहाड़ियों, पेड़ों और घरों को ढके रखता है। कभी-कभी तो दोपहर तक भी सूरज कुहासा छाँटने में अक्षम हो थक कर घाटी में रात बिताने जल्दी ही उतर जाता है।

अर्डविन दक्षिण पूर्वी दिशा में होने से इस मौसम में भी सूर्य की कृपणता का लाभ उठा लेता है। अर्डविन इस कॉटेज का नाम है। वेल्श भाषा में इसका मतलब होता है-पहाड़ी पर। लैण्डोर, मसूरी के बराबर सटा पहाड़ी शहर है। यहाँ लगभग सभी घरों के नाम हैं। यूरोपीयन नामों के अलावा, अमेरिकी मिशनरियों के आने से बहुत से घरों के अमेरिकन नाम भी हैं। शुरू में यहाँ अंग्रेज़ों ने छावनी बनाई थी। १९४७ के बाद धीरे-धीरे युरोपियनों की संख्या कम होने लगी पर अमेरिकी मिशनरी ईसाई धर्म के प्रचार के लिए आते रहे। इन्हीं मिशनरियों को हिन्दी सिखाने के लिए हिन्दी लेंग्वेज स्कूल स्थापित हुआ। आज भी देश-विदेश से छात्र यहाँ लैण्डोर लेंग्वेज स्कूल में हिन्दी सीखने आते हैं।

भारती के पिता जब आई सी एस थे तभी उन्होंने इंगलैंड वापस लौटते दंपती से आर्डविन खरीद लिया था। खुले-खुले कमरों वाला दुमंज़िला कॉटेज दक्षिण की ओर देहरादून को देखता हुआ, पेड़ों और पहाड़ियों से घिरा हुआ है। प्रकृति संपदा के बीच समाधि में बैठे योगी सा अडिग अचल टिका है।

कैसा मोह था भारती को इस जगह से... .....पर अंतिम तीन बरस के दौरान चाह कर भी भारती को यहाँ नहीं ला पाए। रोग हो जाने पर डाक्टरों-अस्पतालों से निर्भरता कहाँ छूटती है?

इतना रोग कष्ट झेलते हुए देखने के बाद भी पत्नी को पहली बार देखने की स्मृति आज भी समय की धूल से अनछुई साफ़ चमकते आईने सी मन में बसी है। उस समय उनका मित्र बहुत ज़ोर दे कर अपनी बहन का नाच दिखाने साथ ले गया था। जिस तरह के ग्रामीण परिवेश में ओंकारनाथ

का लालन-पालन हुआ था, सभ्य संस्कारी बहू बेटियों का स्टेज पर नाचना अच्छा नहीं समझा जाता था। एकदम सामने की कुर्सी पर बैठे होने पर भी देर तक वे आँखें उठाने का साहस नहीं कर पाए। पर जब आँख उठाई तो मंच पर गोपियों के साथ रास करते कृष्ण की चितवन में बँध गए।

वकालत पास करने के बाद अभी नई-नई सरकारी वकील की नौकरी लगी थी। मित्र लॉ कालेज में सहपाठी रहा चुका था। अब पिता के साथ प्राइवेट प्रैक्टिस कर रहा था। ओंकारनाथ के देहाती आवरण के भीतर छिपे तेज़ दिमाग व प्रतिभावान वकील को पहचानता था। तभी तो भावी बहनोई बनाने की कामना से आज यहाँ राधा बनी अपनी बहन मृणाल व माता-पिता से मिलाने ओंकारनाथ को साथ ले आया था। पर उसे क्या पता था कि ओंकारनाथ को राधा तो दिखाई ही नहीं दी..... उन्हें तो कृष्ण बनी भारती की मुद्राएँ मोहित कर गईं।

आँख खुलने पर अपने को बैठक की आराम कुर्सी पर पाया। यहीं बैठे-बैठे आँख लग गई थी। घड़ी देखे बिना मालूम था इस समय सुबह के चार बजने में दस मिनट हुए होंगे। हफ्ता पहले इसी समय फ़ोन की घंटी बजी थी। कहते हैं रात-बेरात फ़ोन अच्छे समाचार के साथ नहीं बजता, ऐसा ही हुआ। उस दिन के बाद से या तो सारी रात नींद आती नहीं, यदि आती है तो ठीक चार बजने में दस मिनट कम पर खुल जाती है।

फ़ोन उठाने पर पहले शब्द सुनते ही आशंका से दिल काँप गया था।

'मानव के पापा बोल रहे हैं?' दूसरे सिरे से प्रश्न आया था। जकड़ गए गले से किसी तरह 'हाँ' निकला था।

'मैं कैलिफोर्निया से मानव का दोस्त आलोक गुप्ता बोल रहा हूँ।' कह कर वह चुप हो गया था।

'हाँ, बोलो!' ख़ामोश हो गई फ़ोन लाइन पर ओंकारनाथ बोले।

ख़ामोशी लम्बी खिंचने लगी तो ओंकारनाथ के हाथ रिसीवर पर कसने लगे। माउथपीस में 'हैलो हेलो' चिल्लाने ही वाले थे कि दूसरे सिरे से झिझकती हुई आवाज़ आई 'अंकल! सॉरी, आइ एम वैरी सॉरी! मानव इज़ नो मोर।'

फ़ोन रखने पर भी यही चार शब्द 'मानव इज़ नो मोर' दिमाग में गूँजते रहे। यह कैसे हो सकता

है-- उनका और भारती का मानव, ज़िन्दगी और जोश से भरा मानव, ख़ूबसूरत और बुद्धिमान मानव, पढ़ाई और खेल-कूद में हमेशा आगे रहने वाला मानव, दोस्तों का चहेता मानव, कभी भूल या ज़िद ना करने वाला मानव... सिवाय एक बार... जिसे वे माफ़ नहीं कर पाए; जिसके कारण उन्होंने पिछले चार सालों से मानव से बात नहीं की... उन्हें मनाने के लिये प्लीज़ पापा, सॉरी पापा, दोहराता मानव, उनका और भारती का मानव।

'अंकल! मानव की बेटी... मैं मानव की विल का एक्ज़ीक्यूटर हूँ। उसने आपको अपनी बेटी का गार्जियन बनाया है। अगर आप रिग्रेस करते हैं, मतलब मना करते हैं तो वह स्टेट की वार्ड बन जाएगी। अगर आप एग्री करते हैं तो मैं अगले हफ्ते उसे इंडिया ले आऊँगा।' मानव के बारे में बताने के बाद आलोक ने आगे बताया।

'हाँ... हाँ उसे यहाँ ले आओ' जिस बेटी के लिये ओंकारनाथ मानव को उसके जीते जी क्षमा नहीं कर सके... उसकी ज़िम्मेदारी लेने के लिए उन्हें एक क्षण भी सोचना नहीं पड़ा। जीवन में जो बातें बड़ी और अक्षम्य लगती हैं, मृत्यु उन्हें कितना नगण्य बना देती है!

'मानव ने यह सब इंतज़ाम क्यों किया? क्या उसे पता था...?' ओंकारनाथ बात पूरी नहीं कर पाए।

'वेल! वी वर होपिंग फॉर द बेस्ट। मानव को ब्रेन ट्यूमर डायगनोस हुआ था। चान्सेस अच्छे नहीं थे। आपरेशन के भी ५०-५० थे। वी लोस्ट इट। ही डायड दिस इवनिंग इन आपरेशन रूम। वो इतना बड़ा चान्स ले रहा था, इसलिये आपरेशन से पहले सब अरेंजमेंट कर लिये थे, इन केस...।'

'मैं अपने आने के डिटेल आपको दो-तीन दिन में फ़ोन कर बता दूँगा।' वादे के अनुसार आलोक ने अपने आने की ख़बर कर दी थी। सुबह ग्यारह बजे तक पहुँच जाएँगे। उनकी फ्लाइट अब दिल्ली पहुँच गई होगी। सुबह होने पर देहरादून की फ्लाइट लेंगे। फिर टैक्सी से ग्यारह बजे तक लैण्डोर पहुँच जाएँगे।

ओंकारनाथ ने आलोक से कहा था कि वे दिल्ली पहुँच जाएँगे। पर आलोक ने ही यह कह कर मना कर दिया था कि वह जानता है कि दिल्ली का मकान कई सालों से बंद पड़ा है। फिर आगे उसे मुंबई जाना है। जिसके लिए उसने देहरादून से मुम्बई की टिकट भी बनवा ली है।

अब नींद तो क्या आने वाली थी। ओंकारनाथ आप ही चाय बनाने के लिये खड़े हो गए। ज़्यादा आवाज़ ना हो इस बात का ध्यान रख ओंकारनाथ ने रसोई की बत्ती जला ली। हल्के से केतली में पानी भर गैस पर चढ़ा दिया। रसोई के पीछे से ही सीढ़ियाँ दोरजी और हरिती के कमरे की तरफ जाती हैं। पिछले तीन साल से यह तिब्बती जोड़ा यहाँ उनके साथ सर्वेंट क्वॉटर में रहता है। हरिती ओंकारनाथ के लिये घर सँभालती और उनके लिए खाना बनाती है। दोरजी मसूरी में टूरिस्टों को तिब्बती हेंडिक्राफ्ट बेचता है।

बाज़ार में चाय की दुकान वाले ने यह जोड़ा यहाँ काम करने के लिए भेजा था। दोरजी तो यूँ ही कम बोलता था। शुरू के दिनों में तो हरिती पति के पीछे ही खड़ी रहती। अब मालिक सेविका की गरिमा बनाए रख कर भी वह ओंकारनाथ पर माँ का सा हुक्म चलाती है। ओंकारनाथ जानते थे कि आवाज़ होने से या रसोई में जलती बत्ती देख कर हरिती ज़रूर उठ कर नीचे पहुँच जाएगी। इसलिए ज़्यादा खटपट किये बिना चाय का प्याला ले कर वापस बैठक में सुबह होने का और मानव की बेटी का घर आने का इंतज़ार करने लगे।

१९७० में उस नृत्य कार्यक्रम में पहली बार भारती को देखा था और चार दिसम्बर १९७१ को भारती को ब्याह कर अपने घर ले आए थे। यह किस तरह हुआ... आज भी सपना ही लगता है। कहाँ रिटायर्ड आइसीएस अफसर की इकलौती बेटी

और कहाँ यूपी के एक छोटे से गाँव का लड़का; जिसके सिर पर हाथ रखने वाला आगे-पीछे कोई नहीं - जो केवल अपनी मेहनत, स्कॉलरशिप और ट्यूशन कर वकील बन गया था। बरसों की मेहनत की उपलब्धि सरकारी नौकरी की बँधीबँधाई तनख्वाह थी और किराये के घर की छत।

अपने प्रिय के रास्ते में फूल बिछा देने की ललक, आकाश से चाँद तारे तोड़ लाने की इच्छा किसकी नहीं होती। पर जब भारती जैसी जीवन संगिनी साथ हो तो भाग्य भी सारे सपने पूरे करने में कमी नहीं रखता।

सरकारी वकील से हाईकोर्ट जज की कुर्सी की यात्रा मेहनत और चुनौती भरी रही। भारती गृहस्थी सजाने के साथ-साथ नृत्य में भी सक्रिय रही। ईश्वर ने जब झोली में मानव को दिया तो लगा जैसे किसी अच्छे काम के बदले में, किसी की दी गई दुआ, कबूल हो गई।

कभी-कभी लगता है, जिस उदारता से विधि ने खुले हाथों से दोनों पर सौभाग्य लुटाया, अंत में ओंकारनाथ और भारती के लिये उसकी झोली खाली हो गई थी। जिस साल मानव आईआईटी के लिये हॉस्टल गया था, उसी साल भारती को ब्रेस्ट कैंसर डायग्नोस हुआ। डाक्टरों ने तसल्ली दे कर इलाज शुरू कर दिया था। शुरुआती इलाज के बाद ऑपरेशन करवाना पड़ा था और भारती अच्छी भी हो गई। अपने अनुभव के आधार पर वह इंडियन ब्रेस्ट कैंसर फाउंडेशन की स्पोक्स पर्सन बन गई थी। रोग के बारे में सामाजिक जानकारी देने के अलावा - नृत्य कार्यक्रमों से काफी चंदा भी इकट्ठा किया था उसने। पर अब तक उदार बने भाग्य ने जैसे अपनी झोली का मुँह कस कर बंद कर लिया था।

छह साल की कुंभकर्णी नींद के बाद कैंसर रिकरेंट होकर वापस लौट आया। दो साल की आँख मिचौनी के बाद रोग के शिकंजे भारती की हड्डियों पर कसने लगे थे। थिरकने वाले पैरों को आख़िरी साल व्हील चेयर का मोहताज होना पड़ा। भारती की तिल-तिल कर सूखती देह व अपाहिज होने की बेबसी देखकर अंत में उसकी मौत उसकी मुक्ति बन कर आई थी। उन दिनों मानव केलिफोर्निया में नौकरी कर रहा था। अमेरीका गए अब उसे चार साल हो गए थे। एमआईटी से मास्टर्स करने के बाद सिलिकोन वेली में प्रतिष्ठित आइटी

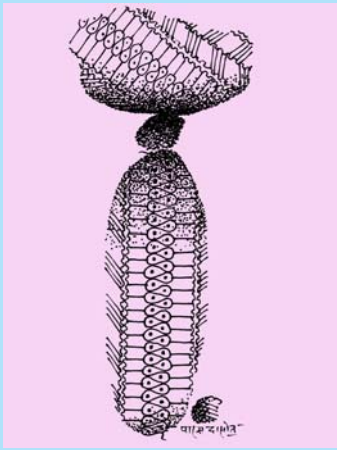

कंपनी में अच्छी नौकरी मिल गई थी। भारती की ख़राब तबियत के कारण वह वापस इंडिया आना चाहता था। पर समझा-बुझा कर भारती ने उसे मना लिया था। कहा था - कुछ सालों के इंटरनेशनल अनुभव के बाद इंडिया आ कर नौकरी करना ठीक रहेगा। यह मौका उसके लिये अच्छा कैरियरबूस्ट होगा।

ख़ुद के अंतिम समय का शायद भारती को आभास हो गया था। मानव को भी बुलवा लिया था। अंतिम यात्रा पर जाने से पहले मानो भारती सभी खुले सिरे बाँध देना चाह रही थी। लॉकर में रखे जेवरों की लिस्ट, फिक्स डिपोज़िट और बैंक की फेहरिस्त, नौकरों और चेरिटीज़ को दिये जाने वाले फंड का हिसाब, सब काम उसने सहेज दिये थे। मानव के आने के बाद घंटे भर तक माँ बेटे पता नहीं क्या सुग-बुग करते रहे कि हर बार टाल जाने वाला मानव इस बार इला के साथ सगाई के लिये राज़ी हो गया। इला ओंकारनाथ और भारती के पारिवारिक मित्र कृष्ण कुमार कश्यप की बेटी है। सब उन्हें केके बुलाते हैं। काफी खिंचाई भी होती है... उनका नाम के के नहीं, के के के होना चाहिए। इला और मानव लगभग हमउम्र होने से अच्छे दोस्त हैं। इला दिल्ली यूनिर्वसिटी में पढ़ाती है। अच्छे जाने-पहचाने परिवार की सुशील लड़की के साथ भारती अपने जाने से पहले मानव के भविष्य का सिरा बाँध उसे सहेज जाना चाह रही थी। मानव तो शादी के लिये भी राज़ी हो गया था। पर भारती ने ही मना कर दिया था। वह नहीं चाहती थी कि जब भी मानव अपनी शादी के बारे में सोचे उसे साथ ही माँ की अंतिम घड़ियाँ भी याद आएँ।

पति, बेटे, नाते-रिश्तेदार व मित्रों से घिरे हुए भारती ने जिस भरपूर तरीके से अपना जीवन जिया, उसी तरह अपने चाहने वालों से घिरे हुए उसने इस धरती से विदा ली।

ओंकारनाथ कभी इतने कर्मकांडी नहीं थे... ना ही भारती थी। पर भारती के जाने के बाद उन्होंने पूरा साल नियम से हर महीने ब्राह्मणी बुला कर उसका श्राद्ध किया। साल पूरा होने के बाद विधिवत् बरसी का कार्य किया। साल भर शोक रखने के बाद ही उन्होंने मानव व इला की शादी की तिथि निकलवाई थी।

भारती मानव की गृहस्थी के सिरे जिस गाँठ में बाँध गई थी, नियति ने उसे ऐसा झटका दिया कि गाँठ ही नहीं खुली, रिश्ते की डोर भी टूट गई। शादी की सारी तैयारियाँ ज़ोरों से चल रही थी। अगले हफ्ते मानव भी वापस इंडिया आने वाला था। प्रिन्टर का आदमी शादी के कार्ड घर दे गया था। अगले दिन सुबह पहला कार्ड गणेशजी को न्यौतने जाना था।

सारे कामों की लम्बी सूची धरी की धरी रह गई। ओंकारनाथ सुबह की चाय और अख़बार के लिये बरामदे में पहुँचे तो वहाँ चहल कदमी करता हुआ मानव मिला। एक बार तो ओंकारनाथ को लगा उनसे मानव की आने की तारीख को लेकर भूल हो गई। पर मानव को परेशान हाल देख उन्हें किसी अनहोनी का भान हो गया।

शादी के कार्ड डिब्बे में बिना बाँटे यूँ ही बँधे रह गए थे। पिता से सब कह सुनने से पहले ही मानव ने इला को सारी बदली परिस्थिति बता दी थी। उसका कहना था कि इस नए परिवर्तन का सीधा असर इला पर ही होना था। इसलिए पहले सच सुनने का हक़ इला का ही था। जवाब में इला ने मानव के साथ शादी से मना कर दिया।

मानव, प्लीज़ पापा... सॉरी पापा! कहता रह गया था। पर ओंकारनाथ ने घर के दरवाज़ों के साथ अपने स्नेह और दिल के दरवाज़े भी मानव पर बंद कर दिये थे।

हरिती चाय का प्याला हटा कर उन्हें दूध और दलिया दे गई थी। नहा-धो कर दस बजे से ही ओंकारनाथ आलोक और मानव की बेटी के आने का इंतज़ार करने लगे। मानव की बेटी... कैसे दादा के पास आ रही थी, जो उसका नाम भी नहीं जानते थे, आज तक जानने की कोशिश ही नहीं की थी।

बाट जोहते-जोहते बारह बजने को हो आए। पर अभी तक वे लोग नहीं पहुँचे थे। घर बैठे रहना

अब ओंकारनाथ से नहीं हो पा रहा था। हरिती से आधा घंटे में लौट आने की बात कह वे बाहर निकल आये।

इस साल लैण्डोर में काफी बर्फ गिरी थी। लैण्डोर छोड़े, इस बार तो १९४८ के बाद दूनघाटी में भी बर्फ गिरी है। आज मौसम काफी अच्छा है। कोहरा भी जल्दी ही छट गया। नीले आकाश पर बादलों के सफ़ेद टुकड़े तैरते दिखाई दे रहे थे।

लैंग्वेज स्कूल के सामने से होते हुए वे चार दुकान की ओर निकल पड़े। यूँ तो लैण्डोर, मसूरी से एकदम विपरीत, टूरिस्टों की भीड़-भाड़ से अनछुआ है। यहाँ रहने वालों को अपना एकांत बड़ा प्रिय है। इस शांत से लैण्डोर कैंटोन्मेंट में यदि कुछ हलचल देखनी है तो उसके लिये है–चार दुकान! यहाँ के स्थायी निवासी, कोई भूला भटका टूरिस्ट, लैंग्वेज स्कूल के स्टूडेंट... सभी मिल जाते हैं। सही में यहाँ चार ही दुकानें हैं–दो चाय की दुकानें, एक साइबर कैफे और एक बैंक, चार दुकान से गुज़र, सेंट पॉल चर्च के पास से होते हुए वे लाल टिब्बा की ओर चल दिये। इन रास्तों पर वे कितनी बार मानव का हाथ पकड़ कर चले हैं। आज फिर जैसे नन्हें मानव की हथेली ने उनकी अंगुलियाँ थाम ली हैं।

'पापा मेरी बेटी है! एक तीन साल की बेटी है मेरी', मानव के कहे हुए शब्दों को उस दिन ओंकारनाथ का दिमाग मायनों में नहीं ढाल पा रहा था।

कैसे? मानव की बेटी कैसे हो सकती है? अचानक कहाँ से? कितने सारे सवाल... कुछ कहे कुछ अनकहे...

'पापा जब मैं एमआईटी में था तब एक लड़की से दोस्ती हुई थी। जहाँ हम खाना खाने जाते थे, वह वहाँ काम करती थी। रोमानिया से आई थी। ठीक से अंग्रेज़ी भी नहीं जानती थी। किसी रिश्तेदार के साथ पेनसिलवेनिया आई थी। उन लोगों ने परेशान किया तो मेसाच्युसेट भाग आई। शांत सी अच्छी लड़की थी। ईस्टर ब्रेक में जब सब अपने-अपने घर गए, उन दिनों हमारी अच्छी दोस्ती हो गई। फिर वह अचानक ही कहीं चली गई। अभी महीने भर पहले चिल्ड्रेन सोसियल सर्विस ने मुझे कांटेक्ट किया। मालूम नहीं उसने किस मुश्किल से मेरा पता ढूँढा होगा? अब वह नहीं है। पापा! मैं डी एन ए टैस्ट करवा चुका हूँ। यह मेरी ही बेटी है। उसे मैं कैसे छोड़ दूँ ? पापा! प्लीज़ पापा! सॉरी पापा!

मानव लौट गया। उसने कितने ही फ़ोन किये। दो बार लैण्डोर आकर मिलने की कोशिश भी की। पर ओंकारनाथ ने बेटे को माफ़ नहीं किया। पिछले दो साल से मानव का कोई फ़ोन भी नहीं आया था। और अब... अब तो बहुत देर हो गई थी।

भारती कहा करती थी... बुढ़ापे और बुद्धि का मेल हो, ज़रूरी नहीं। आज ख़ुद को देख कर यह बात कितनी सही मालूम हो रही थी।

यादों की अँगुली थामे जब वापस घर लौटे तो बाहर खड़ी टैक्सी देख कदम तेज़ हो गए। आलोक बाहर खड़ा उन्हीं का इंतज़ार कर रहा था। उसने बताया मानव की बेटी अंदर हरिती के पास है। पर वह अभी इसी टैक्सी से वापस देहरादून लौट जाएगा। वहाँ से उसका मुंबई की फ्लाइट का टिकट है। वहाँ एक दिन ठहर कर अगले दिन वापसी की फ्लाइट है।

गाड़ी के अंदर झुक कर आलोक ने सीट पर रखा भूरे रंग का गत्ते का डिब्बा निकाल कर ओंकारनाथ की ओर बढ़ा दिया।

'अंकल मानव की अस्थियाँ हैं। क्रिमीनेशन से पहले हिंदू रीति से सारे काम करा दिये गए थे।'

आलोक को विदा कर वे अंदर पहुँचे। लाल ऊनी कोट पहने छोटी सी लड़की हैट पैग के पास बिछी बैंच पर बैठी थी। काले चमड़े के जूते पहने उसके छोटे-छोटे पैर नीचे फर्श को भी नहीं छू पा रहे थे। हाथ में लिफाफा पकड़े वह शांत गुड़िया सी बैठी थी। बड़ी-बड़ी आँखों के चेहरे में वे मानव को ढूँढते खड़े थे कि उसने धीमी आवाज़ में पूछा–'दादाजी!'

'हाँ!' में गर्दन हिलाने पर वह बैंच से सरक कर उतरी और ओंकारनाथ की तरफ हाथ में पकड़ा लिफाफा बढ़ा दिया।

'पापा ने कहा, आपके लिए है।'

ओंकारनाथ ने झुक कर लिफ़ाफ़े के साथ उसे भी गोद में उठा लिया और उसे बैठक में ले चले।

'आपका नाम क्या है?' उन्होंने पोती से पूछा।

'नीता! ल्युमिनिता!' उसने जवाब दिया।

नीता को गोद में बिठा ओंकारनाथ ने लिफ़ाफ़ा खोला। लिफ़ाफ़े में मानव की चिट्ठी थी–

'पापा,

आप यह पत्र पढ़ रहे हों तो सबसे पहले यह बता दूँ कि मैंने आपको बिमारी की ख़बर इसलिए नहीं दी कि मैं आप से नाराज़ था। मैं आपसे ऑपरेशन के बाद स्वस्थ हो कर मिलना चाहता था। मैं नहीं चाहता था कि जिस परेशानी और चिंता से आप माँ की बीमारी के दौरान गुज़रे, वही चिंता आपको मेरी भी करनी पड़े। पापा! आप यह पत्र पढ़ रहे हैं तो नीता भी आपके पास है। और आपने मुझे माफ़ भी कर दिया है। पापा, आज यह पत्र लिखते समय मैं पापा की रेस्पोंसिबिलिटी महसूस कर रहा हूँ। जब हम ना रहें तो हमारे बच्चों को पालने के लिये किसे चुनें? कौन होगा जो उसे मेरी तरह पालेगा... बड़ा करेगा। बहुत सोचने पर मैंने यही चाहा कि कोई ऐसा हो; जो उसे मेरी तरह पाले। पापा! वो आप हैं। पापा आपने जैसी परवरिश मुझे दी अगर नीता भी वैसी ही पा जाए तो बड़ी भाग्यशाली होगी।

नीता का नाम 'ल्युमिनिता' है। एक यही उसके पास उसकी माँ की दी हुई याद है। रोमानियन भाषा में इसका मतलब होता है– 'नन्हीं रोशनी'। अब यह नन्हीं रोशनी पापा आपकी है। बहुत सारे प्यार के साथ...

आपका,

मानव

नीता के घर आने के बाद, दादा-पोती हरिद्वार जाकर मानव की अस्थियाँ विसर्जन कर आए थे। दिल्ली वाला घर दुबारा खुलवा कर ओंकारनाथ ने साफ़-सफ़ाई का इंतज़ाम करवा दिया। जिस घर में कभी भारती की हँसी और मानव की किलकारियाँ गूँजी थीं, आज वहीं मानव की बेटी उनकी नन्ही रोशनी... उनकी ल्युमिनिता खिलखिला रही थी। उम्र की साँझ में अकेले रह गए पथिक की नज़र बस उस क्षितिज पर टिकी रहती है, जहाँ ज़िंदगी और मौत मिल जाते हैं। पर ज़िदगी को जीवन की दोपहरी या साँझ से क्या लेना। क्या मालूम किस घड़ी किस समय ज़िंदगी हाथ बढ़ा क्षितिज को ताकते पथिक की अँगुली पकड़ नई राह... नई रोशनी की ओर ले चले।

वुडस्टॉक स्कूल में नीता के एडमिशन के लिए वे फिर लैण्डोर आ गए थे। बर्फ पिघल, जाड़ा बीत चुका था। पहाड़ पर भी बसंत आ चुका था। आज खिड़की से देखा तो ढलान पर खड़े तीन देवदारों के बीच एक छोटा-नन्हा देवदार का पौधा अपनी जगह बना रहा था। ❐

कुछ तैरती यादें

मीरा गोयल

छायाकार पण्डित जवाहर लाल नेहरू

बात शांतिनिकेतन के उन स्वर्णिम दिनों की है जब गुरुदेव रविन्द्रनाथ प्रधानाध्यापक थे। सफ़ेद दाढ़ी, चौड़ा माथा, ओजस्वी मुखड़ा, लेखनी में जादू, पर वे पहुँच से दूर नहीं थे। छात्र-छात्राओं को समय-असमय उनके दर्शन की पूरी छूट थी।

गुरुदेव की एक चहेती, निष्कपट, स्वछंद छात्रा अमला, जिसे वे स्नेह से 'आमार मेय' (मेरी बेटी) कह कर संबोधित करते थे, एक बार वह किसी वजह से छात्रावास से गुरुदेव के निवास पर जा रही थी। रास्ते में क्यारियों में लगे फूलों ने पुकारा, लुभाया या ललकारा और इस निरंकुश लड़की ने 'फूल तोड़ना वर्जित है' के पट्टे को अनदेखा कर एक गुलाब तोड़ा और अपनी वेणी में लगा लिया। जब गुरुदेव के निवास पर पहुँची तब उसे अपनी गलती का खयाल आया। झट सिर पर पल्ला रख कर फूल को छिपा लिया।

गुरुदेव के दर्शन और वार्तालाप के बाद जब लौटने लगी तब गुरुदेव बोले - सिर से पल्ला हटाओ। कन्या डरी, थोड़ा झिझकी, अपनी ढिठाई के लिया शर्मिंदा भी हुई। गुरुदेव नि:शब्द ही उसके हृदय की सारी भावना समझ गए और हँस कर बोले - कभी-कभी नियम तोड़ना भी अच्छा है। यही लड़की समय आने पर मेरी माँ बनी।

गुरुदेव का मानना था कि जब आप कहीं, किसी के घर आमंत्रित होते हैं, सुरुचि पूर्ण सज-सँवर कर जाते हैं तो अवसर की शोभा तो बढ़ाते ही हैं, साथ ही निमंत्रण देने वाले की महत्ता बढ़ा कर आप उसे भी गौरवान्वित करते हैं।

उन दिनों शांतिनिकेतन के छात्रावास में आमिष और निरामिष, सभी भोजन एक ही रसोई में बनता था। खाना परोसने वालों से अक्सर गलती हो जाती थी; जो शाकाहारी छात्रों को कष्टदायक लगती थी। एक बार इस निरंकुश अमला की कटोरी में चिकन परोसा गया, हड्डी समेत ! वहीं, उसी वख्त ढीठ, निडर लड़की पंगत से आधा खाना छोड़ कर उठी और दौड़ती - दौड़ती प्रमाण की कटोरी समेत गुरुदेव के चौंखट पर पहुँच गई। निर्बाध लड़की घिघियाई नहीं, बड़े हक से डिमाण्ड किया, प्रोस्पेक्टस में तो लिखा था कि वेजिटेरियन छात्रों को वेजिटेरियन फूड मिलेगा। कहाँ गया वह वादा ? यही निष्कपट अमला जो अपने दिल की सच्ची और स्वेच्छावादी थी, असत्य के सामने न कभी झुकी न डरी। साँच को आँच क्या ?

इस घटना के बाद जल्दी ही दो अलग-अलग 'मेस' बने जहाँ इस तरह की गलती होने का भय समाप्त हो गया। निरामिष छात्र प्रसन्न हुए।

किस्से तो मेरी माँ ने अपने शांतिनिकेतन छात्र जीवन के बहुत सारे सुनाए थे पर एक 20 - 22 साल की लड़की अपने हृदय की शुद्धता के प्रति इतनी जागरूक और स्पष्टवादी हो सकती है जान कर मुझे आश्चर्य होता है।

एक बार की बात है किसी रंजनकला के छात्र ने अमला (मेरी माँ) से पोट्रेर्ट मॉडलिंग के लिए बैठने का आग्रह किया। अपनी सहज और उदार प्रकृति के अनुसार वह मान गईं । स्वयं वह साइंस की स्टूडेंट थीं। जैसे साधारण लिबास में शालीनता से साड़ी-ब्लाउज पहनने का रिवाज़ था वैसे ही अमला अपने कलाकार मित्र के चित्रांकण हेतु बैठीं। जब चित्र प्रदर्शनी में लगाया गया अमला की सहेलियाँ उसे चिढ़ा-चिढ़ा कर आनन्द लेने लगीं। नव युवतियों को माधुर्य रस उड़ेलने और उसी रस से रंजित हो जाने में अलौकिक आनन्द का भान होता है। सरल रसलिप्सा से भिन्न, विज्ञान की छात्रा अमला कुछ समझ न पाई। प्रदर्शनी में जा कर देखा तब सारी बात समझ में आई। दक्ष कलाकार ने चेहरा हू बहू आँका था पर कलात्मक अनुमति (आर्टिस्टिक लाइसेंस) समझ कर साड़ी के पल्ले को थोड़ा नीचे खिसका कर और ब्लाउज के गले को थोड़ा गहरा कर यौवन के सौन्दर्य को निखारने का प्रयत्न किया था।

जैसा मैं पहले भी कह चुकी हूँ यह निर्भीक, गर्विता लड़की लज्जित से ज़्यादा क्रोधित हुई। ईज़ल पर लगी पेंटिंग को विभिन्न टुकड़ों में फाड़ कर धराशायी कर दिया। उसे अपने अधिकार का पूरा ज्ञान था और उस निर्बाध लड़की ने उस अधिकार को चरितार्थ भी किया। कलाकार हाथ मलता रह गया। भीरु मैं, यह घटना सुनते समय भी डर गई थी। क्या कोई ऐसा कर सकता है ? अधिकार है क्या ? मज़ा तो यह है कि इतने जंजाल खड़ा करने के बावजूद अमला ने गुरुजनों और सहपाठियों का स्नेह ही अर्जित किया था। अपने को अविस्मरणीय बनाने का एक अचूक दैवी वरदान था उसके पास।

अमला-विमला ये दो जुड़वाँ बहने थीं। आइडेंटीकल टिवन्स ! शांतिनिकेतन के प्रांगण में दोनों कुछ समय एक साथ रहीं और जनता को सहज ही उलझन में डाल कर भ्रमित और आनंदित किया।

शांतिनिकेतन में उन दिनों इन्दिरा (नेहरु) गाँधी भी छात्रा थीं और अमला की रूममेट थीं। सुप्रसिद्ध कलाकार नन्द लाल बोस, हिन्दी साहित्य शिरोमणि हज़ारी प्रसाद द्वीवेदी भी उसी प्रांगण में विचरते थे। लोक प्रिय अभिनेता बलराज साहनी हिन्दी के अध्यापक थे। उनकी पत्नी दमयन्ती जी अमला के मित्रों में से थीं। महारानी गायत्री देवी और कान्तम्मा रेड्डी जो बाद में गवर्नर की पत्नी बनी वे भी शांतिनिकेतन जीवन के साहचर्य से धनी हुई थीं।

एक बार की बात है नेहरु जी अपनी बेटी इन्दिरा से मिलने आए हुए थे। उन्होंने देखा ये दोनों सहेलियाँ एक गधे के पास खड़ीं उसे छेड़ रही हैं। नेहरु जी ने झट कैमरा उठाया और उस दृश्य को स्थायी रूप दे दिया। 'थ्री फ्रेंड' शीर्षक दे कर एक प्रति अमला के पास भी भेज दिया। वह चित्र आज भी मेरे मायके में सुरक्षित है जो नेहरु जी के स्नेह

और हास्य-प्रियता की मिसाल है।

कमाल नाम की एक छात्रा जो इन्दिरा और अमला से छोटी थी पर अपनी मासूम चंचलता और कोमल स्वभाव के कारण सभी को प्रिय थी। छात्र जीवन के बाद वही कमाल महारानी गायत्री देवी को विवाह के अवसर पर दहेज में बाँदी के रूप में मिली। मेरी माँ को इस की कोई खबर नहीं थी।

बरसों बाद एक बार मेरी माँ अमला महारानी गायत्री देवी के निवास पर मित्रता के नाते मिलने गईं महारानी ने पूछा 'कमाल से मिलोगी ?' अमला के मानस पटल पर शांतिनिकेतन के दिन सजग हो उठे। उस प्रिय बालिका से मिलने के पूर्वानुमान से अमला मुस्कुराई। कुछ क्षणों में बाँदी कमाल दरवाज़े से ही कई बार झुक कर सलाम करती हुई कमरे में घुसी और एक तरफ़ जा कर मौन खड़ी हो गई। अमला स्तम्भित रह गईं बस मुँह से इतना ही निकला – 'कैसी हो कमाल!' ख़याल आया कि एक समय था जब शांतिनिकेतन में महारानी गायत्री देवी और कमाल दोनो ही सहछात्राएँ थीं। अंग्रेज़ वार्डेन के साथ घूमने – संकट में पड़ने और निकलने का किस्सा भी अमला जी के स्वाभिमान और स्पष्टवादिता का ज्वलंत उदाहरण है। उसकी बात

फिर कभी करेंगे। उन दो वर्षों में मेरी माँ का गुरुदेव से साक्षात्कार, वार्तालाप और भावनाओं का आदान-प्रदान अनगिनत बार हुआ होगा। एक बार वह याद कर रही थीं कि कैसे एक दिन वह गुरुदेव के निवास पर गई थीं और गुरुदेव निमंत्रण देने लगे कि अब मेरे साथ खाना खा कर जाना। मैं भी शाकाहारी, तुम भी शाकाहारी ! पीछे से उनके स्वामिभक्त नौकर ने 'दीदिमोनी' कह कर उन का ध्यान आकृष्ट करके इशारे से मना किया कि निमंत्रण स्वीकार मत करो। बाद में उस ने बताया कि ये वृद्ध महानुभाव खाते ही क्या हैं; जो साथ खाने का निमंत्रण दे रहे हैं। इनके खाने के नाम पर थोड़ा सा बिलकुल सादा, बगैर घी मसाले का टमाटर और सब्जियों का स्टू है साथ में पावरोटी का एक टुकड़ा खाएँगे। यही उनका रात्रि का भोजन है।

काश ! मैंने अपनी माँ से गुरुदेव के साहचर्य और शांतिनिकेतन जीवन के अनुभव की बातें खोद-खोद कर पूछी होती, पर अब तो बहुत देर हो चुकी है। कल्पना के पर फड़फड़ा कर रह जाते हैं।

नि:संदेह शांतिनिकेतन का वही स्वर्ण युग था। अहो भाग्य मेरे कि उस माटी पर विचरी युवती को मैंने इतने पास से देखा और चाहा है। अपनी माँ के अनुभव को मैं बड़े गर्व से सुनाती हूँ और उनके अनुभव को नज़दीकी से आत्मसात् करती हूँ।

ठीक साल और महीना तो इतिहास के पन्ने ही निश्चित कर सकेंगे पर मैंने तो जो सुना और याद रहा वही बाँचा। संभवत: शांतिनिकेतन की ये सारी घटनाएँ १९३६ से १९३८ के आस पास की हैं। ❐

SAI SEWA CANADA

(A Registered Canadian Charity)

Address: 2750,14th Avenue,Suite 201,Markham,ON ,LEROB6
Phone : (905)944-0370 Fax : (905) 944-0372
Charity Number : 81980 4857 RR0001

Helping To Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses Of India

Thank You For You Kind Donation to **Sai Sewa Canada**.Your Generous Contribution Will Help The Needy and the Oppressed to win The Battle Against. Lack of Education And Shelter, Disease Ignorance And Despair.

Your Official Receipt for Income Tax Purposes Is Enclosed
Thank You , Once Again, For Supporting This Noble Cause And For Your Anticipated Continuous Support.

Sincerely Yours,
Narinder Lal
416-391-4545

Service To Humanity

प्रवासी साहित्य : अस्तित्व का संघर्ष

सुबोध शर्मा

'सचमुच यह परदेसी जीवन, गाथा है मजबूरी की' डॉ. मीणा अग्रवाल की यह पंक्ति प्रवासी जीवन की सच्चाइयों को व्यक्त करती है। प्रवासी वे भारतीय हैं; जो उच्च शिक्षा या अच्छी नौकरी के लिए अपने वतन से दूर किसी अन्य राष्ट्रों में जाकर बस जाते हैं। जहाँ अपनों की जब भी यादें आती हैं या मन पर उदासी हावी होने लगती है, तो ये यादें चुपके से आकर उनके नीरस और उदासीन क्षणों में मिश्री घोल देती है। कभी बचपन की शरारतें, तो कभी माँ की लोरी, कभी बाबू जी की प्यार की डाटें तो कभी छोटे भाई-बहनों के साथ बीते गाँव के खेत खलिहानों व गली-मुहल्लों का स्मरण उनके मन को सहलाने लगता है। इन यादों से व्यस्त जीवन सरस हो जाता है - 'रहन-सहन में, चाल-चलन में, रिश्तों में, संबंधों में, सात समन्दर पार गए पर, भारत अपने साथ रहा।' जब वे कामों के बोझ से हटकर अपने अतीत के ख्यालों में डूबते हैं तब गुज़रा हुआ हर वो पल सामने दिखता है, तब वे परदेस की स्वीकृति-अस्वीकृति के द्वन्द्वों के बीच मनोवैज्ञानिक दबावों में घिर जाते हैं। वे एक ही साथ दोहरी मानसिकता के जीवन जीते हैं। यह सत्य है कि लेखक जिस परिवेश, प्रकृति और समाज के बीच रहकर बड़ा हुआ है उसका प्रतिबिम्ब उसके साहित्य में अवश्य ही दिखेगा। इसका मुख्य कारण यही है कि लेखक अपने परिवेश में रहकर ही अपनी संवेदनाओं को साहित्यिक रूप देता है। यह भी सत्य है कि संवेदनाओं की कोई सीमा नहीं होती है,' संवेदना बंधनमुक्त होती है, लेकिन संवेदना को जाने वगैर अभिव्यक्ति का मूल्यांकन नहीं हो सकता। अत: जब भी प्रवासी साहित्य का मूल्यांकन होगा, हमें प्रवासी संवेदना की कसौटी से उसकी परीक्षा करनी ही होगी। आज जब हिन्दी में प्रवासी लेखकों के साहित्य को 'प्रवासी - साहित्य' कहा जाता है तो कुछ लेखकों को यह शब्द अपमान बोधक लगता है। 'प्रवासी' शब्द अपमानबोधक नहीं है। यह तो उन लेखकों के सम्मान के लिए है जो अपने वतन से दूर अपनी रचनाओं में अपने वतन की खट्टी- मीठी यादों को व्यक्त करते हैं।

सुबहें पीछा करती हैं, वे शामें पीछा करती हैं, अनजानी बस्ती में भी, बरसातें पीछा करती हैं, सोच भटकने लगती है, फ़र्राटे भरती गाड़ी में, भीड़ उगलती सड़कों पर जब, यादें पीछा करती हैं।

हिन्दी का प्रवासी साहित्य अपनी अलग पहचान के कारण हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा का ही अंग है। यह विभाजन तो वैसा ही है जैसे छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद नई कविता..... तथा कथा -साहित्य में आंचलिक उपन्यास, नई कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, आदि अपनी स्वतन्त्र सत्ता के साथ हिन्दी-साहित्य का हिस्सा बनी रही। प्रवासी साहित्य के रचनाकार, भारत के हिन्दी रचनाकारों की तुलना में भिन्न परिस्थिति, भिन्न परिवेश तथा भिन्न संवेदनात्मक संसार में जीते हैं। उनके सम्मुख रचनात्मक दबाव तथा रचनात्मक सरोकार भी भिन्न-भिन्न होता है। उसे समझने के लिए भिन्न किस्म की संवेदनशीलता की आवश्यकता है; जो अभी कम दिखाई पड़ रही है। दो संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न बेचैनी एवं अपने को उस नए वातावरण में समायोजित करने की आवश्यकता से उत्पन्न समस्यायों की गूँज ही प्रवासी साहित्य का मुख्य स्वर है।

प्रवासी साहित्यकार को अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से बेहद जुड़ाव है। वे दूर रहकर भी अपने देश और देशवासियों से जुड़े रहना चाहते हैं, किसी भी समाज में ऐसे लोग गिने-चुने ही होते हैं; जो अपनी चेतना को समाज के आत्मसंघर्ष का कुरुक्षेत्र बन जाने दें। ऐसे लेखक भी कम होते हैं जो शब्दों, स्मृतियों और संबंधों की पुन:परिभाषा की यातना स्वयं अपनी आत्मा में झेलते हैं और इस यातना की परिणति को ही नहीं, दु:खदायक प्रक्रिया को भी अपने शब्दों में आने देते हैं और उन शब्दों को पाठक तक परिभाषाओं के इस संघर्ष को विषाद से ही शुरू करते हैं, लेखक और नागरिक दोनों की भूमिकाओं में नैतिक कर्म की खोज करना प्रवासी लेखकों के काव्य जगत की मूल प्रतिज्ञा है। रचनाकार संवेदना और अनुभव की भाषा को आत्मीयता के साथ खोजते हैं। वे देश में नैतिक मूल्यों के अवमूल्यन से क्षुब्ध हैं। लेखक का विचार है कि साहित्य आम आदमी की आवाज़ बने जो संसार संग्राम से जूझ रहा है, हक के लिए लड़ रहा है। प्रवासी साहित्यकार उसके पक्ष में खड़ा दिखता है अपने देश से मोह-भंग की पीड़ा उस व्यक्ति को अधिक सताती है; जो परदेस में अजनवीपन को धकेलने के लिए एक विशेष मोह से इस देश में आया है। रचनाकार के अनुसार जीवन-धुरी का बृहद् लक्ष्य है। यह बृहद् लक्ष्य मानव की केंद्रीय प्रक्रियाओं का अविभागीय अंग बनकर जीना है। साहित्यकार इसी जीवन बोध को बिजली भरी तड़पदार ज़िंदगी कहते हैं, यह ज़िंदगी मेहनत और मुक्ति के काम में लगे सर्वहारा समाज की शानदार ज़िंदगी है, रचनाकार को समाज के शोषित, उपेक्षित और अर्थभाव झेल रहे लोगों के प्रति करुणा, प्यार, उम्मीद, और संवेदना है। रचनाकार का जीवन संघर्ष जनता के उस अभिन्न मित्र का है, जो सच्ची मैत्री की अग्नि परीक्षाओं में तड़प रहा है और जनता के शत्रुओं की खतरनाक प्रणालियों का जवाबी मोर्चा है। रचनाकार ने एक विचारक की भाँति अपनी रचनाओं में मानवतावादी, समाजवादी और जनवादी मूल्यों के प्रति संवेदना व्यक्त की है।

राजी सेठ लिखती हैं' भाषा के घेरे से परे रहकर, अपनी भाषा की, देश से परे रहकर देश की, परिवेश से परे रहकर देश के रंग -रूप, तीज -त्योहार, मिथक इतिहास को रचने की प्रेरणा कौन देता होगा। चेतना में ऐसी ललक कैसे पैदा होती होगी ? जबकि वातावरण में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो ऐसे विकल्पों या ऐसी अंतर्धाराओं को पोषित कर सके। यह देशप्रेम ही है जो परदेस में भी प्रवासी समूह को अपनी ओर आकर्षित करता है। विदेश में रहने वाले हिन्दी के साहित्यकार अपने देश के प्रति अधिक सजग एवं समर्पित हैं। इनकी रचनाओं में एक ऐसी भारतीयता है; जो स्वदेश -परदेस के द्वंद्व से जन्म देती है और एक नया परिवेश, एक नई जीवन दृष्टि तथा जीवन जीने का नया सरोकार देती है। कुछ क्षुब्ध होकर डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी लिखती हैं 'ऐसे विरोधाभासों के बीच पनपता अमेरिकी हिन्दी साहित्य और उस पर अपने ही देश से मिली उपेक्षा, प्रकाशकों एवं सम्पादकों की अस्वीकृतियाँ, डालर बटोरने की लालसाएँ, भला कहाँ, पनपने

देंगी इस बंजर भूमि में उगी हुई लताओं को। उन्हें सतही और भ्रष्ट भाषा का साहित्य कहकर नकारा जाता है। हाँ, जो डालर-संस्कृति की दौड़ में समर्थ रहे, वे गाहे -बगाहे छपते रहे, पर सब की न वह समर्थ होती है, ना ही अस्वीकृतियों में से राह बनाने की चाह। इस पर स्थानीय गुटों की भेड़िया चाल अलग है।'

डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी के प्रश्नों का जबाव देते हुए डॉ. महीपसिंह ने कहा है- 'विदेशों में रचे जा रहे साहित्य के प्रति हमें अधिक जागरूक होना चाहिए और उच्च स्तर के हिन्दी अध्ययन में, उन्हें विशिष्ट स्थान भी प्राप्त होना चाहिए। वक्त आ गया है कि प्रवासी साहित्य को हिन्दी साहित्य के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकारा जा रहा है।'

सन्दर्भ: शोध दिशा, अक्टूबर-दिसंबर 2010, हिन्दी चेतना, अमेरिका में हिन्दी कथा साहित्य में अमेरिकी परिवेश- सुधा ओम ढींगरा, अमेरिका में हिन्दी साहित्य- डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी (गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय)

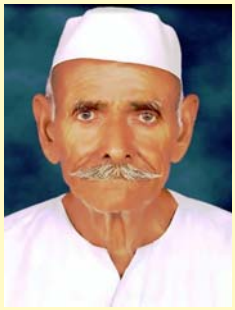

'हिन्दी चेतना' के सह संपादक, प्रतिष्ठित साहित्यकार रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' के पूज्य पिताजी चौधरी सोमसिंह काम्बोज का देहावसान 28 मार्च, 2014 शुक्रवार को प्रात: चार बजे ग्राम हरिपुर , जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) में हो गया। आपकी अवस्था 92 वर्ष की थी। आपका जीवन कर्मठता का प्रतीक रहा है। आपकी स्पष्टवादिता का सभी सम्मान करते थे। विषम परिस्थतियों में भी आप सदा निर्भीक रहे। यह गुण आपके पुत्र- पुत्रियों की सामाजिक पहचान बनी। हिन्दी चेतना परिवार की तरफ से काम्बोज परिवार को हार्दिक संवेदनाएँ।

लेखकों से अनुरोध

बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनीकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फाइल अथवा वर्ड की फाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ई मेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। चित्र की गुणवत्ता अच्छी हो तथा चित्र को अपने नाम से भेजें। पुस्तक समीक्षा के साथ पुस्तक आवरण का चित्र, रचनाकार का चित्र अवश्य भेजें। **-सम्पादक**

सूचना

हिन्दी चेतना पत्रिका अब कैनेडा के साथ-साथ भारत से भी प्रकाशित हो रही है। पत्रिका के सदस्य बनना चाहते हैं या पत्रिका के एक-दो अंक पढ़ने के लिए मँगवाना चाहते हैं तो आप संपर्क कर सकते हैं-

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' 9313727493
पंकज सुबीर 9977855399

सौ साल के युवा सिनेमा जीवन की अमर फिल्म 'तीसरी कसम'

डॉ. विशाला शर्मा

हिंदी विभागाध्यक्ष
चेतना कला वरिष्ठ महाविद्यालय,
एन-11, सिडको, औरंगाबाद 431003
महाराष्ट्र
दूरभाष क्र. 09422734035
vishalasharma22@gmail.com

कथा साहित्य का फिल्मांतरण फिल्म सिद्धांत का महत्त्वपूर्ण अंग है। स्वतंत्रता के पश्चात हिन्दी कथा साहित्य के फिल्मांकन में महत्त्वपूर्ण कथा-कृतियों का समावेश किया गया और आज तक हिन्दी की अनगिनत कृतियों पर सफल फिल्मों का निर्माण हुआ है। जिसमें प्रेमचंद की लोकप्रिय कहानी पर 'हीरा-मोती', 'शतरंज की खिलाड़ी', 'सद्गति' तथा उपन्यास पर 'गबन' तथा 'गोदान'। चन्द्रधरशर्मा गुलेरी की कहानी पर 'उसने कहा था', आचार्य चतुरसेन के उपन्यास पर 'धर्मपुत्र', भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास पर 'चित्रलेखा', फणीश्वरनाथ रेणु की प्रसिद्ध कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर 'तीसरी कसम'।

नवसिनेमा आन्दोलन की शुरुआत 1969 में हुई और फिर कुछ महत्त्वपूर्ण फिल्में जिसमें राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मुक्तिबोध, रमेश बक्शी आदि रचनाकारों की रचनाओं पर आधारित फिल्में प्रमुख रही। मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'त्यागपत्र' पर फिल्म का निर्माण हुआ। राजेंद्र यादव के 'सारा आकाश' की व्यावसायिक सफलता के पश्चात बासु चटर्जी ने मन्नू भंडारी की प्रसिद्ध कहानी 'यही सच है' पर 'रजनीगंधा' नामक एक और कलात्मक फिल्म बनाई। यह नवसिनेमा आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। रमेश बक्शी के लघु उपन्यास 'अठारह सूरज के पौधे' पर 'सत्ताईस डाउन' (वाराणसी एक्सप्रेस) 1974 में रिलीज हुई थी। इस फिल्म को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सराहा गया था। मोहन राकेश की कहानी 'उसकी रोटी' पर फिल्म का निर्माण मणि कौल के निर्देशन में हुआ। जब यह फिल्म रिलीज हुई तो इसने सबको स्तब्ध कर दिया। जहाँ तक साहित्यिक कृतियों के फिल्मांतरण का प्रश्न है इस बारे में मणिकौल का मानना है कि, 'साहित्यिक कृति को उसके मूल रुप में प्रस्तुत करते हुए भी फिल्म को पर्याप्त रुप से कलात्मक बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए रामायण की कहानी को सब जानते है; फिर उसमें आनंद क्यों आता है? आनंद का कारण उसका कलात्मक प्रस्तुतीकरण है। इसी प्रकार किसी साहित्यिक कृति को भी कलात्मक रुप देकर उसके सौंदर्य और प्रभावोत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। मणि कौल ने 'उसकी रोटी', 'आषाढ़ का एक दिन', 'दुविधा', 'सतह से उठता आदमी' और 'नौकर की कमीज़' जैसी फिल्मों में अपने इन्हीं मौलिक विचारों को मूर्त रुप देने का प्रयास किया हैं।'[1]

कमलेश्वर की कहानी 'तलाश' पर 'फिर भी' तथा उन्हीं के उपन्यास पर गुलज़ार ने 'आँधी' फिल्म का निर्माण किया। कमलेश्वर की कहानी पर 'बदनाम बस्ती', निर्मल वर्मा की कहानी पर 'माया दर्पण', गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की कृति पर 'सतह से उठता आदमी', मोहन राकेश के नाटक पर 'आषाढ़ का एक दिन' जैसी फिल्में भी हमारे सम्मुख आती है। साहित्यिक कृतियों का सर्वाधिक फिल्मांतरण नवसिनेमा आन्दोलन के अन्तर्गत ही हुआ और नवसिनेमा आन्दोलन के तहत निर्देशकों को फिल्म वित्त निगम ने व्यावसायिक लीक से हटकर फिल्में बनाने पर वित्तीय सहायता देने की घोषणा की चूँकि सरकार को अहसास हो चुका था कि राष्ट्रीय सिनेमा को जीवित रखने के लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है। साहित्यिक कृतियों के फिल्मांतरण में पूना फिल्म इंस्टीट्यूट से पढ़कर निकले ग्रेजुएटों का भी योगदान रहा। उन्होंने व्यावसायिक हिन्दी सिनेमा का विरोध किया। नवसिनेमा आन्दोलन का सर्वाधिक लाभ हिन्दी साहित्य को हुआ। नवसिनेमा आन्दोलन से पहले बनी फिल्मों में प्रेमचंद के कथा साहित्य पर बनी फिल्में सफल रही तथा 'तीसरी कसम' जैसी फिल्म सफल फिल्मांतरण का उत्कृष्ट उदाहरण है।

'संगम' की अद्भुत सफलता ने राजकपूर में गहन आत्मविश्वास भर दिया और उन्होंने एक साथ चार फिल्मों के निर्माण की घोषणा की - 'मेरा नाम जोकर', 'अजन्ता', 'मैं और मेरा दोस्त' और 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' । पर जब 1965 में राजकपूर ने 'मेरा नाम जोकर' का निर्माण आरंभ किया तब संभवत: उन्होंने भी यह कल्पना नहीं की होगी कि इस फिल्म का एक भाग बनाने में छह वर्षों का समय लग जाएगा। इन छह वर्षों के अंतराल में राज कपूर द्वारा अभिनीत कई फिल्में प्रदर्शित हुई, जिनमें सन् 1966 में प्रदर्शित कवि शैलेन्द्र की 'तीसरी कसम' भी शामिल हैं। यह वह फिल्म है जिसमें राजकपूर ने अपने जीवन की सर्वोत्कृष्ट भूमिका अदा की। यही नहीं 'तीसरी कसम' वह फिल्म है जिसने हिंदी साहित्य की एक अत्यंत मार्मिक कृति को सैल्यूलाइड पर पूरी सार्थकता से उतारा। 'तीसरी कसम' फिल्म नहीं, सैल्यूलाइड पर लिखी कविता थी।'[2]

'तीसरी कसम' में राज कपूर ने हीरामन तथा वहीदा रहमान ने हीराबाई की उत्कृष्ट भूमिका अदा की है। निर्देशक - बासु भट्टाचार्य, कथा व संवाद - फणीश्वरनाथ रेणु, निर्माता - शैलेंद्र, संगीतकार - शंकर जयकिशन, गीतकार - शैलेंद्र, हसरत जयपुरी, गायक - आशा भोंसले, मुकेश, लता मंगेशकर, मुबारक बेगम, सुमन कल्याणपुरकर आदि ने फिल्म को अद्वितीय अंतर्दृष्टि प्रदान की है। इस फिल्म को 1966 में राष्ट्रपति स्वर्ण पदक, 1967 राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार, 1967 में मास्को अन्तर्राष्ट्रीय फिल्मोत्सव में तथा कई अन्य पुरस्कारों द्वारा सम्मानित किया गया।

बैलगाड़ी से अपनी आजीविका चलाने वाला देहाती हीरामन दो प्रतिज्ञा लगातार लेता है, पहली कसम भ्रष्टाचारी, चोरी अर्थात् नेपाल की सीमा पर चोर बाज़ारी का माल अपनी गाड़ी में ढोने के कारण पुलिस द्वारा पकड़े जाने पर अपने बैलों को छुड़ा

कर भागना पड़ता है और कसम खाता है कि अब अपनी गाड़ी पर चोरबाज़ारी का सामान कभी नहीं लादेगा। ग्रामीण अंचल में बाँस से बहुत-सी जीवन उपयोगी वस्तु बनती है। मिट्टी के मकान बनाने के लिए, टोकरी, पंखा आदि के लिए बाँस का प्रयोग आज तक प्रचलित हैं। दूसरी दुर्घटना गाड़ी में लम्बे बाँस ढोते समय हो जाती है और दूसरी कसम खाता है - 'अब कभी अपनी गाड़ी में बाँस नहीं लादेगा' और मुख्य कहानी द्वारा ऐसी परिस्थितियों का निर्माण होता है कि वह तीसरी बार कसम खाने के लिए बाध्य करती हैं। हीरामन ने सर्कस कम्पनी के बाघों को अपनी गाड़ी में ढोकर जो सौ रुपये कमाए थे उससे वह नई टप्पर की गाड़ी बनवा लेता है। बात-बात पर लजाने, शरमाने वाला एक गंवई, गाड़ीवान अब सवारी ढोने का कार्य करता है। आज उसकी गाड़ी में नौटंकी कम्पनी में काम करने वाली हीराबाई है। गाड़ी में चंपा के फूलों की महक और हीरामन को पीठ में होने वाली गुदगुदी, रात का समय में परिस्थितिवश अनायास ही उसे भूत-प्रेत का डर सता रहा है। जंगल में भगवान शिव को प्रसाद चढ़ाने की मन्नत माँगता है। फिर भी महक कम नहीं होती गाड़ी में कौन है? यह प्रश्न उसे बैचेन किये देता है और हीरामन अपनी बैलगाड़ी के पर्दे से अंदर झाँक कर देखता है तो चीखते-चीखते रुक जाता हैं। 'अरे बाप! ई तो परी है! सवारी की आँखे खुल जाती है - कहाँ है परी?' और फिर संवादों का सिलसिला शुरु होता है।

हीराबाई के द्वारा नाम पूछे जाने पर वह अपना नाम हीरामन बताता है। तो हीराबाई कहती है, मैं तो तुम्हें मीता कहूँगी। मेरा नाम भी हीरा है!

यहाँ हीरामन रुढ़िवादी, पारंपरिक मूल्यों के साथ एक बैलगाड़ी चालक है। बिहार के एक छोटे से गाँव का देहाती, एक निश्चल स्वभाव का व्यक्ति तीस कोस का सफर है और इस सफर में हिरामन और हीराबाई के बीच अनाम रिश्ता बन जाता हैं। उसे तो हीराबाई को मेले तक पहुँचाना है। वह नर्तकी है और दूसरी तरफ हीरामन के वह संस्कार है; जहाँ नाचनेवाली को लोग वेश्या के रूप में देखते हैं। हीरामन का मन अपनी संस्कृति में रचा-बसा हैं। किन्तु फिर भी हीरामन प्रभावित है, हीराबाई की सादगी पर, उसके निश्चल स्वभाव पर, उसकी सहजता पर। तो हीराबाई हीरामन की मासूमियत से मंत्रमुग्ध है। उसका वह ज़मीनी चरित्र, उसकी

ज़िंदादिली, निश्चल स्वभाव, अपनापन हिराबाई को प्रभावित करते हैं।

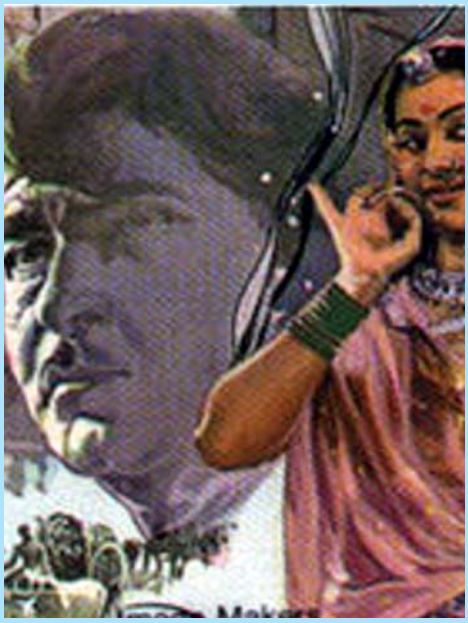

मिथिलांचल का रोमनी चित्रण इस फिल्म के माध्यम से हुआ है। गाँव के नैसर्गिक सौन्दर्य को श्वेत-श्याम फिल्म के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जब नई चीज़ गाँव में आती है तो स्थानीय संस्कृति उसे वैसे अपनाती है, गाँव चाहे उस समय भौतिक दृष्टि से पिछड़े थे, किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न थे। इन सभी बारीकियों पर रेणु तथा शैलेंद्र ने पूरा ध्यान दिया है। फिल्म के केन्द्र में प्रेम है फिर भी फिल्म में प्रेम का कहीं भी ज़िक्र नहीं होता। आँखों से भावनाओं को, उल्लास को, दर्द को व्यक्त करवा लेना निर्देशक की सफलता है। फणीश्वरनाथ रेणु बिहार के पूर्णिया अंचल के रहने वाले थे। पूर्णिया की परंपरा लोकजीवन की सहजता, मधुरता, आंचलिक रीति-रिवाजों से वे वाकिफ थे, बल्कि वे उनमें डूबे हुए थे। वहाँ की लोककथाओं और प्रचलित लोकगीतों को वे गुनते थे, सुनते थे तथा उसी में जीते थे। 'तीसरी कसम' कहानी में पूर्णिया अंचल की विविधता प्रकट हुई है। यह कहानी प्रामाणिक होने के साथ-साथ जीवन की मधुरता से प्रभावित होकर लिखी गई है, जिसमें दो प्रेम करने वालों के बीच अशरीरी और अमांसल प्रेम है। निराला की जूही की कली और पवन के बीच का पवित्र स्पर्शमुक्त, गंधयुक्त प्रेम हीराबाई और हीरामन गाड़ीवान का प्रेम है; जिसमें एक स्वर्गीय ज्योति निवास करती है।[3]

मेले तक के रास्ते की दूरी दोनों प्रेम के भूखे प्राणियों के मन की दूरी को समाप्त करने में सहायक बनती है। हीरामन चालीस साल का है, जिसकी शादी बचपन में हुई थी, गौने के पहले ही दुल्हिन मर गई और हीराबाई अपना घर नहीं बसा पाई। हीराबाई को हीरामन आँख की कनखियों से देखता है, उसकी सवारी मीता हीराबाई की आँखे गुजुर-गुजुर उसको हेर रही हैं। हीरामन के मन में कोई अनजान रागिनी बज उठी। सारी देह सिरसिरा रही है। प्रेम में प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है। भौर में छा जाने वाला कोहरा नदी के किनारे धानके पौधों को छुकर चलनेवाली बयार, गाड़ी में चंपा के फूलों की सुगंध और साथ में मीता बिल्कुल परी की तरह हीरामन जब अपने बैलों को झिड़की देता है तो हीराबाई कहती है, 'मारो मत; धीरे-धीरे चलने दो! जल्दी क्या है!' हीराबाई ने परख लिया, हिरामन सचमुच हीरा है! जिसे सिर्फ़ अपनी गाड़ी और बैलों के सिवाय दुनिया की किसी और बात में विशेषा दिलचस्पी नहीं। भाभी की ज़िद है कि वो हीरामन की शादी कुमारी लड़की से करवाना चाहती है किन्तु वह नहीं चाहता कहता है, 'कौन बलाए मौल लेने जाए। ब्याह करके फिर गाड़ीवान क्या करेगा कोई! और सबकुछ जाए गाड़ीवानी नही छोड़ सकता।'[4]

हीराबाई मेले में लोगों के समक्ष नाचती है। किन्तु हीरामन कोहरा छटते ही गाड़ी में परदा डाल देता है और लोगों के पूछने पर गाड़ी में बिदागी है अर्थात् ससुराल जाती हुई लड़की है कहते हुए हीराबाई को दुनिया की नज़र से बचाने की कोशिश करता है। अपनी मधुर आवाज़ में लोकबोली के गीतों को वह गाता है और हीराबाई उसके गाने की तारीफ़ करती हैं। कजरी नदी के साथ भी एक कथा जुड़ी है - महुआ घटवारन की। वह उसे सुनाता है और नदी के तट पर गाड़ी रोक घाट पर हीराबाई को ले जाता है। किंतु उस घाट पर कुँवारी लड़कियाँ नहीं नहाती ऐसी भी लोक मान्यता है और वह दूसरे घाट पर हीराबाई को भेज देता है। हीराबाई भी उसकी बात मानकर दूसरे छोर पर चली जाती हैं। हीरामन खुश होता है; जब यह पक्का हो जाता है कि वह कुँवारी है। दोनों एक साथ बैठकर खाना खाते हैं। हीराबाई का गाँव की बहू-बेटी की तरह सिर नीचा करके धीरे-धीरे चलना उसे बहुत भाता हैं। और मीता तो उसे अपना गुरु भी मान बैठी है चूँकि कई राग उसने हीरामन के

गीतों से सीख लिये हैं। नननपुर के हाट से वह लोटे में चाय भरकर लाता है। उसे पता है कम्पनी की औरत को घड़ी-घड़ी में चाय लगती है। उसकी इस सोच पर हीराबाई को हँसी आ जाती है। फारबिसगंज आ गया अब सिर्फ़ रात भर मीता उसकी गाड़ी में है। यह सोच कर उसे दु:ख होता है। सुबह हीराबाई कम्पनी के आदमी के साथ चली जाती है। हीरामन के गाँव के दूसरे मित्र नौटंकी देखना चाहते हैं। हीरामन की भी बहुत इच्छा है और जब वह हीराबाई से मिलने जाता है तो हीराबाई सभी मित्रों के टिकट देते हुए कहती है ज़रूर आना। नाचती हीराबाई को देख कर लोग उसके बारे में अपशब्द कहते है; जो कि हीरामन से बर्दाश्त नहीं होते। ज़मींदार विक्रम सिंह की हरकते देखकर वह क्रोधित हो जाता है। उसके लिए तो हीराबाई पवित्रता की मूर्ति हैं। अपना पैसा वह हीराबाई को सँभालने को दे देता है। हीरामन की कपड़े की थैली वह अपने बक्से में बंद कर रख लेती है तो हीराबाई की इस व्यवहार में उसे अपनापन नज़र आता है। हीराबाई के मन की वेदना को समझने वाला हीरामन उसे अपनी बैलगाड़ी में बिठाकर मंदिर ले जाता हैं। तब गाँव के बच्चे गाड़ी के पीछे भागते हुए गीत गाते है - 'लाली लाली डोलिया में, लाली रे दुलहनिया।'

पूरे लोकगीत के शब्द हीराबाई को हीरामन की दुल्हनिया बना देते हैं। किन्तु खुली आँखों से सपना देखने पर सपना सच नहीं हो सकता। वह दाम्पत्य जीवन के सुख के लिए तरस रही हैं। हीरामन को देख उसकी दमित इच्छाएँ जाग उठती हैं। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 'तीसरी कसम' की समीक्षा में लिखते है, 'जहाँ तक प्रेम का संबंध है दोनों का जीवन रेगिस्तान है जीवन में प्रेम का वैसा स्रोत दबा पड़ा है और थोड़ा सा अवसर पाते ही वह कितने वेग से एक-दूसरे की ओर दौड़ पड़ता है - यही इस कहानी की मार्मिक भूमि है।'[5] दोनों ही दाम्पत्य जीवन से वंचित रह गए और एक दूसरे को देखकर दोनों में ही उनकी मृत इच्छाएँ जीवित हो उठती हैं। दोनों का विवाह संभव नहीं। क्योंकि उस समय की सामाजिक स्थिति और हीरामन के संस्कार, ग्रामीण परिवेश कहीं भी अनुकूलता नज़र नहीं आती।

हीराबाई वस्तुस्थिति को समझने लगी है। दोनों का एक-दूसरे के प्रति लगाव बढ़ता जा रहा हैं। किन्तु हीराबाई मानती है कि वह हीरामन के निश्चल प्रेम की हक़दार नहीं है। वह उसे धोखा नहीं देना चाहती। उसके मन में अंतर्द्वंद्व मच जाता है और वह वापस जाने का निर्णय ले लेती है। स्टेशन का वह दृश्य जब वह अपनी निशानी शाल देकर हीरामन के अपने पास रखे रुपये लौटाती हुई बिदा लेती है तो हीरामन का कोमल मन टूट जाता हैं। स्टेशन से गाड़ी चली जाती है। स्टेशन भी खाली हो जाता है और हीरामन का मन भी। तीस मील की दूरी तय करते हुए दोनों के मन एकाकार हो जाते है। किन्तु आज के युवाओं की तरह वह अपने जीवन को समाप्त नहीं करता बल्कि तीसरी कसम खाते हुए अपने दु:ख को हल्का कर लेता है। इस फिल्म में दु:ख को जीवन सापेक्ष प्रस्तुत किया गया हैं। गाँव के एक भोले-भाले नौजवान का जीवन सिर्फ़ तीन कसमें खा लेने पर सरल जाता है।

यह फिल्म हिंदी की पहली प्रामाणिक फिल्म कहला सकती है। फिल्म जीवन की हक़ीकत से बहुत दूर होती है। पर यह फिल्म आज भी मूर्तिमान है, आज भी गाड़ीवान है, आज भी जीवन की सहजता लिए लोक गीत है, कस्बाई परिवेश है, नौटंकी भी है तथा हीराबाई जैसी नर्तकियाँ भी है। फिल्म की सजीवता के लिए बिहार के पूर्णिया अंचल पर दृष्टि डाले तो फणीश्वरनाथ रेणु के पात्र हीरामन तथा हीराबाई हमारे सामने सहज नज़र आ जाते हैं।

शैलेंद्र ने लोकजीवन की गीतों को मिथलांचल की लोकधुनों के द्वारा अपने शब्दों का श्रृंगार कर सजाया है। तेजेंद्र शर्मा शैलेंद्र के लिए लिखते है, 'शैलेंद्र के गीतों में फलसफ़ा है। जिंदगी की परिभाषा है और उसके जरिए जीने का ढंग सीखने का मौका मिलता है। वे कहते है सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है।'[6] सचमुच शैलेंद्र के गीतों में ज़िन्दगी से जूझने का संकेत है, करुणा है तो कई गीत दार्शनिक भावों की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। 'दुनिया बनाने वाले, क्या तेरे मन में समाई, तूने काहे को दुनिया बनाई।' गीत में महुआ के दर्द को अभिव्यक्ति प्रदान की हैं। तब हीरामन हीराबाई से पूछता है,'मन समझती है ना आप?' और इसी मन को समझते हुए भी हीरामन और हीराबाई अपने-अपने रास्ते चल देते हैं। इस फिल्म के जरिए शैलेंद्र ने राज कपूर की भावनाओं को शब्द दिए हैं। राजकपूर ने अपने अनन्य सहयोगी की फिल्म में उतनी ही तन्मयता के साथ काम किया, किसी पारिश्रमिक की अपेक्षा किए बगैर। शैलेंद्र ने लिखा था की वे राजकपूर के पास 'तीसरी कसम' की कहानी सुनाने पहुँचे तो कहानी सुनकर उन्होंने बड़े उत्साहपूर्वक काम करना स्वीकार कर लिया। पर तुरंत गंभीरतापूर्वक बोले 'मेरा पारिश्रमिक एडवांस देना होगा।' शैलेंद्र को ऐसी उम्मीद नहीं थी कि राजकपूर ज़िन्दगी भर की दोस्ती का यह बदला देंगे। शैलेंद्र का मरझाया हुआ चेहरा देखकर राजकपूर ने मुस्कुराते हुए कहा, 'निकालो एक रुपया, मेरा पारिश्रमिक! पूरा एडवांस।' शैलेंद्र राजकपूर की इस याराना मस्ती से परिचित तो थे लेकिन एक निर्माता के रूप में बड़े व्यावसायिक सूझबूझ वाले भी चक्कर खा जाते हैं, फिर शैलेंद्र तो फिल्म-निर्माता बनने के लिए सर्वथा अयोग्य थे। राजकपूर ने एक अच्छे और सच्चे मित्र की हैसियत से शैलेंद्र की फिल्म को असफलता के खतरों से आगाह भी किया।[7] शैलेंद्र को जीवन में कभी-भी संपत्ति और यश की कामना नहीं रही। आपने यह फिल्म आत्मसन्तुष्टि के सुख की अभिलाषा को लेकर पूरी की। और इस बात का उन्हें दु:ख था कि इस फिल्म को वितरक नहीं मिल पा रहे थे। और जब यह फिल्म रिलीज हुई तो कब आई और कब चली गई यह मालूम ही न पड़ा। किन्तु इस सौ साल के युवा सिनेमा जीवन की एक महत्त्वपूर्ण फिल्म के रूप में 'तीसरी कसम' का नाम अमिट एवं अमर हैं। क्योंकि 'तीसरी कसम' शैलेंद्र की आत्मा है।

संदर्भ :

1.हिन्दी साहित्य और सिनेमा, विवेक दुबे, पृ.क्र. 136

2.तीसरी कसम के शिल्पकार शैलेंद्र, प्रह्लाद अग्रवाल, कक्षा दसवीं, पृ.क्र. 91

3.अनभै, मीडिया विशेषांक, 2006, हिन्दी फिल्में और कथा-साहित्य, अरुण कुमार मिश्र, पृ.क्र. 125

4.फिल्म तीसरी कसम के संवाद, निर्माता शैलेंद्र

5.हिन्दी साहित्य और सिनेमा, विवेक दुबे, पृ.क्र. 76

6.हंस, नबम्बर 2013, तेजेंद्र शर्मा, आम आदमी की पीड़ा का कवि, पृ.क्र. 70

7.तीसरी कसम के शिल्पकार शैलेंद्र, प्रह्लाद अग्रवाल, कक्षा दसवीं, पृ.क्र. 92

❐

SMCC
SCHOLARSHIP

Canadian University
Scholarship Opportunity

Canadian University Scholarship Opportunity

Yes, CTA is to direct to the website (www.smccscholarship.ca). If there is room, you could add our social media properties (www.facebook.com/smccscholarship and www.twitter.com/smccscholarship), although if the audience is older, then the twitter link is probably not useful.

The SMCC Scholarship is a program to help South Asian students based out of Ontario attending Canadian universities with expenses related to their education. We believe that education is one of the most important things you can invest in. We believe that there are talented, motivated young South Asians out there that have the potential to change the world. We believe that with the rising cost of education, some of those young people could use a bit of help.

We have multiple scholarships up to $10,000 in value.

So what are we looking for? One of our benefactors summarized it perfectly: need, ability, desire.

Let's start with **desire**. We are looking for someone who is ambitious. Someone who wants to change the world. Someone who has outrageous goals that they are willing to relentlessly pursue.

Ability. We are looking for students who have what it takes. While everyone has it in them to do great things, we are looking for those who have demonstrated this already through academic excellence. We're also looking for leaders who have the ability to make great things happen, be it in sports, clubs, volunteer jobs, etc.

Last is **need.** Some of us are born a little luckier in that we have access to the resources we need to finance our education. Some of us however, could use a helping hand. Our benefactors are South Asian - many of whom immigrated to Canada as young people themselves. They worked hard and they truly understand what a difference a little bit of help at the right time can make.

So now what? Well, we aren't asking for money. We are asking for help finding deserving students and convincing them to apply. In Canada, millions of dollars of scholarship money go unclaimed every year. We want to give away every last dime we have. Please like us on Facebook, follow us on Twitter and ask your friends to do the same. We need to get the word out and can't do it alone.

We have multiple scholarships up to $10,000 in value.

The deadline of April 7, 2014 is approaching soon, so please visit us www.smccscholarship.ca for more details on how you can apply. Education is a gift that is priceless, and the more we invest in our children's future, the more promising our world will be.

नवगीत

हिन्दी की सुपरिचित कवयित्री शशि पाधा के गीत छायावादी युग में ले जाते हैं। 'पहली किरण', 'मानस मंथन', 'अनंत की ओर'- कविता संग्रह हैं। पति मिलिट्री में थे अत: संस्मरण मिलिट्री जीवन की झलकियाँ प्रस्तुत करते हैं। संस्मरणों की पुस्तक प्रकाशन के लिए तैयार है। वेब पत्रिकाओं और दैनिक समाचार पत्रों में रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। अमेरिका में रहती हैं और मुक्त लेखन में संलग्न हैं।

10804, Sunset Hills Rd,
Reston, VA 20190
shashipadha@gmail.com

जल रहा अलाव

जल रहा अलाव आज
लोग भी होंगे वहीं
मन की पीर -भटकनें
झोंकते होंगे वहीं

कहीं कोई सुना रहा
विषाद की व्यथा कथा
कोई काँधे हाथ धर
निभा रहा चिर प्रथा
उलझनों की गाँठ सब
खोलते होंगे वहीं

गगन में जो चाँद था
कल जरा घट जाएगा
कुछ दिनों की बात है
आएगा, मुस्काएगा
एक भी तारा दिखे तो
और भी होंगे वहीं।

दिवस भर की विषमता
ओढ़ कोई सोता नहीं
अश्रुओं का भार कोई
रात भर ढोता नहीं
पलक धीर हो बँधा
स्वप्न भी होंगे वही।
0

न थीं कोई ईंट दीवारें

न थी कोई ईंट दीवारें
न थी कोई सीमा रेखा
रिश्तों के आँगन में फिर क्यों
मौन का विस्तार देखा

जाने कब से जमी पड़ी थी
कुंठाओं की धूल -परत
किसने घर की ताक पे रख दी
शंकाओं की लिखत -पढ़त
देहरी द्वारे प्रहरी बैठा
कोहरे का प्रसार देखा

बँधी रह गईं मन की गाँठें
उलझन कोई सुलझ न पाई
बन्द किवाड़ों की झिरियों से
समाधानों की धूप न आई
सुख की डोली सजी खड़ी थी
मूक खड़ा कहार देखा

दो पग चलना मुश्किल न था
मीलों की तो बात नहीं थी
मन शतरंजें खेल रहा था
जीत नहीं थी, मात नहीं थी
लाँघा न प्रश्नों का पर्वत
उत्तर गिरा कगार देखा

मंजिल रस्ता एक ही साधा
दोराहा कब आन जुड़ा
कुछ पल ठिठके बीच डगर पे
हाथ छोड़ कब कौन मुड़ा
सन्नाटों के कोलाहल में
शब्द बड़ा लाचार देखा
कोहरे का अम्बार देखा
0

कैसी बात हो गई

दहकने लगा है नभ
धरा भी दग्ध हो गई
कैसी बात हो गई ?

बादलों के दल किसी
दूर देस जा बसे
राजसी पोशाक में
सूर्य खिल-खिल हँसे
षोडशी धूप आज
राज रानी हो गई
कैसी बात हो गई ?

दिन लंबे हो गए
ताड़ के पेड़ से
गिर पड़ी है ऊँघती
हवा भी गर्म मेंड़ से
गुनगुने ताल में
रात मुँह धो गई
कैसी बात हो गई ?

झिलमिलाने लगीं
झील में परछाइयाँ
पनघटों की भीड़ में
गीत, गलबाहियाँ
पसीजती चाँदनी
ओस कण बो गई
कैसी बात हो गई ?

छाँव का मोल आज
चौगुणा हो गया
धूप के हाट में
चैन कहीं खो गया
जेठ की दुपहरी
आँख मूँद सो गई
कैसी बात हो गई ?
❐

अनीता शर्मा की कविताएँ

हिन्दी की युवा कहानीकार, कवयित्री अनीता शर्मा कुछ समय के अंतराल के बाद फिर से लेखन में सक्रिय हुई हैं। कई पुस्तकें प्रकाशन के लिए तैयार है। विभिन्न पत्र- पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। चीन में बसेरा है और मुक्त लेखन में व्यस्त हैं।

P.R. CHINA, SHANGHAI, PU DONG NEW AREA, 1188 YANG GAO (N) ROAD, YANG MING GARDEN, BUILDING NO. 1, ROOM NO. 1511
ZIP-200135
anitasmexico@hotmail.com

अंतर का भाव

सिर्फ पत्थरों का शहर,
और एक अकेला दिल !
जिधर भी जाएगा, पत्थरों से टकराएगा।
चोटें खा-खा कर यूँ ही लहू अपना बहाएगा।
अरे पागल !
ज़रा सोच, पत्थर तो पत्थर ही होते हैं।
इन्हें गढ़ कर तू शक्लें ही दे सकता है।
मगर इनकी साँसे कैसे चलाएगा ?
न भाव कोई भर पाएगा।
क्या बिन भाव और साँस की शक्लें
इंसान हो सकती हैं ?
चल भाग उस शहर में,
जहाँ इंसान नहीं, न सही।
मिल जाएँ फूल पत्ते ही।
जो साँस तो लेते हैं, और.....
पवन और आँधी को पहचानने वाला जिगर भी रखते हैं।
मंद पवन से कभी मुस्कुराते हैं,
तो आँधी से टूटकर बिखर भी जाते हैं।
अंतर का भाव तो रखते हैं।
पत्थरों की तरह हर स्थिति में वहीं पड़े नहीं रह जाते.....
स्पर्श सदा पीड़ादायक!
चाहे कोई चेहरा पाकर भगवान् भी कहलाते हैं द्य
0

ब्लेड

कइओं की ज़िन्दगी होती है
एक ब्लेड !
जो भी संपर्क में आए,
उसी को काट जाती है,
लहू बहाती है,और.
खुद रक्ताभ होती है।
वह किसी के कटने पर,
दु:खी क्यों नहीं होती ?
अपनी लालिमा पर
क्यों इतना इतराती है ?
क्यों नहीं सोचती,
के खुद ब्लेड की ज़िन्दगी,
कितना चल पाती है ?
किसी सख्त हाथ में आने पर
कैसे टूट जाती है..।
0

वो हँसी

मुझे याद आती है वो हँसी
जो खिलखिलाने गुदगुदाने के लिये
बहानों की मोहताज नहीं थी।
कभी भी कहीं भी झनझनाती हुई आती
और रोम रोम में आनंद भर जाती।
पर जाने क्या हुआ उसे
क्यों और कैसे रूठी,
अब मैंने सौ-सौ उपाए कर रखे हैं,
उसके लिए दुनिया भर के सामान भर रखे हैं,
वह आती ही नहीं.
कभी आती भी है तो सूरज की एक किरण की तरह
मंद सी और बेआवाज़
एक झलक दिखलाके वापिस लौट जाती है।
0

टूटन

ऐसे तो ना थे मेरे सपने अपने
जाने कैसे टूटे सपने छूटे अपने
सुना था अक्सर सपने टूटा करते हैं
कहाँ पता था अपने भी छूटा करते हैं
यह टूटने और छूटने का क्रम
शायद रोज़ ही चलता होगा
फिर इस टूटन की पीड़ा
असह्य तो होती ही है ना।
❐

RBC Dominion Securities

Tel : (905) 764-3582
Fax : (905) 764-7324
1800-268-6959

Professional Wealth Management Since

Hira Joshi, CFP
Vice President & Investment Advisor

RBC Dominion Securities Inc.
260 East Beaver Creek Road
Suite 500
Richmond Hill,Ontario L4B 3M3
Hira.Joshi@rbc.com

विकेश निझावन की कविताएँ

प्रतिष्ठित कहानीकार विकेश निझावन की कहानियाँ देश की लगभग सभी पत्र -पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। दस कहानी संग्रह, चार कविता संग्रह, दो उपन्यास, एक लघुकथा संग्रह तथा कुछ बाल पुस्तकें प्रकाशित। कहानी संग्रह 'अब दिन नहीं निकलेगा' एवं कविता संग्रह 'एक टुकड़ा आकाश' हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत। साहित्यिक पत्रिका 'पुष्पगंधा' के संपादक।
557 B,
Civil Lines TII Oppsite Bus Stop,
Ambala City-134003
Haryana. India
vikeshnijhawan@rediffmail.com

ये बच्चे

बच्चों को
सम्भाल कर रखिए
जब तक
ये बच्चे हैं
तब तक अपने हैं।
बड़े होते ही
ये बिखर जाते हैं।
छूट जाते हैं
माँ-बाप से
जो
अपने बच्चों पर
नज़र रखते है।
0

उसका दर्द

सूखे पत्ते हो तो
आवाज़ करते हैं
कहते हैं अपना दर्द
सुनाते हैं अपनी व्यथा..
लेकिन कोई किसी का दर्द
नहीं सुनना चाहता।
पाँव तले रौंद दिया जाता है..
मरे हुए पत्तों को भी
बुहार कर
फेंक दिया जाता है उन्हें
किसी कनस्टर के बीच
या फिर दबा दिया जाता है
ज़मीन के नीचे
नहीं तो फिर
जला ही दिया जाता है।
0

हाथ

हाथ राम है
जो देते हैं
हाथ रावण भी हैं
जो सब छीन लेते हैं।
हाथ जब छोटे थे
इनमें पूरा भविष्य
समाया हुआ था.....
ज्यों-ज्यों हाथ
बड़े होते गए
इनमें से सब कुछ
फिसलता चला गया....
0

वक्त के तराज़ू में

हम जो कहते हैं
वही लौटेगा
ब्रह्माण्ड से होकर.....
हम जो करते हैं
वैसा ही मिलेगा
इस सृष्टि से
पार जाकर.....
व्यक्ति अपना आप
स्वयं ही चुनता है....
वक्त के तराज़ू में
सब तुलता है।
0

दु:ख

मैंने दु:ख को
पत्थर के साथ बाँध
पानी में फेंक दिया।
अजीब बात है
दु:ख फिर भी तैरता रहा
सुख न जाने कहाँ डूब गया!
❐

दीपक मशाल की कविताएँ

बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी से जैव-प्रौद्योगिकी में परास्नातक एवं क्वींस विश्वविद्यालय, बेलफास्ट (यूनाइटेड किंगडम) से उच्चतर शोध शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात वर्तमान में फ्रांस के पेरिस शहर में हैं। लघुकथा, कविता, कहानी, व्यंग्य, अनुवाद तथा आलेख सहित हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में लेखन और रचनाओं का भारत एवं विश्व की सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं एवं नेट पत्रिकाओं में प्रकाशन। 'ब्रेवहार्टस् ऑफ़ इंडिया' पुस्तक का हिंदी में अनुवाद। कविता संग्रह 'अनुभूतियाँ' प्रकाशित कृति। 2012 में अक्षरम, प्रवासी दुनिया द्वारा आपको युवा प्रवासी रचनाकार सम्मान एवं 2009 में हिन्दयुग्म द्वारा अगस्त माह का यूनिकवि पुरस्कार समेत इक्का-दुक्का सम्मान।

41 Quai de la Loire
Apt- 446 Paris 75019, France
mashal.com@gmail.com

ये मानोगे तुम एक उम्र के बाद

ये मानोगे तुम एक उम्र के बाद

ये दुनिया वो नहीं थी
जो देखी तुमने
बिन सूरज वाली
आँखों की खुद की रौशनी में

ये दुनिया वो नहीं थी
जो सोची तुमने देकर के जोर दिल पे
ये मानोगे तुम एक उम्र के बाद

अगर नहीं है ये
शोर से, उमस और पसीने की बू से भरी
रेलगाड़ी
तो आसमानों के
बिजनेस क्लास का केबिन भी नहीं
ये मानोगे तुम एक उम्र के बाद

तुलसी, ताड़
कभी तेंदू पत्तों के बीच से
हौले से कभी खड़खड़ाकर
गुजरती हवा जैसा साया ये
आम, चन्दन, नीम
या सोंधी मिट्टी में सिमटता है
ये मानोगे तुम एक उम्र के बाद

ये मानोगे तुम एक उम्र के बाद
ये धुआँ जो हिल सकता है
हिला नहीं सकता
ज्यों फूल खिलता है
खिला नहीं सकता
इतना कमज़ोर भी नहीं
ख्वाब देखे चाँद के
और चाँद पा न सके
उतना मजबूर भी नहीं

मगर मूँद लेता है आँखें
जब सहेजता है सूरज कल के लिए
रेत सितारों की बिखेरता है
और सितारों को झाड़ देता है
फूँक से अपनी
फिर धरता है सूरज उसी चबूतरे पर

बेवजह तैरता, रेंगता, दौड़ता, फिसलता
नाचता- कूदता, चलता
और उड़ता बेवजह साया है दुनिया
ये गाता है बेवजह, खाता है बेवजह
जाने क्या-क्या और कैसे कराता है
बेवजह
ये मानोगे तुम एक उम्र के बाद।।
0

मृत्यु

मृत्यु सच में एक उत्सव है
'उत्सव'
जो जीभ चिढ़ाता है।

दोनों अंगूठों को
दोनों कनपटियों पर रख
अँगुलियों को तेज़ी से नचाते हुए
जीवन भर के
सुनार की हथौड़ियों जैसे
सैकड़ों अमर दुखों पर
लुहार की एक चोट बन
अंतिम उपहास उड़ाता है।

कुछ इस तरह कि आत्मा भी
हँसकर देह को त्याग देती है
उत्सव में डूबकर
दर्द की जड़ को दुत्कार देती है।
0

कयामत

क़यामत पूरी नहीं आती
फुटकर-फुटकर आती है
ज़िंदगी के कुकून को
इत्मिनान के साथ
नाज़ुक कीड़े में
तब्दील होते देखने में
मज़ा आता है उसे
क़यामत
सिर्फ देखती है लगातार
टुकुर-टुकुर
बिना अतिरिक्त प्रयास के
जानती है

ये खुद ही खा जाएँगे खुद को
इसलिए अलसा जाती है
क्यों बेवजह हिलाए हाथ-पैर..
0

मैं करता हूँ समर्थन

मैं करता हूँ समर्थन
बारूदों का
बंदूकों का
खड्गों का
खंजरों का

मैं करता हूँ समर्थन
सलीब की हर कील का
फाँसी के फंदों का
ज़हर के रंगों का
अब तक की जंगों का सबसे बड़ी जंगों का

मैं करता हूँ समर्थन
हर अत्याचार का
दुर्बल की छाती पर
मुस्टंडों के वार का
सत्य की हार का

हाँ करता हूँ समर्थन
भ्रष्ट आचरण का
ईमान के मर्दन का
इबादतगाहों में बम का
तानाशाहों के दमखम का

मैं अँधेरा हूँ
रौशनी का बलात्कार करने निकला हूँ
हर रोज़ अपने दामन में
इनके पापों को छिपाने से उकताकर
एक जात के विनाश का
सत्कार करने निकला हूँ
तथाकथित प्रगति का प्रतिकार करने निकला हूँ।
❐

भूमिका द्विवेदी की कविता

करीब एक वर्ष तक भारतीय ज्ञानपीठ में सांस्कृतिक सलाहकार के रूप में कार्य किया। कई पत्र पत्रिकाओं में प्रमुखता से साक्षात्कार कहानियाँ कविताएँ प्रकाशित। The Last Truth in English, प्रकाशित पुस्तक है। दिल्ली विश्वविद्यालय से M.Phil विद्यार्थी हैं और स्वयं का मुक्त लेखन चिंतन करते हुए डाक्यूमेंट्री फिल्म निर्माण में संलग्न हैं।

वो मर चुका है

वो मर चुका है
मैंने कहा ना, वो मर चुका है ..
इंसान का वाज़िब हिस्सा था ना,
इसलिए ही तो मर गया ..
इंसानियत से राबता न होता तो जीता रहता
इन्हीं हाड़ - माँस के लोथड़ों की तरह
कभी सड़कों - चौबारों पर,
कभी सरकारी भवनों पर,
कभी मॉलों पर चक्कर लगाता फिरता
केबिन-केबिन झाँकता,
बनावटी हँसी में मुचियारता
'गुड मॉर्निंग' 'गुड इवनिंग' करता
रामलीला मैदान में ही ही करता
कैमरे के सामने आने की
पुरजोर कोशिश करता
इंडिया-गेट पर भेलपुरी खाता
चौपाटी पर बरमूडा पहन कर उछलता
कभी सरकार को गाली देता,
कभी वर्ल्ड-कप जीतने का जश्न मनाता
नज़रे चुराता तो कभी नज़रे बचाता, अपने आप से।
गरीब बुढ़िया को,
गाड़ी पोंछने वालो को,
रेडलाइट पर रुकने वाले छोटे-छोटे बच्चो को
तीखी-हिकारत भरी नज़रे दिखाता।
चीथड़ों में लिपटे जवान जिस्मों पर
नज़रे गड़ाता, ललचाता ..
अपनी गवई सादी बीवी को जींस पहनाता
सोते - सोते क्रॉसिंग वाली का आगे-पीछे सोचता
चोर बाज़ार से सस्ते सेल के कपड़े
पहने शेखी बघारता ..
लटकी हुई खाल पर मसाज़ कराता
कभी सीपी, कभी बांद्रा में उचकता-फिरता
फ्लाइटस की टाइमिंग पूछा करता
दिखता - दिखाता, ज़मीन - ग़र्म गोश्त सूँघता
कितने चेहरों को बार बार बदलता
खुद सबसे बड़ा होने पर भी,
सभी को उल्लू बनाने की जुगत भिड़ाता
लेकिन .. लेकिन ... लेकिन
वो तो मर चुका है
'ज़मीर' नाम का जो अस्ल तत्व था,
वो मर चुका है
वो अब नहीं रहा, गुज़र गया
वो समाप्त हो गया है
'शर्म-लिहाज' की 'चिता' सजी थी,
उस में फूँक दिया गया उसे ..
'अंतिम-यात्रा' में 'ईनाम' भी
साथ चला था उसके
वही शमशान घाट पर
उसने मुखाग्नि से ठीक पहले
'मटके' की तरह दम तोड़ दिया
जन्मों का साथ जो था, वो निभा दिया उसने ..
'वफा' - 'शराफत' - 'नेकनीयती'
- 'उसूल' -'वादे'
सब चिता में एक एक कर
'लकड़ी' से लगाए गए थे ...
क्रियाकर्म में कोई कमी नहीं रखी गई
बड़ी संख्या में लोगों ने हिस्सा भी लिया
देखा किए देर तक दूर तक अपलक
फूल जो चुनने थे ...
❐

पुष्पिता अवस्थी की कविताएँ

पुष्पिता अवस्थी की अब तक लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। 'शब्द बनकर रहतीं हैं ऋतुएँ', 'अक्षत', 'ईश्वराशीष', 'हृदय की हथेली' तथा 'तुम हो मुझ में' चर्चित काव्य-संकलन। 'अंतरराष्ट्रीय अज्ञेय साहित्य सम्मान' 'राष्ट्रीय हिन्दी सेवा अवार्ड', 'अंतरराष्ट्रीय कविता सम्मान' वातायन काव्य पुरस्कार से सम्मानित।
Director Hindi UniverseFoundation
Winterkoning 28, 1722 CB Zuid
Scharwoude, Netherlands.
pushpita.awasthi@bkkvastgoed.nl

शब्द गर्भ हैं

संवेदनाएँ
सीती हैं -सम्बन्ध,
शब्दों में।
अनुभूतियाँ
बदल जाती हैं-
रिश्तों में।
शब्द
जीने लगते हैं -हमें
हम जीने लगते हैं-शब्दों में।
सब कुछ
आकार लेने लगता है-
भीतर
कि लगता है-
शब्द ही गर्भ हैं
जन्म लेते हैं हम- जहाँ
मनुष्य के रूप में
रिश्तों की पुकार में
सम्बन्धों के स्रोत में।
संवेदनाएँ
सीती हैं -सम्बन्ध,
शब्दों में।
0

लिखावट

तुम्हारी लिखावट
याद आती है...
तुम्हारे चेहरे की तरह
उसमें तुम
तुममें वह
दिखाई देती रही है अब तक।
तुम्हारे नहीं आने पर
पत्र आते थे तुम्हारे
प्रतिनिधि होकर
पूरते थे मुझे
आर्द्र अपनेपन से।
आँखें पोंछती रही हैं...
अपने आँसू
तुम्हारे शब्दों की हथेली से।
तुम्हें नहीं मालूम
तुम्हारी लिखावट
उतरती रही है -मुझमें
जैसे-
आँखों से
उतारते हुए मुझमें
अवतार लेता रहा है
तुम्हारा प्रणय
हम दोनों को भरने के लिए
एक दूसरे से-एक दूजे के लिए।
0

दूरियों- बीच

रात और दिन की
दूरियों- बीच
अंतरिक्ष की अरगनी में
यात्रा करते हैं...
मेरे-तुम्हारे शब्द
विश्वास और अपनेपन के लिए।
अपनी ही धुरी पर
पृथ्वी की तरह
घूमते रहते हैं -हम।
सूर्य और चन्द्र की तरह
परिक्रमा करते हैं-शब्द
रात और दिन की
दूरियों- बीच।।
0

ध्वनि की चूड़ियाँ

ऋतुएँ
उतरती हैं....
धरती के भीतर
बीज के अंदर
वृक्ष की शाखों पर
फुनगी में
वैसे ही... तुम।
धड़कनें पहनती हैं
तुम्हारे नाम की ध्वनि की चूड़ियाँ
जो सन्नाटे में खनक उठती हैं
शुभ लगन की तरह
कि सूर्य की चमक भी
चुनती है-भाषा
तुम्हारे शब्दों की अन्तरंग अर्थ छवियों से।।
❐

हाइकु

डॉ. कुँवर दिनेश सिंह

आया है मीत
कली का मन मोहे
भ्रमर गीत।

०

वसन्त छवि
गीत गुन रहे हैं
चंचर कवि।

०

धूप-बारिश
आए हैं एक साथ
होगी साज़िश।

०

सूर्य को ढाँपे
एक मोटा बादल
खुद भी काँपे।

०

छाया कोहरा
शहरी सड़कों पे
सहमा ज़रा।

०

मेघों का नाद
हृदय को बींधती
प्रिय की याद।

०

मन अधीर
दर दर भटके
मौन समीर।

०

भोर समय
पर्वत को माँड़ता
सौर वलय।

०

अँधेरा बीता
रात को हराकर
सूरज जीता।

१०

गाहे- बगाहे
सूरज से मिलना
चंदा भी चाहे।

❐

पुष्पा मेहरा

सितारे जड़ी
साड़ी-रातरानी की
मन-चुराती।

०

आई चाँदनी
छोड़ चाँद का घर
धरा से मिली।

०

मंद - मुस्कान
बिखेरती कलियाँ
धूप पे हँसी।

०

करो विश्वास
है भोर, साँझ बाद
न हो उदास।

०

पढ़ा न मन
पढ़ गये नयन
भाव प्रेम के।

०

काँटों का ताज
सच्चाई ने पहना
तीर सा चुभा।

०

तन-थाल में
मन- पखेरू लिये
पूजा के तृण।

०

काँटे भुला के
हरे पत्तों से झाँके
रक्त - गुलाब।

०

बढ़ती गयी
फैल कर आग सी
बात ज़रा सी।

०

स्वप्न जो देखे
सच तुमने किये
यही है सच।

❐

ऋता शेखर 'मधु'

अधीर मन
प्रभु के चरणों में
पाता है धीर।

०

फूलों को चुना
काँटे खुद ही मिले
भरा आँचल।

०

व्यथा के पीछे
तैयार हो रही है
जीवन कथा।

०

चाँद का धागा
भावना की सलाई
स्वप्न के फन्दे।

०

ख़्वाब की नदी
कश्ती श्रम की चली
मिले किनारे।

०

दुख जो बढ़े
विकल मन मेरा
प्रभु को कहे।

०

छोटी चिड़िया
चहकती घर -घर
बिन भेद के।

०

अश्रु की बाढ़
पलकें बनी बाँध
दर्द गंगोत्री।

०

अश्रु से धुला
हृदय का अम्बुज
पावन बना।

०

कैसे मिलेंगे
धरा और गगन
मौन क्षितिज।

❐

नव अंकुर

गीता घिलोरिआ

मास्टर्स इन कंप्यूटर एप्लिकेशन, नेटवर्क इंजीनियर गीता घिलोरिआ की कविताएँ नव अंकुर सी फूटी हैं और प्रवासी दर्द कहती हुई उज्ज्वल भविष्य की ओर देख रही हैं। गीता जी अमेरिका में रहती हैं और ऐक्रेलिक कैनवास पेंटिंग करती हैं।

बदलते परिवेश और आज मैं

ये देशों की दुनिया, ये विदेशों का युग है
यूँ ही सब ये दिन-रात इक हो चले है...
यहाँ चाँद छुपता है, या वो अब सहर देखे
क्यूँ मेरे ये दिन-रात एक हो चले हैं...?

वो छत पे सुबह, चिड़ियों का डेरा
वो सवेरे की ठंडक में नींदों का फेरा
शिवालय से आते, भजनों का मेला
रेडियो पे अनसुने, किस्सों का बसेरा
अब ये ए.सी. यहाँ है, और है फ़ोन का अलॉर्म
क्यूँ मेरे ये दिन-रात एक हो चले हैं...?

वो छोटी उमर में, कई घरों में खाना
वो पींगों के झूले, भाभी का लड्डू ले आना
वो खीर, पूड़ों, दूध- लस्सी का मीठा होना
बारिश की ठंडक में, फाग और तीज मनाना
नीम का पेड़ नहीं है, ना अब वो झूले की रस्सी
क्यूँ मेरे ये दिन-रात एक हो चले हैं...?

वो शहरों की रौनक़, वो हर घर का कोना
वो नए कपड़ों की दुनिया, खिलौनों पे रोना
दोपहरी में चलना, रहट के कुओं में झाँकना
वो साइकिल की रफ़्तार, गिर-गिर के उठना
अब कारों से गिरते, न हवाई सफ़र से टपकते
फिर क्यूँ मेरे ये दिन-रात एक हो चले हैं ...?

वो हिमाचल की दुनिया, बादलों का उतरना
पर्वतों में लुक-छुप, बड़ी-छोटी गाड़ियों का चलना
ना नहाने की ज़िद्द मेरी और माँ का ना भेजना
वो बच्चों का रोना, और स्कूल देरी से पहुँचना
यहाँ हर स्कूल है निकट और बच्चे रोते नहीं
फिर क्यूँ मेरे ये दिन-रात एक हो चले हैं...?

पहाड़ों की लम्बी ठंड,
बातों का काँपना
खिड़कियों से दूर,
धूप के लिए सीटों पे लड़ना
हाथ ऊपर रखने का दंड,
पर पीठ पे मुक्का धरे चलना
कहानी-किताबों का सहारा,
स्पर्धा के मंच तक पहुँचना
अब ये खामोशी है हर दिन,
हर रात चुप्पी का आलम
क्यूँ मेरे ये दिन-रात एक हो चले हैं ...?

वो काली माँ का मंदिर,
जलती ज़मीन पैरों के नीचे
छोटे-छोटे रसोई के बर्तन,
दुकानों की ओर बाँह खींचे
लोग ही लोग चहुँ ओर,
गान-खान सब भीतर भींचे
गंगा सागर की लहरें,
चीरती खुली हवा क्षितिज को सींचें
अब है क्रूस, माया-मय की दुनिया यहाँ,
और है सुरक्षा का घेरा
क्यूँ मेरे ये दिन रात एक हो चले हैं .....???

हावड़ा का वो शोर,
और था ट्रामों का धीरे चलना
गाड़ियाँ ही गाड़ियाँ पीछे -आगे,
और धरती का तपना
पसीनों से तर-ब-तर हर हाथ,
पर रसगुल्लों को चूसना
टीवी, वीडियो, फ़ोन का जादू,
और रात-दिन बिजली का जलना
अब है ये जादू और बढ़-चढ़ गया,
पराये शहर भी हुए अपने
फिर क्यूँ मेरे ये दिन रात एक हो चले हैं ..?

क्यूँ मेरे ये दिन रात एक हो चले हैं .
चाहतें हैं कि ताउम्र बन्दगी करेंगी...
फरेबों में भी अपनी सादगी भरेंगी...
जहाँ हैं कि ज़माने से आगे चल रहा है...
ज़माना हैं कि होड़-दौड़ में पल रहा है ...
मेरी धड़कने हैं कि अब अपनी ही किश्त में हैं..
मासूम चेहरों के ख्वाब भी तो मेरी ज़ीस्त में हैं...
तभी तो मेरे ये दिन रात एक हो चले हैं ...!
0

आज भी .....

दिल के जाने-पहचाने प्रश्नों से ये नाता नहीं टूटता,
आँखों से तुम्हारी मृग-छाया का ये ताँता नहीं छूटता!
कितनी अनकही वेदनाएँ कितनी बार कही तुमसे,
अनबोल स्वर में भाषाएँ उतनी ही बार रची मन से!
मैं रूठ गई तुम से पर ये दिल कभी नहीं रूठता,
सब से हार कर भी तुमसे ये हारना नहीं जानता!
ख़ुद से मुलाकात होती है रोज़,
तो तुमसे भी होगी ही
खुशियों की हर रौनक़ में,
दिल ये सन्नाटा नहीं भूलता.....!
आज भी ..
दिल के जाने-पहचाने प्रश्नों से
ये नाता नहीं टूटता..!!
0

परिवर्तन

मुझ से, ख़ुद से, ख़ुद का
हाल, नहीं कहा जाता अब,
ख़ुद को लुटा के साँसों का
भार, नहीं सहा जाता अब,
जी जल रहा है या कि रक्त?
सार, नहीं रचा जाता अब !
मुकम्मल कर दे हस्ती मेरी
अब तो खुदाया,
वक्त के साथ
और नहीं बहा जाता अब..!

❐

यूनानी कवि ग्योर्गोस सेफ़ेरिस की कविताएँ

अनुवाद: अनिल जनविजय

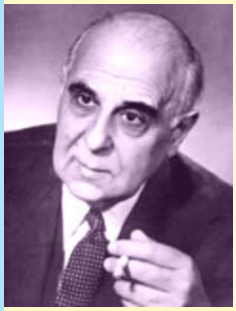

ग्योर्गोस सेफ़ेरिस
जन्म: १३ मार्च १९००
निधन: २० सितम्बर १९७१
जन्म स्थान--उरला, स्मिरना, एशिया माइनर (अब तुर्की में शामिल)
कुछ प्रमुख कृतियाँ- कविताएँ (१९३१), टंकी (१९३२), अदालत का रजिस्टर (१९४४), तीन गुप्त लम्बी कविताएँ (१९६६)
विविध--यूनान की आधुनिक कविता के अग्रज कवि। १९६३ में नोबल पुरस्कार।

aniljanvijay@gmail.com

जूही

चाहे हो सूर्योदय
या हो सूर्यास्त
का पहला आभास।
जूही का फूल
चमकता है ज्योतिर्मय
और उज्ज्वल
जैसे शुभ्र, श्वेत
निर्दोष प्रकाश।

समुद्री गुफ़ाओं में

समुद्री गुफ़ाओं में
प्यास है
प्रेम है
उल्लास है
सीपियों की तरह कठोर है सब
अपनी हथेलियों में थाम सकते हो तुम
जिसे समुद्री गुफ़ाओं में
सारा-सारा दिन
मैं झाँकता रहता हूँ तुम्हारी आँखों में
न तुम मुझे जानती हो
न मैं तुम्हें जानता हूँ।

सिर्फ़ थोड़ा-सा और

सिर्फ़ थोड़ा-सा और
फिर हमें दिखेंगे
बादाम-वृक्ष के बौर
सूरज में चमकता संगमरमर
सागर की तरंगित लहरें
सिर्फ़ थोड़ा-सा और
हमें ऊपर उठना है
पाना है ठौर

सादगी

मैं कुछ और नहीं चाहता
सादे ढंग से कहना
चाहता हूँ बात
सादगी पसन्द हूँ मैं
पर हम
एक साधारण से गीत में भी
भर देते हैं इतना संगीत
वह धसक जाता है
वह डूब जाता है
धीरे-धीरे

❐

बाबुल तुम बगिया के तरुवर

गोपाल सिंह नेपाली

गोपाल सिंह नेपाली (1911 – 1963) हिन्दी एवं नेपाली के प्रसिद्ध कवि थे। उन्होने हिन्दी फिल्मों के लिए गाने भी लिखे। वे एक पत्रकार भी थे जिन्होने रतलाम टाइम्स, चित्रपट, सुधा, एवं योगी नामक चार पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। सन् १९६२ के चीनी आक्रमण के समय उन्होने कई देशभक्तिपूर्ण गीत एवं कविताएँ लिखीं जिनमें 'सावन', 'कल्पना', 'नीलिमा', 'नवीन कल्पना करो' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। गोपाल सिंह नेपाली का जन्म 11 अगस्त, 1911 को बिहार के पश्चिमी चम्पारण के बेतिया में हुआ था। उनका मूल नाम गोपाल बहादुर सिंह है। 17 अप्रैल, 1963 को इनका निधन हो गया था। 1933 में बासठ कविताओं का इनका पहला संग्रह 'उमंग' प्रकाशित हुआ था। 'पंछी' 'रागिनी' 'पंचमी' 'नवीन' और 'हिमालय ने पुकारा' इनके काव्य और गीत संग्रह हैं। उत्तर छायावाद के जिन कवियों ने कविता और गीत को जनता का कंठहार बनाया, गोपाल सिंह 'नेपाली' उनमें अहम थे। बगैर नेपाली के उस दौर की लोकप्रिय कविता का जो प्रतिमान बनेगा, वह अधूरा होगा।

बाबुल तुम बगिया के तरुवर,
हम तरुवर की चिड़ियाँ रे

दाना चुगते उड़ जाएँ हम, पिया मिलन की घड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

आँखों से आँसू निकले तो पीछे तके नहीं मुड़के
घर की कन्या बन का पंछी, फिरें न डाली से उड़के
बाजी हारी हुई त्रिया की
जनम –जनम सौगात पिया की
बाबुल तुम गूंगे नैना, हम आँसू की फुलझड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

हमको सुध न जनम के पहले, अपनी कहाँ अटारी थी
आँख खुली तो नभ के नीचे, हम थे,गोद तुम्हारी थी
ऐसा था वह रैन –बसेरा
जहाँ सांझ भी लगे सवेरा
बाबुल तुम गिरिराज हिमालय, हम झरनों की कड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आयें, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

छितराए नौ लाख सितारे, तेरी नभ की छाया में
मंदिर –मूरत, तीरथ देखे, हमने तेरी काया में
दु:ख में भी हमने सुख देखा
तुमने बस कन्या मुख देखा
बाबुल तुम कुलवंश कमल हो, हम कोमल पंखुड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आयें, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

बचपन के भोलेपन पर जब, छिटके रंग जवानी के
प्यास प्रीति की जागी तो हम, मीन बने बिन पानी के
जनम –जनम के प्यासे नैना
चाहे नहीं कुँवारे रहना
बाबुल ढूँढ़ फिरो तुम हमको, हम ढूँढ़ें बावरिया रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

चढ़ती उमर बढ़ी तो कुल –मर्यादा से जा टकराई
पगड़ी गिरने के दर से, दुनिया जा डोली ले आई
मन रोया, गूँजी शहनाई
नयन बहे, चुनरी पहनाई
पहनाई चुनरी सुहाग की, या डाली हथकड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

मंत्र पढ़े सौ सदी पुराने, रीत निभाई प्रीत नहीं
तन का सौदा कर के भी तो, पाया मन का मीत नहीं
गात फूल सा, काँटे पग में
जग के लिए जिए हम जग में
बाबुल तुम पगड़ी समाज की, हम पथ की कंकरियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

नेह लगा तो नैहर छूटा, पिया मिले बिछुड़ी सखियाँ
प्यार बताकर पीर मिली, तो नीर बनीं फूटी अंखियाँ
हुई चलाकर चाल पुरानी
नई जवानी पानी पानी
चली मनाने चिर वसंत में, ज्यों सावन की झड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आयें, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

देखा जो ससुराल पहुँचकर, तो दुनिया ही न्यारी थी
फूलों –सा था देश हरा, पर काँटों की फुलवारी थी
कहने को सारे अपने थे
पर दिन दुपहर के सपने थे
मिली नाम पर कोमलता के, केवल नरम काँकरिया रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

वेद-शास्त्र थे लिखे पुरुष के, मुश्किल था बचकर जाना
हारा दाँव बचा लेने को, पति को परमेश्वर जाना
दुल्हन बनकर दिया जलाया
दासी बन घर बार चलाया
माँ बनकर ममता बाँटी तो, महल बनी झोंपड़िया रे
उड़ जाएँ तो लौट न आयें, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

मन की सेज सुला प्रियतम को, दीप नयन का मंद किया
छुड़ा जगत से अपने को, सिंदूर बिंदु में बंद किया
जंजीरों में बाँधा तन को
त्याग –राग से साधा मन को
पंछी के उड़ जाने पर ही, खोली नयन किवड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

जनम लिया तो जले पिता –माँ, यौवन खिला ननद –भाभी
ब्याह रचा तो जला मोहल्ला, पुत्र हुआ तो बंध्या भी
जले हृदय के अन्दर नारी,
उस पर बाहर दुनिया सारी
मर जाने पर भी मरघट में, जल – जल उठी लकड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आयें, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

जनम –जनम जग के नखरे पर, सज –धजकर जाएँ वारी
फिर भी समझे गए रात –दिन हम ताड़न के अधिकारी
पहले गए पिया जो हमसे,
अधम बने हम यहाँ अधम से
पहले ही हम चल बसें, तो फिर जग बाटें रेवड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आयें, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

बाबुल तुम बगिया के तरुवर,
हम तरुवर की चिड़ियाँ रे
दाना चुगते उड़ जाएँ हम, पिया मिलन की घड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

❐

आ बैल, मुझे मार...

डॉ. रेनू यादव

रिसर्च फैकल्टी असोसिएट, हिन्दी विभाग
गौतम बुद्ध युनिवर्सिटी, यमुना एक्सप्रेस-वे,
नियर कासना, गौतम बुद्ध नगर,
ग्रेटर नोएडा - २०१ ३१२
renuyadav0584@gmail.com

'जीवन कर लेता है श्रृंगार, सच है ना कुमकुम से', 'सइयाँ नैनों की भाषा समझे ना', 'जिन्दगी कुछ तो बता, आखिर तुझे... कोरा काग़ज रह गया', 'ये रिश्ता क्या कहलाता है' आदि हिन्दी धारावाहिकों के मधुर गाने दर्शकों के ज़ुबान पर होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये गाने आज के फिल्मी गानों की तड़क-भड़क और कनफोडू म्युज़िक की अपेक्षा अधिक सुरीले और भावार्थक हैं। अनेक चैनलों पर दिखाए जा रहे नायिका प्रधान धारावाहिकों की पटकथा भिन्न- भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों पर आधारित होते हैं, जैसे बाल-विवाह, विधवा-विवाह, बेमेल-विवाह, पर्दा-प्रथा, निम्नवर्ग, मध्यमवर्ग, और उच्चवर्ग की समस्याएँ, मध्यमवर्ग और ग्लैमर की दुनिया का संयोग, भूत-पिचाश, धर्म, नैतिकता, थ्रीलर, क्राइम आदि। सबसे अधिक यदि कोई धारावाहिकों के प्रकार प्रसिद्ध हैं तो वे हैं सास, बहू, बेटी और उनका मायावी संसार। जो एक साधारण मध्यवर्गीय परिवार के नाम पर बड़े-बड़े महलों या हवेली में निवास करने वाली, हर रोज़ पार्टी में खुशियाँ मनाने वाली दु:ख की मारी महिलाओं की जीवनगाथा कितनी दयनीय होती है कि उच्चकोटि की किसी डिज़ाइनिंग साड़ी और आभूषण पहने रो-रोकर आँसुओं की नदियाँ बहा देती हैं। वे इतनी बेबस और लाचार होती हैं कि हॉस्पिटल में, किसी की मृत्यु में, किसी के खोने में, रोने में, जागने और सोने में एक ही तरह के वस्त्र अथवा विशिष्ट एवं कुछ कम विशिष्ट तरह की साड़ियाँ, आभूषण एवं मेकअप में लदी फंदी रहती हैं, फिर भी उनके पास आर्थिक अभाव, मुँह पर सुनाई देने वाले ताने और चाहने वालों के षड़यंत्रों का ताँता लगा रहता है। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि एक अकेली नायिक पूरे जीवन, मात्र परिवार का ही नहीं बल्कि आस-पास के लोगों की समस्याओं के निवारण का ठेका लिये बैठी रहती है तथा साथ ही एक खलनायिका विभिन्न तरीकों से षड़यंत्रों का जाल बुनती रहती है। नायिका बार-बार फँसने के बाद भी रो-धोकर परिवार के नाम पर विश्वास और स्नेह दिखाकर 'आ बैल, मुझे मार..' सिद्धांत के तहत स्वयं ही ब्लैकमेल होती है, फिर बाद में रोना रोती है कि मेरे साथ इतना अत्याचार हुआ। धारावाहिकों का आरंभ किसी महत्त्वपूर्ण मुद्दे से होता है, लेकिन समस्त परिवेश के बजाय कहानी में एक नायिका होती है और दूसरी ओर एक खलनायिका। एक विलेन नायिका न भी हो तो घटनानुक्रम में एक के बाद एक खलनायक या खलनायिका और उससे उत्पन्न होने वाले समस्याओं को ज़बरदस्ती घूसेड़कर चमत्कार, जिज्ञासा उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है। नायिका और खलनायिका को पहचानने का सबसे आसान तरीका है उनका परिधान। पारम्परिक भारतीय परिधान धारण करने वाली महिला नायिका होती है और पाश्चात्य परिधान धारण करने वाली महिला खलनायिका। यदि खलनायिका भारतीय परिधान धारण करती भी है तो उसका भयानक मेकअप खलनायिका का आभास करवा ही देता है, यदि उससे भी बच जाए तो कभी न कभी रूढ़िवादी भारतीय महिला अथवा पाश्चात्य प्रभाव का विकृत्त रूप सामने लाकर उसका अंत किया जाता है। अर्थात् फैशन जगत् के अनुसार बाल कटवाना, मेकअप करना, जींस अथवा मिनी स्कर्ट पहनने वाली तथा पूर्णत: आत्मनिर्भर महिलाएँ भारतीय समाज में खलनायिका होती हैं !!

इन सभी का एक मात्र लक्ष्य विवाह दिखाई देता है। चूँकि विवाह जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई है, लेकिन उसी के इर्द-गिर्द कहानी उलझ कर रह जाती है। धर्म, नैतिकता और संस्कारों का ठेका उस नायिका पर ही होता है, चाहे पति कितना ही दुराचारी- अनाचारी क्यों न हो (संदर्भ - डोली अरमानों की, बालिका वधू)। नायिका निरंतर दुराचार को सहते हुए पलकों में आँसू भरकर पूर्ण श्रद्धा के साथ तीज और करवा-चौथ का व्रत तोड़ती है, क्योंकि पतिव्रता नारी की सिद्धि मात्र व्रत रखने और उसे दुनिया के सामने दिखाने में है !(संदर्भ - ससुराल सिमर का, गुस्ताख दिल, इस प्यार को क्या नाम दूँ-२), पारिवारिक संस्कार के नाम पर पति का पैर धोकर चरणामृत्त पीने की प्रथा (संदर्भ - इस प्यार को क्या नाम दूँ - भाग २), प्रेम और अतिशय द्वेष जैसे विरोधाभासी संवेदना (संदर्भ - जोधा अकबर, प्रतिज्ञा, बेइंम्तहाँ), पति के लिए व्रत और प्रेमी के लिए तड़प अथवा विवाह होते ही तत्काल प्रेम का स्थानांतरण (संदर्भ - कसौटी ज़िन्दगी की, पुनर्विवाह, बानी - इश्क दा कलमा), व्यवसायी अथवा हिरोइन (संदर्भ - मधुबाला), पतिव्रता पत्नी, एक संस्कारी बेटी और बहू, एक सुगृहिणी (प्राय: सभी धारावाहिकों में) बनने का संघर्ष एक साथ चलता रहता है। जो एक सामान्य नारी नहीं बल्कि कोई रोबोट प्रतीत होती है, जो कभी पति के लिए, कभी बच्चों के लिए, कभी सास के लिए, कभी परिवार के लिए, कभी सहेली के लिए, कभी नौकरी के लिए, कभी पार्टी में भागती नज़र आती है। वह अपना व्यक्तिगत जीवन दाव पर लगा सबको बचाती है और किसी छोटी-मोटी गलती पर भी घर से धक्के मार कर निकाल दिए जाने के बाद भी अपने स्वाभिमान को ताक पर रखकर खुशी-खुशी उसी घर में लौट आती है। नायिका चाहे कितनी ही शिक्षित हो, आत्मनिर्भर हो, लेकिन ससुराल में सम्माननीय स्थान प्राप्त करने के पश्चात भी ढाक के तीन पात ही रहती है। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि एक नायिका जिसने परिवार पर न जाने कितने उपकार किए होते हैं, उस पर भरी सभा में कीचड़ उछाला जाता है, वह चीख-चीख कर सहायता की भीख माँगती है, और उस समय परिवार ही नहीं बल्कि समाज भी चुप्पी साधे तमाशा देखता रहता है। खुशियाँ और दु:ख की चाभी या तो नायिका के पास होती है या खलनायक के पास। बाकी परिवार गूँगा, बहरा एवं

निष्क्रिय होता है। इन सभी धारावाहिकों को घर में बैठे बड़े, बूढ़े और बच्चे अपनी इच्छानुसार बड़े चाव से देखते हैं। एक सामान्य दर्शक को नहीं पता होता कि धारावाहिक की पटकथा क्या है, दृश्य का किस प्रकार दृश्यांतरण हुआ है ? यदि समझ में आ भी जाए तो भी अपनी रूचि से जुड़े अंत:सूत्र ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। एक ओर धारावाहिकों में प्रेम, रहस्य, हिंसा, शोषण, छल-कपट का मिश्रण तैयार कर परोसा जाना अगले अंक के लिए दर्शक को लुभाता है तो दूसरी ओर स्त्रियों के लिए सबसे लुभावनकारी वस्तु नायिकाओं के कपड़े और गहने तथा यथार्थ से दूर प्रेम का आदर्शीकरण होता है, जो निज जीवन में एक सपना बनकर रह जाता है। कुछेक दृश्यों में प्यार का चर्मोत्कर्ष, विश्वास, ज़िम्मेदारियों की बड़ी-बड़ी बातें होती हैं और फिर अचानक नायिका की किसी सामान्य सी गलती पर आदर्श की इमारत का ढह जाना आदि अस्वाभाविक प्रतीत होता है, जिसके साथ-साथ दर्शक पर संबंधित मुद्दे का प्रभाव कम बल्कि चकाचौंध भरी नकल की लालसा शेष रह जाती है अथवा टाइम पास का एक साधन मात्र। यह सत्य है कि दर्शक पर चलचित्र का तत्काल प्रभाव पड़ता है। किन्तु प्राय: इन धारावाहिकों में मुख्य मुद्दे बारम्बार विवाह, अनावश्यक पार्टियों और धार्मिक पूजा पाठ में दबकर अपना महत्त्व खो देते हैं। धर्म और नैतिकता के नाम पर नायिका का चरित्र उभरता नहीं बल्कि धर्म नैतिकता के जाल में फंसी तड़फड़ाती मछली की भांति दृष्टिगत होती है। प्रेम का अतिशयोक्तिकरण उसे अनर्गल षडयंत्रों में फंसाता है, उससे वह समझदार नहीं बल्कि बेवकूफ नज़र आती है, जिसे खलनायिका अपनी उँगली पर नचाती फिरती है और खलनायिका भी ऐसी कि किसी की हत्या करना उसके लिए साधारण सी बात होती है। ऐसे में विकृत परिवार, विश्वासों की उड़ती धज्जियाँ, रिश्तों के साथ खिलवाड़ आदि से मन विद्रूपता से भर जाता है। मध्वर्गीय उच्चशिक्षा प्राप्त परिवार की कथा हो अथवा निम्नवर्गीय परिवार की समस्या, सबकी समस्या का अंत किसी महलनुमा घर में ही होता है और वहीं से शुरू होते हैं अनेक षड़यंत्र। आदर्श भारतीय परिवार की स्थापना करने के चक्कर में सच से कोसों दूर भारतीय यथार्थ का ड्रामा जनता को आसानी से दिग्भ्रमित कर रहा है। नायिका प्रधान अथवा स्त्री-विमर्श के नाम पर स्त्रियों को सत्ता की ओरियानी के नीचे ही रखा जा रहा है, जिसे स्वतंत्रता, समानता और सद्भावना जैसे प्रजातांत्रिक मूल्यों का भ्रम हो गया है। उसे लगता है कि वह पुरुषवर्चस्ववादी सत्ता एवं मानसिकता से मुक्त हो गयी है, किंतु सत्य तो यह है कि फैशन जगत् की चकाचौंध और अनावश्यक पार्टी, शिक्षित महिलाओं का ताबड़तोड़ फैसला लेना आदि निर्णय की स्वतंत्रता दिखाना एक ऐसा चक्रव्यूह है; जिसमें अभिमन्यु की भाँति वह स्वयं भी छटपटा रही है तथा समाज की आधी आबादी को आसमान से गिरे और खजूर में लटके वाली स्थिति में फँसा रही है। जिन थोथे मूल्यों एवं मान्यताओं तथा आडम्बरों की चादर को उतार फेंकने में स्त्री-विमर्शियों ने कई सदियाँ गुजार दीं और आज खुलेआम निडरता के साथ खड़ी भी हो रही हैं, अब उसे ही चलचित्र के माध्यम से मुक्ति के नाम पर नए छद्म के साथ पुन: ओढ़ाया जा रहा है। ऐसी विकृत्त स्वतंत्रता के एक तरफ कुआँ है तो दूसरी तरफ खाई। ऐसी स्थिति में स्त्री-विमर्शी चलचित्र जगत् के समाज, संस्कृति, धर्म, नैतिकता, मनोरंजन, शिक्षा और यथार्थ की गाड़ी हाँकने वालों से यही प्रश्न शेष रह जाता है - 'कवने नगर लेके चला रे बटोहिया.'? ❐

विश्वविद्यालय के प्रांगण से

मैं हिन्दी क्यों पढ़ती हूँ..

बेलिंडा विलियम्स

University of Toronto,
Scarborough Campus

मेरा हिन्दी सीखने का प्राथमिक कारण यह है कि मैं भारतीय मूल की हूँ। मैं भारत के दक्षिणी राज्य तमिलनाडू से हूँ; जहाँ के ज़्यादातर लोग हिन्दी नहीं बोलते। मेरा यह मानना है कि हर भारतीय को हिन्दी सीखनी चाहिए। अगर हम भी बाकी देशों की तरह हमारी राष्ट्रभाषा को सीखते और अपनाते तो सोचिए कितना अच्छा होता। ऐसा करने से भारत के उत्तरी और दक्षिणी राज्यों के बीच की बाधाओं को भी मिटा सकते हैं। मेरे लिए अपने देश की राष्ट्रभाषा सीखना उतना ही ज़रूरी है; जितना अंग्रेज़ी और अपनी मातृभाषा सीखना है। और तो और, जब विदेशी लोग हमारी भाषा से 'गुरु', 'अवतार' और 'योगा' जैसे शब्दों का उपयोग कर रहे हैं, हमें भी अपनी भाषा को अच्छी तरह से सीखना चाहिए। मेरे नाना-नानी के बाद मेरे परिवार में मैं ही हिन्दी में बात कर सकती हूँ। मुझे उनकी तरह हिन्दी बाइबिल पढ़ना भी सीखना है। वे कहते थे कि मुझे उसके लिए शुद्ध हिन्दी सीखना होगा। मेरे मन में हिन्दी विशिष्ट इसलिए भी है क्योंकि यह संस्कृत से ली गई है जो दुनिया की सबसे पुरानी भाषाओं में से एक है। हालाँकि मैं थोड़ी बहुत हिन्दी बोल लेती हूँ, मुझे हिन्दी व्याकरण सीखने में बहुत दिलचस्पी है। एक हिन्दी बोलने वाला ही जानता है कि 'घ', 'भ' और 'ठ' जैसे वर्णों को उच्चारित करने में कितना मज़ा आता है। मेरा हिन्दी सीखने का एक और मुख्य कारण भी है। डॉक्टर बनना और वापस जाकर अपने देश में काम करना मेरा सपना रहा है क्योंकि भारत के सबसे गरीब राज्य अधिकांश देश के उत्तरी भाग में हैं, अगर मुझे वहाँ के लोगों को मदद करनी हो तो मुझे हिन्दी सीखना आवश्यक है। मुझे लगता है कि हिन्दी सीखने से मैं भारत में अपने आप को एक कुशल डॉक्टर बनाने की कोशिश में एक कदम आगे बढ़ रही हूँ। इसलिए, विज्ञान विषयों को पढ़ने के साथ-साथ, मैं हिन्दी पढ़ने से अपने सपने के करीब हो सकती हूँ। मैंने अपनी विज्ञान की कक्षा में सीखा है कि दो से अधिक भाषाएँ बोलने की क्षमता होने से अल्ज़ाइमर्स रोग (भूलने की बीमारी) की शुरुआत में विलम्ब हो सकती है। इसलिए मैं विश्वास करती हूँ कि हिन्दी सीखना ऐसे कई कारणों से मेरे लिए और भी फायदेमंद होगा। ❐

भोर की मुस्कान

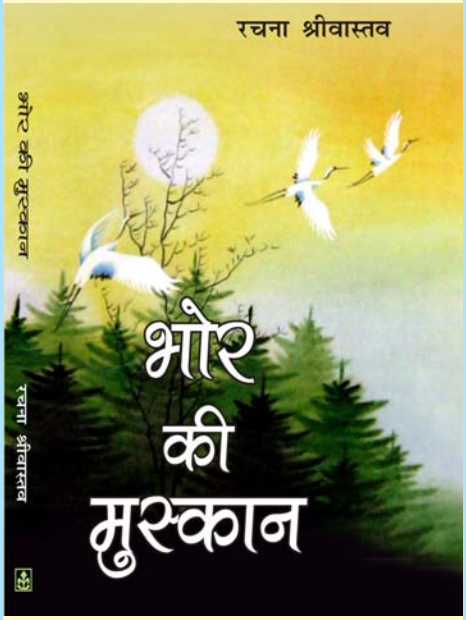

हाइकु और काव्य की संगमस्थली : भोर की मुस्कान

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

हाइकु 5-7-5 का वर्णिक गणित नहीं है । काव्य होना इसकी प्रथम और अन्तिम शर्त है। डॉ. सत्यभूषण वर्मा से पहले हाइकु की रचना ज़रूर हो रही थी, किन्तु वह नियमित नहीं थी। इसको नियमित करने का श्रेय यदि वर्मा जी को जाता है, तो व्यापक रूप देने और प्रसार करने का श्रेय डॉ. भगवत शरण अग्रवाल जी को जाता है। डॉ. अग्रवाल जी अच्छे हाइकुकार भी हैं, अत: हाइकु भारती के माध्यम से आपने गुणात्मक रचना कर्म को समर्पण भाव से आगे बढ़ाया, जो मूलत: कवि थे, उन्होंने हाइकु रचकर इस विधा का रूप सँवारा। बरसों के अध्यवसाय से देश के प्रसिद्ध रचनाकारों को हाइकु -रचना के लिए प्रेरित किया ।'हाइकु भारती' पत्रिका के साथ अपनी दो अनुपम कृतियों से हाइकु क्षेत्र को समृद्ध किया। 'हिन्दी कवयित्रियों की हाइकु-साधना' संग्रह के माध्यम से छह प्रमुख कवयित्रियों का विशद विवेचन एवं 51 कवयित्रियों की सामान्य जानकारी प्रस्तुत की; जो अपने आप में बहुत ही श्रमसाध्य कार्य था।'हाइकु काव्य विश्वकोश' इनका दूसरा मुख्य ग्रन्थ है; जो अपनी तरह का भारतीय ही नहीं वरन् विश्व की भाषाओं का पहला ग्रन्थ है ।सबको साथ लेकर चलने और सबको प्रोत्साहित करने की जो भावना डॉ.भगवत शरण अग्रवाल में थी, उससे हाइकु-जगत् समृद्ध हुआ।

इस ऐतिहासिक कार्य के साथ ही समान्तर रूप से ऐसे आशु यशकामी लोगों की भीड़ भी हाइकु - जगत् में घुसपैठ कर गई जो, 5-7-5 का अकाव्यात्मक खेल आज तक खेल रही है। एक वर्ग ऐसा भी है जो इसे आयातित कहकर अपनी संकीर्णता और कूपमण्डूकता का सदा प्रदर्शन करता आया है। सार्थक रचनाकारों की भारत में कमी नहीं है। डॉ. सुधा गुप्ता, शैल रस्तोगी, नलिनीकान्त, निर्मलेन्दु सागर, डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव, उर्मिला कौल, उर्मिला अग्रवाल आदि वरिष्ठ रचनाकारों के साथ कुछ और भी साहित्यकार अन्य विधाओं से हाइकु के साथ जुड़े जिनमें डॉ. सतीशराज पुष्करणा, कुँअर बेचैन ,राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी बन्धु , कमलेश भट्ट 'कमल' आदि का नाम लिया जा सकता है । कुछ ऐसे भी लोग जुड़े जो दस-बीस हाइकु लिखकर पुरोधा बनने का अहंकार आज तक पोषित कर रहे हैं। इक्कीसवीं सदी में बहुमुखी काव्य प्रतिभा का धनी एक और वर्ग जुड़ा, जिसने अपने व्यापक अनुभव से हाइकु को उत्कृष्ट काव्य का रूप दिया और हिन्दी हाइकु को भारत की सीमाओं से बाहर भी विकसित किया ।इस तरह के सशक्त रचनाकारों में ये नाम प्रमुख हैं- डॉ. भावना कुँअर, डॉ. हरदीप सन्धु, पूर्णिमा वर्मन, सुदर्शन रत्नाकर, ज्योत्स्ना प्रदीप, डॉ. जगदीश व्योम, कमला निखुर्पा, रचना श्रीवास्तव, डॉ. जेन्नी शबनम, हरेराम समीप, स्वामी श्यामानन्द सरस्वती, सुभाष नीरव ,प्रियंका गुप्ता, अनीता कपूर, मंजु मिश्रा, मुमताज टी एच ख़ान, डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा, सीमा स्मृति, सुशीला शिवराण, अनिता ललित, सरस्वती माथुर, डॉ. रमा द्विवेदी, कृष्णा वर्मा, नमिता राकेश, अनुपमा त्रिपाठी, सुभाष लखेड़ा, पुष्पा मेहरा, शशि पुरवार , हरकीरत 'हीर', शैफाली गुप्ता आदि । ये वे रचनाकार हैं , जिन्हें कभी-कभार लिखने वाले तथा अन्य चर्चित(चर्चा के जुगाड़ धर्मी) हाइकुकारों से कहीं भी कम नहीं माना जा सकता।

उपर्युक्त हाइकुकारों में रचना श्रीवास्तव सहज अनुभूति को हृदयस्पर्शी भाषा में उकेरने वाली कवयित्री हैं। इनके सरल व्यक्तित्व के दर्शन इनके काव्य में भी होते हैं। रिश्तों को पूरी ऊर्जा से निभाना, सामाजिक परिवर्तन पर कड़ी और सूक्ष्म दृष्टि, सामाजिक सरोकारों के प्रति सजगता, नवगीत, कविताओं और छोटी कविताओं में मुखर हुआ है । यही मुखरता इनके काव्य का पाथेय बनी है। एक वाक्य को तोड़कर एक हाइकु बनाने वाले या एक मिश्रित वाक्य के दो उपवाक्यों से दो हाइकु बनाकर उसको हाइकु गीत कहने वाले हनुमान - कूद करने वालों से दूर रचना श्रीवास्तव उन हाइकुकारों में से एक है, जो काव्य की अन्य विधाओं की भी सशक्त हस्ताक्षर होने के साथ - साथ कहानी और लघुकथा के क्षेत्र में भी सक्रिय हैं। हाइकु के सफल अनुवादक के रूप में आपका 'मन के द्वार हज़ार'(34 हाइकुकारों के हाइकु का अवधी हाइकु में अनुवाद)कार्य सराहनीय रहा है। जीवन के विविध आयामों की छवि इनके हाइकु

का मूल गुण है।

'भोर की मुस्कान' इनका पहला हाइकु -संग्रह है । यह मुस्कान सात अध्यायों में विभाजित है- 1-भोर -किरन, 2-उत्सव की धूप, 3- मौसम के रंग, 4-नेह की बूँद, 5-रिश्तों की डोर, 6- धरा का आँगन और 7-समय का सच। सात रंगों का यह इन्द्रधनुष जीवन और जगत के व्यापक फलक को समेटे हुए है।

'भोर -किरन' में भोर होने पर प्रकृति की मनोरम छटा का रूप अनूठा एवं दर्शनीय हो उठता है--सिन्दूरी हुआ /नदी का नीला पानी /भोर जो आई ।

'उत्सव की धूप' में जीवन की उत्सवधर्मिता अनेक रूपों में व्यक्त हुई है। हर त्योहार केवल मनाया जाने वाला साधारण घटना मात्र नहीं वरन् उस उमंग को जाग्रत रखना है, जो जीवन को जीने लायक बनाती है, जो सामाजिक जीवन की सांस्कृतिक शैली का निर्माण करती है। यादों की चौखट पर रखे दिए से साम्य कितना सहज और संवेदनशीलता से अनुपूरित प्रतीत होता है ! चौखट का प्रयोग इस हाइकु को घर के अपनेपन से जोड़ देता है --तुम्हारी याद /चौखट दीप धरूँ /दिवाली -रात ।

'मौसम के रंग' में कवयित्री की मधुर कल्पनाशीलता उनके गहन अनुभव की साक्षी बनती है-'धूप' को चिड़िया के रूप में बहुत से कवियों ने चित्रित किया है। रचना ने ठण्ड के समय का बहुत सार्थक चित्रण किया है--धूप चिड़िया / सिमटकर बैठी /ठंड जो आई ।

गर्मी की धूप का रूप तो सबसे अलग है, उसकी भीषणता भी इतनी कि धूप को भी गर्मी से बचने के लिए छतरी चाहिए- -उकडू बैठी /काश मिले छतरी !/धूप सोचती।

आम क्या बौराए , मन भी बौरा गया और प्रिय याद आ गए । बौराए का अभिधेय और लाक्षणिक दोनों रूपों में प्रयोग रचना श्रीवास्तव की काव्य प्रतिभा का लोहा मनवा लेता है। परम्परागत तुकबन्दी या विचारों के शुष्क खेल की तरह 5-7-5 के पत्ते फेंटने वालों को इस कवयित्री के हाइकु ज़रूर पढ़ने चाहिए।

नेह की बूँद-में कवयित्री के हाइकु का माधुर्य हिन्दी काव्य की ऊँचाई को स्पर्श करता है। हाइकु के नाम पर शब्दजाल बुनने वाले, नन्हे हाइकु की खोंपड़ी पर दर्शन का प्रेत नचाने वाले इनसे सीख सकते हैं कि हाइकु की वास्तविक शक्ति उसका काव्य गुण है न कि शब्द-सर्कस की कलाबाज़ी । प्रकृति के उपादानों के माध्यम से प्रेम का यह उदात्त रूप इन पंक्तियों में--तुम सूरज / मैं किरण तुम्हारी /साथ जलती। मैं नर्म लता/तुम तरु विशाल/ लिपटी फिरूँ ।

जीवन में स्मृतियों का बहुत महत्त्व है । उन्हीं स्मृतियों की खुशबू से हमारा जीवन महकने लगता है जो कठिन पलों में भी शक्ति बन जाती हैं-

-याद के मोती /मै पिरोऊँ माला में /महक जाऊँ ।

'रिश्तों की डोर' में माता-पिता भाई बहन मित्र आदि का वैविध्यपूर्ण संसार है। जिस भी रिश्ते पर रचना हाइकु लिखती हैं, उसी में पूरी तरह निमग्न हो जाती हैं । माँ का प्यार अनेक आह्लादकारी रूपों में छलक उठा है । माँ के हाथ का बुना स्वेटर ठण्ड को भी लज्जित कर देता है । फन्दों में बँधा वह प्यार कितना प्रभावशाली है ! -नींद पहन / पायल घर आए /माँ सुलाए । माँ ने बुना था/जब फंदों में प्यार/ठंड लजाई ।

पिता पर बहुत कम कवियों के हाइकु हैं। रचना ने पिता को भरोसे के रूप में प्रस्तुत किया है-- तोतली भाषा /मासूम सपनों का /भरोसा पिता।

भाई के प्रति रचना का अकुण्ठ प्रेम दिल को छू जाता है। वह बहन के अम्बर जैसे हृदय का कभी अस्त न होने वाला चाँद है । इतना पावन प्रेम 17 वर्णों में समाहित करने की कला ही गागर में सागर भरना है। रचना की सहृदयता किसी भी भाई को अभिभूत कर सकती है-भाई है चाँद / बहन के अम्बर का /कभी न डूबे। बहन को दूसरे घर जाना है, लेकिन भाई के घर वह कितनी आत्मीय है, कितनी प्यारी है, गौरैया की तरह। गौरैया जो किसी भी घर की सुबह की सबसे बड़ी साक्षी होती है भाई अँगना /बहन चुगे दाना /बन गौरैया ।

बेटी की बिदाई माँ के लिए बहुत दारुण होती है । बिदा के बाद माँ बिखरा सामान ही नहीं सँभालती, बल्कि खुद के बिखराव को भी सँभालती है। बेटी की किलकारी में वह माधुर्य और पावनता समाहित हैं ,जो मन्दिर की घण्टी में होते हैं ।माँ - बेटी के ये बहुआयामी चित्र रचना श्रीवास्तव को हाइकु के क्षेत्र में एक सफल कवयित्री के तौर पर स्थापित करते हैं।--सँभालती माँ /बिखरा सामान वो /कर विदाई।--किलकारी से /मंदिर की घण्टी- सा/घर गूँजता।

धरा का आँगन- धरती का पूर्ण स्वरूप सृष्टि के रूप-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का संयोजन है। यह संयोजन ही इसका सौन्दर्य है। जब यह संयोजन विकृत होकर असन्तुलन और उपेक्षा को जन्म देता है तब सबके लिए अहितकारी सिद्ध होता है।सन्तुलन और संयोजन का सौन्दर्य अप्रतिम होता है, तरु -लता-पात से लेकर नदी ,निर्झर, झील तक ,सूर्य -चन्द्रमा-तारकगण से लेकर मेघ ,सागर , वायु तक । गुलमोहर और पलाश की छटा निराली है--पेड़ लजाए,/ गुलमोहर खिला , / तो लाल हुए। -गुँथे पलाश / प्रकृति की चोटी में/ अजब छटा।

सूखे के कारण चटकी झील का साम्य बिवाई से देना कितनी प्रभावी बन गया है! झील सूखी तो पंछी भी पलायन कर गए, वायु प्रदूषण बढ़ा तो चाँद भी खाँसने लगा। वर्षा आई तो झील का आँचल भीग गया, सीवान हरा-भरा हो गया।-चटकी झील / गरीब के पैरों में / जैसे बिवाई। सूने किनारे/ पंछी के स्वर बिना / सूखी जो झील। कवयित्री ने झील के माध्यम से प्रकृति के उतार -चढ़ाव को बहुत कलात्मक और वैज्ञानिक ढंग से पेश किया है।

समय का सच - जीवन के विभिन्न यथार्थ का ज्ञान कराता है। जीवन एक पुस्तक है, जो कोशिश करने पर भी पूरी तरह पढ़ी नहीं जा सकती। यदि आँसू में मुस्कान तलाश लेंगे, तो जीवन सरल हो जाएगा--पढ़ी न जाए / जीवन की किताब / कोशिश करो। -ढूँढ़ो आँसू में/ यदि तुम मुस्कान, / जीना आसान।

नफ़रत की आँधी आँखों में काँटे ही बिखेर सकती है और कुछ नहीं ,अत: त्याज्य है।आज परिवार के बीच की जोड़ने वाली मर्यादा की कड़ी जर्जर हो चुकी है । यही कारण है कि सम्बन्धों को गरिमामय बनाने वाली मर्यादा ध्वस्त हो चुकी है- -आँखों में धूल/नफरत की आँधी /बिखेरे शूल।

इनका भाव-वैविध्य, गहन जीवन अनुभव, सूक्ष्म पर्यवेक्षण, भाषा पर गहरी पकड़ इन्हें उत्तम हाइकुकारों की श्रेणी में स्थापित करती है। अन्तत: मैं यही कहना चाहूँगा कि रचना श्रीवास्तव का यह संग्रह सहृदय पाठकवर्ग को हाइकु -काव्य का रसास्वादन करा सकेगा।

❐

कारोबारे तमन्ना

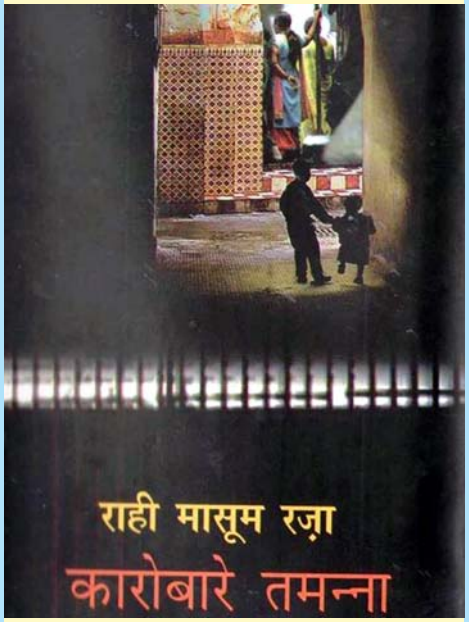

कृति- कारोबारे तमन्ना (उपन्यास)
लेखक- राही मासूम रज़ा
लिप्यन्तरण- फ़िरोज़ अहमद
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण- 2013
मूल्य- 250 रूपये. पृष्ठ- 140

तमन्नाओं के कारोबार से कुछ अधिक

रमाकान्त राय

वेश्याओं के प्रति आकर्षण और वेश्यागामिता के प्रति संकोच-भाव दोनों ही हमारे समाज में देखने को मिलता रहा है। इसीलिए यह एक तरफ तो घृणित पेशा माना जाता रहा है और दूसरी तरफ इसे कई कुंठाओं का विरेचन करने वाला माना जाता रहा है। भारत में वेश्यावृति कई रूपों में मौजूद रही है और यह महज देह व्यापार से ही सम्बद्ध नहीं रही है बल्कि इसमें कला के कई आयाम छिपे मिले हैं। वेश्यावृत्ति को केन्द्र में रखकर हिन्दी में कई उपन्यास लिखे गए हैं। प्रेमचंद का 'सेवासदन' इस विषय पर एक चर्चित कृति है। सेवासदन के अलावा जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल भी इस पेशे में कुछ वक्त के लिए जाती है। अमृतलाल नागर का 'ये कोठेवालियाँ' वेश्याओं की ज़िन्दगी को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इतिहास में नगरवधू का प्रचलन मिलता है। चतुरसेन शास्त्री का 'वैशाली की नगरवधू' और भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिये इसी विषय को छूता है। मिर्ज़ा हादी रुसवा की 'उमराव जान अदा' भी इसी वृत्ति पर आधारित उपन्यास है; जिसमें मुख्य पात्र उमराव जान अदा एक मशहूर नर्तकी और शायर रहती है। अवध में तो कोठेवालियों की एक ख़ास संस्कृति रही है, जिससे मुजरा नामक कला विधा लोकप्रिय हुई।

राही मासूम रज़ा का उपन्यास 'कारोबारे तमन्ना' यूं तो तमन्नाओं के कारोबार पर फोकस करता है, लेकिन उसका एक बड़ा और मुख्य हिस्सा वेश्यावृति से सम्बद्ध है। बता दें कि राही मासूम रज़ा ने यह उपन्यास अपने संघर्ष के दिनों में उर्दू में लिखा था, जब वे शाहिद अख्तर और आफाक हैदर के छद्म नाम से लिखते थे। उन दिनों राही मासूम रज़ा ने कई उपन्यास अखबारों और पत्रिकाओं के लिए धारावाहिक रूप में लिखे थे। उर्दू में लिखे गए इन उपन्यासों में से एक 'कारोबारे तमन्ना' को फ़िरोज़ अहमद ने हिन्दी में लिप्यन्तरित किया है। राही मासूम रज़ा ने इस उपन्यास में जो चरित्र बुने हैं, वे सब अपनी इच्छाओं के व्यापार में लगे हुए हैं। हरेक की अपनी अपनी प्राथमिकताएँ हैं। हरेक की तमन्ना पृथक है। कल्लू की, आरजू की, कलूट की, गजाधर और नसरुतुल्ला की मास्टर साहब की। शरीफन और सबीहा और उस जैसी तमाम लड़कियों की। यह मानव स्वभाव ही है जिसे राही मासूम रज़ा ने उपन्यास में बुनने की कोशिश की है।

उपन्यास तमन्नाओं के कारोबार में लगे हुए शहर के बाशिंदों की उन तमाम सहजताओं, षड्यंत्रों, दुरभिसंधियों और छल-प्रपंचों को समेटता है, जिनसे उनकी पहचान जुड़ी हुई है। दिक्कत यह है कि इस तमन्ना के कारोबार में लगे हुए लोग व्यवस्था के दुश्चक्र में उलझ जाते हैं। सफल वही होते हैं, जो छल प्रपंच करते हैं और आर्थिक रूप से समृद्ध हैं। वे ही नियामक हो जाते हैं। कल्लू की पहली इच्छा तो यह है कि वह बड़े सेठ महाजनों की तरह चेक काटे। उसे चेक तो आसानी से मिल जाता है लेकिन जब वह चेक काटता है तो मज़दूर चेक लेने से मना कर देते हैं। उन्हें अपने श्रम का भुगतान नकद चाहिए। यह शुरुआत होती है, जब उसकी तमन्नाएँ एक-एक करके मिट्टी में मिलती जाती हैं। उसकी बेहिसाब और दिन रात की तमन्नाओं में बहन की शादी, घर बना और बसा लेने की आरज़ू और न जाने कितनी-कितनी ख्वाहिशें शामिल रहती हैं लेकिन सब एक-एक कर धराशायी हो जाती हैं। उसकी दुकान चौपट हो जाती है, घर बिक जाता है, पिता की मृत्यु हो जाती है और बहन वेश्या बन जाती है। उसका स्वयं का जीवन भी अंधकार में विलीन हो जाता है।

उपन्यास न सिर्फ शहर के बाशिंदों की तमन्नाओं को समेटता है बल्कि वेश्यावृत्ति के धंधे पर भी प्रकाश डालता है। आज़ादी के बाद जब वेश्यावृत्ति कानूनन जुर्म बना दी जाती है तो शहर के कई परिवार संकट में फँस जाते हैं। उनके समक्ष रोज़ी-रोटी का संकट आ खड़ा होता है। इस संकट से उबारने के लिए मास्टर जी सामने आते हैं और वे इसे मौका समझ अपनी गोटी सेट करने की जुगत में लग जाते हैं। वे इस मौके का फ़ायदा उठाते हैं और बन रहे कानून को रुकवाने के लिए एक बड़ी रकम इकठ्ठा करवाते हैं। जब एक मुश्त बड़ी रकम इकठ्ठा हो जाती है, वे पाकिस्तान भाग जाते हैं।

वेश्यावृत्ति कानून का उल्लंघन करने पर वेश्याओं को पुलिस पकड़ लेती है और उनका दोहरा शोषण करती है। इस तरह यह व्यवसाय खुल्लमखुल्ला तो प्रतिबंधित हो जाता है, किन्तु यह कानून की आड़ में एक दूसरे तरीके से चलने लगता है। इस दूसरे तरीके की वेश्यावृति में सफ़ेदपोश शामिल हो जाते हैं और यह बाकायदा सभ्य परिवारों के बीच बड़े धंधे के रूप में जड़ बना लेता है। तथाकथित समृद्ध परिवारों की लड़कियाँ भी इस धंधे में देह के स्वाद और अतिरिक्त कमाई के लालच में खिंच आती हैं। यह धंधा कानूनन जुर्म होते हुए भी पुलिस की मिलीभगत से बदस्तूर चलने लगता है। राही मासूम रज़ा दिखाते हैं कि इस धंधे में हर सामान्य जन की तमन्नाएँ कुचली जाती हैं। उनका जीवन बदतर होता जाता है। उपन्यास के आखिर में शरीफन वेश्यावृत्ति में धकेलने वालों से एक क्रूर किस्म का बदला लेती है। उसे बहुत गंभीर यौन संक्रमण हुआ रहता है जो जानलेवा हो गया है। यह जानकर कि इसके प्रभाव से संसर्ग में आने वाला व्यक्ति भी संक्रमित हो जाएगा, वह आखिर में नुसरतुल्ला से इंतकाम लेती है।

राही मासूम रज़ा ने इस उपन्यास को धारावाहिक रूप में लिखा था। धारावाहिक रूप में लिखने का एक संकट यह है कि इसकी किश्तें तय करनी पड़ती हैं। किश्तों में लिखने की वजह से यह कई बार अपनी स्वाभाविक लय खो बैठता है। लेकिन राही मासूम रज़ा की खासियत यह है कि वे अपने प्रवाह को खोने नहीं देते और अपनी लाक्षणिक पदावली से उसे बाँधे रखते हैं।

कारोबारे तमन्ना में राही मासूम रज़ा का भाषाई चमत्कार देखते बनता है। वे अपनी लरजती हुई कोमल भाषा से एक जादू रचते हैं और उन स्थितियों में बहा ले जाते हैं।

यह उपन्यास यूँ तो उर्दू में लिखा गया था लेकिन इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। इसे परवर्ती राही मासूम रज़ा के शुरूआती बनाव के रूप में देखना चाहिए। राही मासूम रज़ा के पहले उपन्यास आधा गाँव का बीज रूप इस उपन्यास में देखा जा सकता है। मसलन मास्टर जी द्वारा वेश्यावृत्ति रोकने के लिए चंदा इकट्ठा करने की तकनीक, आरज़ुओं का इस तरह अभिव्यक्त होना और हरेक तक उसकी व्याप्ति। हिन्दू-मुसलमान प्रश्न राही की मूल चेतना में है। इस उपन्यास में भी इसका बीज रूप देखा जा सकता है जब गजाधर और नसरुतुल्ला के बीच मामूली आपसी विवाद हिन्दू-मुसलमान रंग लेने लगता है। देश विभाजन का दंश राही के हर लेखन में अभिव्यक्त हुआ है। मास्टरजी द्वारा धोखे से ही सही, पाकिस्तान चला जाना इसकी एक बानगी है। इसके अलावा, यौन सम्बन्धों के चित्रण में राही मासूम रज़ा का चित्त खूब रमता है। वे इसे जिस तरह प्रस्तुत करते हैं वह बहुत विशिष्ट होता है। वे उसमें पूरी संलिप्तता से प्रकट होते हैं और खूब मन से लिखते हैं। कारोबारे तमन्ना उनके शुरूआती मानस का बखूबी परिचय देता है।

राही की एक बड़ी खासियत यह है कि वे किसी भी समस्या के मूल में जाने की कोशिश करते हैं। इस उपन्यास में उन्होंने वेश्यावृति की मूल को पहचानने की कोशिश की है। राही मासूम रज़ा के इस उपन्यास में फ़िल्मी प्रभाव को भी देखा जा सकता है। इसी प्रभाव को हम बाद में उनके मुम्बइया जीवन के उपन्यासों और फिल्मों में देखते हैं।

'कारोबारे तमन्ना' बेहद संक्षिप्त उपन्यास है। इस संक्षिप्त उपन्यास में आज़ादी के बाद का भारतीय समाज बहुत स्पष्टता से मुखरित हुआ है। खासकर ऐसे संवेदनशील मुद्दे पर राही की प्रस्तुति इसे महज रोमानी उपन्यास नहीं रहने देती बल्कि एक सामाजिक उपन्यास के तौर पर स्थापित कर देती है।

'कारोबारे तमन्ना' नामक इस पुस्तक में 70 पेज के 'कारोबारे तमन्ना' नाम से संक्षिप्त उपन्यास के साथ-साथ आठ कहानियाँ भी संकलित हैं। ये आठ कहानियाँ कहानी की विधा के साथ राही मासूम रज़ा के प्रयोग की तरह हैं। इनमें कहानी, रेखाचित्र, संस्मरण, लेख और रमणीक गद्य का स्वरुप देखा जा सकता है। इन कहानियों का गद्य बहुत नाज़ुक और महीन है। कुछ अरसा पहले अलीगढ़ से निकलने वाली पत्रिका वाङ्मय के राही मासूम रज़ा विशेषांक में इन कहानियों को पहली बार प्रस्तुत किया गया था। यहाँ इस पुस्तक में इन्हें पढ़ना राही मासूम रज़ा के गद्य के एक अन्य रूप से परिचित होना भी है।

कुल मिलाकर यह एक बेहद ज़रूरी किताब है, खासकर राही मासूम रज़ा के असंख्य प्रशंसकों के दृष्टिकोण से।

❐

लघुकथा

लिटमस टेस्ट

पीयूष द्विवेदी 'भारत'

'प्रेमहीन जीवन शून्य है, ये मुझे बेहतर पता है ! इसलिए उसकी पीड़ा को समझता हूँ !' आकाश शून्य की ओर देखते हुए प्रतीक से बोला !

'किसकी पीड़ा? तुम्हारी प्रेमिका?' प्रतीक बोला !

'ना! एक मित्र है, बहुत प्रेम करता है एक से, पर कह नहीं पा रहा है !'

'कौन मित्र?'

'अभिनव, कॉलेज वाला...!'

'जानता हूँ ! किसको चाहता है? रहती कहाँ है?'

'जैसा कि उसने बताया है, तुम्हारे ही मोहल्ले में !'

'क्या बात कर रहे हो, ऐसा है, तब तो तुम्हारे दोस्त की समस्या हल..!' अबकी प्रतीक उत्तेजित था !

'पता नहीं ! आसान नहीं लगता !'

'आसान कर देंगे ! दो प्रेमियों को मिलाने से बड़ा पुण्य क्या ! पर प्रेमिका का नाम तो बताओ?'

'अनुराधा....!'

'क्या, उसकी इतनी हिम्मत, ज़िन्दा नहीं छोड़ूँगा कमीने को, खून कर दूँगा !' प्रतीक अचानक गुस्से में आ गया था ! अनुराधा उसकी बहन का नाम था !

❐

हमसफ़र पत्रिकाएँ

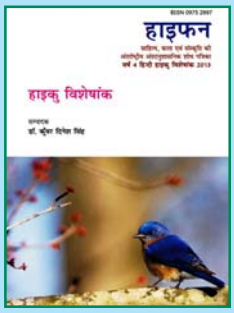

हाइफन (हाइकु विशेषांक)
सम्पादक : डॉ. कुँवर दिनेश सिंह
३, सिसिल क्वार्टर्ज, चौड़ा मैदान,
शिमला-१७१००४ (हि.प्र)

पुष्पगंधा
संपादक -विकेश निझावन
557 बी, सिविल लाइन्स
बस स्टॉप के सामने
अम्बाला सिटी 134003
हरियाणा

शोध दिशा
संपादक डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
डॉ. मीना अग्रवाल
हिन्दी साहित्य निकेतन
१६ साहित्य विहार,
बिजनौर (उ.प्र.)२४६७०१

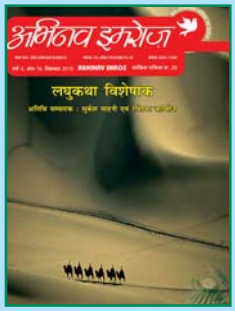

अभिनव इमरोज़
लघुकथा विशेषांक
अतिथि संपादक: सुकेश साहनी एवं रामेश्वर काम्बोज
संपादक--देवेन्द्र कुमार बहल
बी ३, ३२२३ वसंत कुञ्ज, नई दिल्ली-१००७०

व्यंग्य यात्रा
संपादक- प्रेम जनमेजय
७३, साक्षर अपार्टमेंटस
ए-३, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली-११००६३
premjanmejai@gmail.com

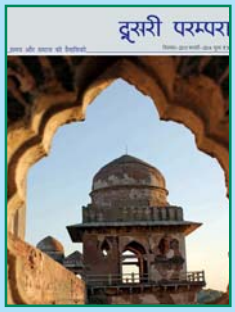

दूसरी परम्परा
सम्पादक - सुशील सिद्धार्थ
५३७/१२१, पुरनिया (निकट रेलवे क्रॉसिंग)
अलीगंज, लखनऊ -२२६०२४
dusariparampara@gmail.com
मोबाइल 08604365535

पुस्तकें

बूँद-बूँद लम्हे (काव्य-संग्रह):
अनिता ललित
प्रकाशक: मनसा पब्लिकेशन्स,
२ /२५५ विराम खण्ड, गोमतीनगर,
लखनऊ-२२६०१०
मूल्य :१७५रुपये

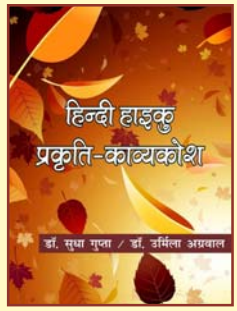

हिन्दी हाइकु प्रकृति-काव्यकोश(पंच महाभूत)
संचयन एवं सम्पादन-डॉ. सुधा गुप्ता-
डॉ. उर्मिला अग्रवाल,
प्रकाशक: अयन प्रकाशन, १२०, महरौली
नई दिल्ली - ११० ०३०
मूल्य :७५० रुपये

चुनाव, राजनीति और रिपोर्टिंग
ब्रजेश राजपूत
मूल्य : 195.00 रुपये
प्रकाशक:शिवना प्रकाशन
पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड, सीहोर -466001(म.प्र.)

BEST DEALS FLOORING

Residential & Commercial

Free Delivery
Under Pad
Installation

Residential
Commercial
Industrial
Motels & Restaurants

Free Shop at
Home Service Call:
416-292-6248

WE ALSO SUPPLY

▪ BASE BOARDS ▪ QUATER ROUNDS ▪ MOULDINGS ▪ CUSTOM STAIRS ▪ ALL KINDS OF TRIMS ▪ CARPET BINDING AVAILABLE

FREE - Installation - Under Padding - Delivery

Call: Raj OR GARY 416-292-6248

130 Dynamic Drive Unit#2, Scarborough,ON M1V5C9

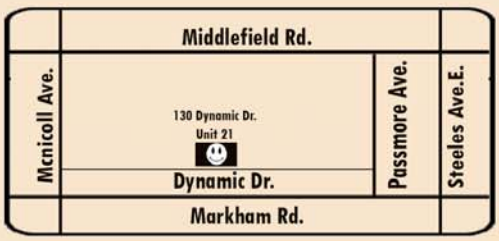

Custom Blinds - Ciramic Tiles - Hall Runner

Jaswinder Saran
Sales Representavie

Direct: 416-953-6233

Office: 905-201-9977

HomeLife/Future Realty Inc.
Independently Owned and Operated Brokerage

205-7 Eastvale Dr.Markham,ON L3S 4 N8
Highest Standed Agents.....Highest Results!....

www.bestdealsflooring.ca

HOMELIFE HIGHER STANDARDS

REALTOR

MLS MULTIPLE LISTING SERVICE®

ममता कालिया, मंजूर एहतेशाम और पंकज सुबीर को वनमाली कथा सम्मान

प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था वनमाली सृजन पीठ ने वर्ष 2014 हेतु वनमाली कथा सम्मान ममता कालिया, मंजूर एहतेशाम तथा पंकज सुबीर को प्रदान किये। भोपाल में आयोजित एक गरिमामय आयोजन में सुप्रसिद्ध कथाकार चित्रा मुद्गल ने तीनों कहानीकारों को ये सम्मान प्रदान किये,इस अवसर पर सृजन पीठ के अध्यक्ष संतोष चौबे भी उपस्थित थे। तीनों रचनाकारों को वनमाली कथा सम्मान के अंतर्गत सम्मान पत्र, स्मृति चिह्न तथा सम्मान राशि 51 हजार तथा 31 हजार प्रदान की गई।

'दृश्यांतर' पत्रिका के बहाने धीरेन्द्र अस्थाना की आत्मकथा पर गोष्ठी

'चार अंकों में ही इतनी लोकप्रिय होने वाली दृश्यांतर पत्रिका शायद हिन्दी की पहली ऐसी साहित्यिक पत्रिका है, जो हर तरह से बहुत अच्छी सामग्री देने के साथ-साथ रचनाधर्मिता के मानदंडों पर खरी उतरती है'- यह उद्गार सुप्रसिद्ध रचनाकार सुधा अरोड़ा ने मणिबेन नानावटी महिला महाविद्यालय, मुंबई में दिनांक २६ फरवरी को दृश्यांतर के लोकार्पण कार्यक्रम में व्यक्त किए। इस अवसर पर दृश्यांतर के संपादक श्री अजित राय ने पत्रिका के प्रकाशन की प्रक्रिया के संबंध में बताते हुए कहा कि यह देश की पहली पत्रिका है जो लेखकों से आग्रहपूर्वक रचनाएँ लिखवाती है। इसमें प्रकाशित प्रत्येक रचना लेखक से कहकर लिखवाई गई है, इसलिए हमें अच्छी रचनाएँ प्राप्त हो पाईं इसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि दृश्यांतर श्रेष्ठ रचनाधर्मिता और वैचारिकता के प्रकाशन के लिए प्रतिबद्ध है। दृश्यांतर में प्रकाशित धीरेन्द्र अस्थाना की आत्मकथा 'सतह से उठता आदमी' पर बोलते हुए सुधा अरोड़ा ने कहा कि धीरेन्द्र ने अपने जीवन में बहुत संघर्ष किए हैं और बड़ी बीहड़ परिस्थितियों में रहते हुए अपने अंदर के इंसान को बचाए रखा है। उन्होंने यह भी कहा कि मेरे लेखन को आगे बढ़ाने में भी धीरेन्द्र अस्थाना का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस अवसर पर कवि-कथाकार हरि मृदुल ने कहा कि धीरेन्द्र अस्थाना की आत्मकथा उनके अंदर के रचनाकार के जीवन को बड़ी बेबाकी से प्रकट करती है। परिवार, पिता, जीवन की विकट परिस्थितियों ने भी उनके रचनाकार को मरने नहीं दिया बल्कि उन्हें लड़ने को और भी प्रेरित किया। रवीन्द्र कात्यायन ने कहा कि 'सतह से उठता आदमी' धीरेन्द्र जी की ज़िन्दगी का बेहद ईमानदार बयान है, जिसमें उनकी जिजीविषा उभरकर आई है। अपने सम्मान की रक्षा के लिए पक्की नौकरी को ठोकर मार देने वाला रचनाकार धीरेन्द्र अस्थाना ही हो सकता है, जबकि जीवन की परिस्थितियाँ इसकी इजाज़त नहीं देतीं।

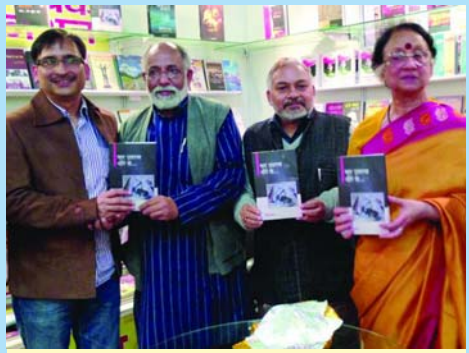

कथाकार विवेक मिश्र के कहानी संग्रह का लोकार्पण

विश्व पुस्तक मेले में युवाकथाकार विवेक मिश्र के दूसरे कहानी संग्रह 'पार उतरना धीरे से' का लोकार्पण वरिष्ठ कथाकार चित्रा मुदगल, सूरज प्रकाश, तथा आलोचक सुशील सिद्धार्थ के हाथों सामायिक प्रकाशन के स्टाल पर सम्पन्न हुआ। चित्रा जी ने विवेक को ग्रामीण चेतना का ऐसा कहानीकार बताया जो आज बाज़ारवाद और शहरीकरण के समय में 'हनियाँ', 'पार उतरना धीरे से' तथा 'दोपहर' जैसी कहानियों के माध्यम से पाठक के एक बहुत छूटी दुनिया में जाता है। उन्होंने कहा कि विवेक की कहानियाँ वर्तमान कहानी समय की ऐसी आवाज़ हैं जिसमें बहुत तेज़ी से अपनी एक अलग पहचान बनाई है। कथाकार विवेक मिश्र ने कहा कि व्यवस्था से, अपने रचनाकर्म से गहरा असंतोष ही उन्हें लिखने और अपने लेखन में जोखिम उठाने के लिए प्रेरित करता है। कथाकार सूरजप्रकाश ने विवेक मिश्र को प्रयोगधर्मी कथाकार बताया। उन्होंने कहा कि पिछले दिनों विवेक मिश्र ने अपनी कहानियों से जो अभिव्यक्ति का जोखिम उठाया है उसके लिए केवल भाषा और शिल्प ही नहीं साहस भी चाहिए। सुशील सिद्धार्थ ने विवेक की कहानियों पर बोलते हुए कहा कि विवेक के पास अनुभव का वैविद्य है, भाषा की सामर्थ है और कल्पना की उड़ान है और वह इन तीनों का अपनी कहानियों में खुलकर प्रयोग करते हैं। आज युवाकथाकारों में वे अपनी एक अलग पहचान बना चुके हैं। कार्यक्रम में संपादक अशोक मिश्र, संजय कुंदन, राजेश राव, अमृता बेरा, अंजु शर्मा, सरिता शर्मा, अर्पणा मनोज उपस्थित थे। धन्यवाद ज्ञापन सामायिक प्रकाशन के संचालक महेश भारद्वाज ने किया।

यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो स्कारबॉरो में हिन्दी दिवस का आयोजन

यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो स्कारबॉरो कैम्पस में Center for French and Linguistics, UTSC द्वारा २४ फरवरी, २०१४ को हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया। छात्रों ने आयोजन स्थल मीटिंग प्लेस को संपूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति से सराबोर कर दिया। हिन्दी छात्र लुबना वहाजुद्दीन और रवीना लांबा के मेंहदी स्टॉल पर बालाओं की कतार थी तो दूसरी ओर निकिता प्रकाश के साड़ी स्टॉल पर सुंदर और आकर्षक साड़ियों में स्वयं को सजाती छात्राओं की उत्सुकता देखते ही बनती थी। जया शर्मा के रँगोली स्टॉल के रंग अपनी अलग ही छटा बिखेर रहे थे। भारतीय संस्कृति को जानने के लिये आतुर छात्र ब्रिस्टॉल बोर्ड पर विद्या डेविड द्वारा दी जानकारी का लाभ ले रहे थे तो दूसरी ओर जयराम सुकलाल के बनाए स्लाइड शो पर भारतीय संस्कृति के रंगीले चित्र छात्रों का ध्यान खींच रहे थे। जितेन्द्रपाल सिंह का समोसा स्टॉल काजू कतली की मिठास के साथ सर्वाधिक व्यस्त रहा। लेटिशिया नोकेर और नेविदा रामलोचन ने सजावट का ज़िम्मेदारी बखूबी सँभाली। संगीत की मीठी झनकार के साथ बलिंडा विलियम्स और गुरप्रीत कौर के संचालन में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का प्रारंभ हुआ। छात्रों ने नृत्य, कवितापाठ, फैशन शो आदि विभिन्न प्रस्तुतियाँ कीं और धन्यवाद भाषण के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ। यूनिवर्सिटी कैम्पस में हिन्दी शिक्षण को प्रेरित करता हिन्दी दिवस का यह कार्यक्रम डॉ. हंसा दीप के नेतृत्व में विभागाध्यक्ष डॉ. कैरेन मेक्रिन्डैल के सहयोग से सानंद संपन्न हुआ। हिन्दी चेतना के संपादक श्री श्याम त्रिपाठी और श्रीमती सुरेखा त्रिपाठी की उपस्थिति ने छात्रों का उत्साहवर्धन किया।

सच्चा इतिहास उस कालखंड में लिखी जाने वाली कृतियां है- डॉ.दामोदर खड़से

'इस संस्था ने विभिन्न प्रदेशों के कथाकारों को पुरस्कृत कर उनकी किताबों को हमारे सामने लाने में बड़ी भूमिका निभाई है। सच पूछा जाए तो सच्चा इतिहास उस काल खंड में लिखी जाने वाली कृतियां हैं।अब उपदेश देने का वक्त समाप्त है। वह बोलिए जिसे सुनने वाला भीतर से महसूस करे। अपने विचारों से जोड़ना कथनी को बेकार करना है।' यह उद्गार डॉ.दामोदर खड़से ने ४ जनवरी २०१४ को श्री राजस्थानी सेवा संघ सभागार अँधेरी पूर्व मुम्बई में श्री जे.जे.टी विश्वविद्यालय के साहित्यिक एकांश हेमंत फाउंडेशन के तत्वावधान में आयोजित विजय वर्मा कथा सम्मान एवं हेमंत स्मृति कविता सम्मान के अवसर पर व्यक्त किए। अतिथियों का स्वागत करते हुए संस्था की अध्यक्ष सुप्रसिद्ध साहित्यकार संतोष श्रीवास्तव ने अपने स्वागत भाषण में कहा-शरद सिंह ने लिव इन रिलेशनशिप की आँच से गर्माए गाँव कस्बे के बदलते परिवेश का वर्णन किया वहीं हरेप्रकाश उपाध्याय ने ग्रामीण परिवेश में रची बसी कविताओं से समय की समस्याओं को उभारा है। विजय वर्मा कथा सम्मान डॉ.दामोदर खड़से के कर कमलों द्वारा शरद सिंह एवं दिनकर जोशी द्वारा हेमंत स्मृति कविता सम्मान हरेप्रकाश उपाध्याय को प्रदान किया गया। पुरस्कार स्वरूप ग्यारह हज़ार रुपए की धनराशि स्मृतिचिह्न, शॉल एवं श्रीफल प्रदान किया गया। अपने वतव्य में शरद सिंह ने कहा- 'विजय वर्मा ने अपना छोटा सा जीवन साहित्य को समर्पित किया आज उनकी स्मृति का पुरस्कार पाकर मैं धन्य हूँ।' हरेप्रकाश उपाध्याय ने कहा 'हेमंत अत्यंत संवेदनशील कवि थे उनकी कविताओं को पढ़कर मैं बेचैन हो उठता हूं कि अगर हेमंत होते तो निश्चय ही युवा पीढ़ी के सिरमौर होते।' समारोह के अध्यक्ष गुजराती के वरिष्ठ साहित्यकार दिनकर जोशी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा -'मैं गुजराती का लेखक हूँ लेकिन आज हिन्दी लेखकों के बीच स्वयं को हिन्दी से जुड़ा हुआ पाता हूँ। साहित्य केवल साहित्य होता है।' समारोह में मुम्बई के लेखक,पत्रकार,साहित्य प्रेमी उपस्थित थे।

लक्ष्मी नारायण मंदिर (कैनेडा) में भव्य कवि सम्मलेन का आयोजन हुआ।

छोटे शहरों में उदासी नहीं उत्साह दिखाई देता है- संतोष चौबे

शिवना प्रकाशन के आयोजन में सुदीप शुक्ला, महेंद्र गगन और तिलकराज कपूर सम्मानित हुए

'डाली मोगरे की' (नीरज गोस्वामी), 'मैं भी तो हूँ' (नुसरत मेहदी), 'वैश्विक रचनाकार कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ' (सुधा ओम ढींगरा) का विमोचन

शिवना प्रकाशन द्वारा आयोजित कार्यक्रम में जनार्दन शर्मा सम्मान प्रतिष्ठित कवि श्री महेंद्र गगन को, बाबा भारतीय सम्मान वरिष्ठ पत्रकार श्री सुदीप शुक्ला को तथा रमेश हठीला सम्मान शायर श्री तिलकराज कपूर को प्रदान किया गया। स्थानीय ब्ल्यू बर्ड स्कूल के सभागार में आयोजित कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में वनमाली सृजन पीठ के अध्यक्ष कहानीकार श्री संतोष चौबे तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में कहानीकार रेखा कस्तवार, साहित्य अकादमी मप्र से पधारीं नुसरत मेहदी और इलाहाबाद के कवि सौरभ पाण्डेय भोपाल के वरिष्ठ कवि श्री विनय उपाध्याय, कहानीकार मुकेश वर्मा तथा वरिष्ठ कवि श्री बलराम गुमाश्ता उपस्थित थे, अध्यक्षता जयपुर के सुप्रसिद्ध शायर श्री नीरज गोस्वामी ने की। कार्यक्रम के आरंभ में अतिथियों ने दीप प्रज्जवलित कर साहित्यकारों के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित की ।

श्री सुदीप शुक्ला का परिचय देते हुए कहानीकार पंकज सुबीर ने, श्री महेंद्र गगन का परिचय सुप्रसिद्ध कहानीकार श्रीमती रेखा कस्तवार ने तथा श्री तिलक राज कपूर का परिचय श्री सौरभ पाण्डेय ने दिया। तत्पश्चात तीनों सम्मानित रचनाकारों को करतल ध्वनि तथा पुष्प वर्षा के बीच शॉल श्रीफल, स्मृति चिन्ह तथा सम्मान पत्र भेंट कर यह सम्मान प्रदान किया गया ।

इस अवसर पर शिवना प्रकाशन की सद्य प्रकाशित पुस्तकों 'डाली मोगरे की' (ग़ज़ल संग्रह : नीरज गोस्वामी), 'मैं भी तो हूँ' (ग़ज़ल संग्रह: नुसरत मेहदी), 'वैश्विक रचनाकार कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ' (साक्षात्कार संग्रह : सुधा ओम ढींगरा) का विमोचन अतिथियों द्वारा किया गया। अतिथियों ने कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'हिन्दी चेतना' के नव वर्ष अंक और दिल्ली से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'दूसरी परम्परा' का भी लोकार्पण इस अवसर पर किया ।

मुख्य अतिथि श्री संतोष चौबे ने अपने उद्बोधन में कहा कि देश के बड़े साहित्यकारों को छोटे शहरों से संवाद बनाए रखना जरुरी है क्योंकि जो प्रतिभा छोटे शहरों में मिलती है उसमें उदासी नहीं उत्साह दिखाई देता है। कार्यक्रम के अगले चरण में सम्मानित कवियों श्री महेंद्र गगन, श्री तिलकराज कपूर के साथ अतिथि कवियों श्री नीरज गोस्वामी, श्री सौरभ पाण्डेय तथा नुसरत मेहदी ने अपनी प्रतिनिधि रचनाओं का पाठ किया। कार्यक्रम का संचालन कहानीकार पंकज सुबीर ने किया । अंत में आभार व्यक्त करते हुए पत्रकार शैलेश तिवारी ने सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया। आयोजन की सहयोगी संस्था ब्ल्यू बर्ड स्कूल द्वारा सभी अतिथियों को स्मृति चिन्ह प्रदान किये गये । आयोजन समिति के सर्व श्री कैलाश अग्रवाल, उमेश शर्मा, जयंत शाह, श्रवण मावई, शैलेश तिवारी, परवेज खान, हितेन्द्र गोस्वामी आदि ने अतिथियों को स्मृति चिन्ह प्रदान किये। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में शहर के बुद्धिजीवी, कवि, पत्रकार, साहित्यकार तथा श्रोता उपस्थित थे ।

समाचार संकलन : चंद्रकांत दासवानी

कहानीकार ज़किया ज़ुबैरी को शिवना सारस्वत सम्मान प्रदान किया गया

शिवना प्रकाशन द्वारा एक कार्यक्रम आयोजित कर लंदन की कहानीकार ज़किया ज़बैरी को शिवना सारस्वत सम्मान प्रदान किया गया। सुप्रसिद्ध कहानीकार द्वय डॉ. उर्मिला शिरीष तथा डा. स्वाति तिवारी कार्यक्रम में विशेष रूप से उपस्थित थीं। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री प्रकाश व्यास ने की ।

सर्वप्रथम अतिथियों ने दीप प्रज्वलित कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया। तत्पश्चात कहानीकार ज़किया ज़ुबैरी को शाल, श्रीफल तथा सम्मान पत्र भेंट कर शिवना सारस्वत सम्मान प्रदान किया गया। इस अवसर पर बोलते हुए उर्मिला शिरीष ने कहा कि ज़किया ज़ुबैरी जी की कहानियाँ संवदेना के धरातल रची गई होती हैं। डॉ. स्वाति तिवारी ने ज़किया ज़ुबैरी की कहानियों को स्त्री मन के गहरी ज़मीन की कहानियाँ निरूपित किया। ज़किया ज़ुबैरी ने कहा कि भारत आना उनके लिये घर आने जैसा होता है। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में साहित्यकार तथा श्रोता उपस्थित थे ।

समाचार संकलन : चंद्रकांत दासवानी

चित्र काव्यशाला

चित्रकार :
अरविंद नारले

पूरी बोतल का नशा

हैम्बर्गर खा-खा इक माँ का बेटा
हो गया बहुत ही मोटा
तन मोटा, बुद्धि भी मोटी,
बात करे यूँ बच्चा छोटा,
काम न काज, सेर अनाज!
जुमला उसपे फिट था होता
'माँ कहे मेरा प्यारा बेटा,
बाप कहे यह सिक्का खोटा'
कोलाइटस की इसे हुई बीमारी,
जैसे खाये जाए संडास
पर बिन खाये रहा न जाए,
फिर खाने दौड़े माँ के पास
रामदेव को कहते सुना जब,
शीर्ष आसन का लाभ बड़ा
सोचे कैसे निकलेगा हैम्बर्गर ?
सर के बल हो जाऊँ खड़ा
बड़े गुब्बारे बाँध कर पाओं से
वह खड़ा हो गया सर के बल
न्यूटन का सिद्धांत तोड़कर देखूँ
कैसे निकलेगा मल।
एक खा कर दूजा हैम्बर्गर,
रख लिया उसने अपने पास
खा न सकूँ तो आती रहेगी
नाक में मेरी मीठी बॉस
पास नाव में बैठा व्यक्ति,
उसे देखकर हँसा,
बिना पिए ही उसे हो गया
पूरी बोतल का नशा।।

सुरेन्द्र पाठक(कैनेडा)

कैसी छुट्टी ?

छुट्टी मनाने बीच पर थे आये हम दोनों
खाना - पीना मस्ती में दौड़ना
रेत, जल, धूप सेंकना, आराम करना
था सभी कुछ अच्छा, मन को सांत्वना
अचानक जाने क्या हुआ,
तू-तू, मैं-मैं मन अति खिन्न हुआ
और मैं कह बैठा कि सर के बल रहूँगा खड़ा
जब तक है गुस्सा तुम्हारे भेजे में भरा
लेकिन तुनक कर वह जानें कहाँ चली गई
अब मुझे खाना-पीना कुछ भी नहीं भा रहा
कलेजा मेरा बस मुँह को आ रहा
यदि उसे देखो तो कह देना उससे
कि जीना मेरा मुश्किल है उसके बिना
ईश्वर के लिए तुरंत आ जाए यहाँ
कृपया देख लें गुब्बारों के दूसरी तरफ
नाम और चित्र है उसका छपा।
खाना-पीना न लेकर दु:ख मनाने से और
सर के बल खड़े होने से कुछ नहीं होगा
यदि लड़कर रूठ कर चली गई है
तो जाकर गिफ्ट और फूल खरीदो
और भेंट कर उसे प्यार से मना लो - अन्यथा
छुट्टी का सब समय परेशानी में बीत जाएगा
और घर जाकर भी चैन नहीं मिलेगा।
कैसी विडंबना है ?
लोग छुट्टी पर जाने की
कल्पनाएँ करते हैं
बहुत से प्लान बनाते हैं
लेकिन इन महाशय को ही देखिये
छुट्टी पर आए होंगे, लेकिन
जाने कौन सा गम इन्हें सता रहा है
जो सर के बल खड़े होने पर बाध्य हो रहे हैं।

राज महेश्वरी (कैनेडा)

जमीन पर रह सकूँ

जग को उल्टा देख
झूम उठा मैं
नीले-नीले सपने
मौसम का गुलाल
पैरों तले है मेरे
बिम्बों की विपन्नता
रंगों का सौजन्य
आज सर चढ़ कर
बोले है मेरे
दुनिया
उथल-पुथल हो जाए
मैं मानुष रह सकूँ
ज़मीन पर रह सकूँ
अहम् चढ़े न मेरे।।

अदिति मजूमदार (अमेरिका)

कोक और बर्गर

मोटापे के बोझ से
टेढ़ी हो गई नाव
खे न पाया नाव तो
आया तट के पास
बाँध गुब्बारे पैर में
होकर के उल्टांग
शीश को रख कर रेत पर
करने लगा प्रयास
सोचा हल्का हो जाऊँगा
पक्षी सा उड़ पाऊँगा
गुब्बारों में भरी हवा सा
चर्बी कम कर पाऊँगा
पर क्या यह सब कर पायेगा ?
जब कोक और बर्गर खायेगा।

सविता अग्रवाल 'सवि'

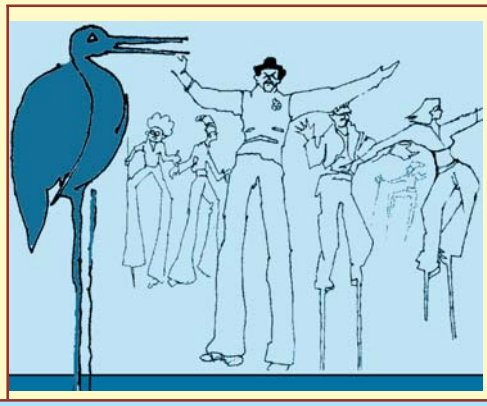

इस चित्र को देखकर आपके मन में कोई रचनात्मक पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं, तो देर किस बात की, तुरन्त ही काग़ज़ क़लम उठाइये और लिखिये। फिर हमें भेज दीजिये । हमारा पता है :

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham,
Ontario, L3R 3R1,
e-mail : hindichetna@yahoo.ca

यूँ तो ईश्वर ने सब चीज़ें, अपनी जगह सब ठीक बनाईं
जहाँ पर था जिसका स्थान, उसी जगह पे सभी टिकाईं
बैठे – बैठे इक दिन सोचा, मैं पृथ्वी पर जाकर आऊँ
है किसका बच्चा सबसे सुंदर, सारी दुनिया को दिखलाऊँ
मानव की तो बात है और, उसका रूप तो मेरे जैसा
प्रथम सुंदर स्वयं को समझे, दूजा जिसके पास हो पैसा
पृथ्वी पे जाकर जंगल में, सब जीवों को हुकुम सुनाया
अपने – अपने बच्चों को, कौन है सुंदर देखने आया
सभी जीव अपने बच्चों को, ईश्वर के आगे ले कर आए
सबने अपने ही बच्चों के, बार – बार गुण – रूप दोहराए

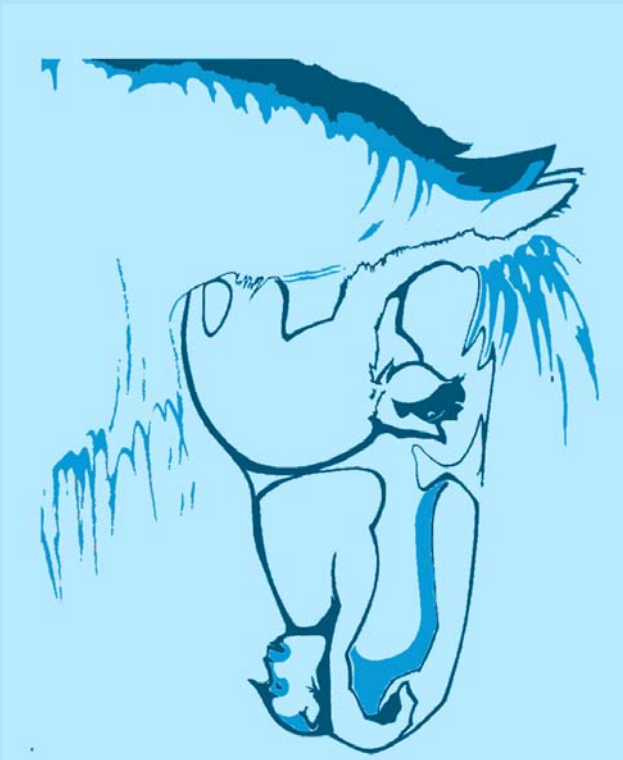

चित्र को उल्टा करके देखें

पर ईश्वर को तो सबसे ज्यादा, भाया घोड़े का ही बच्चा
न किसी जीव को बात भाई, भले ईश्वर का कहना सच्चा
देख रहे हैं चित्र में आप, बड़ा हुआ है सुंदर घोड़ा
पर चित्र उलटा करके देखो, किसने प्रतियोगिता से मुँह मोड़ा
एक पेड़ पर बैठा हुआ है, बाँह ऊपर करके एक बंदर
है जिसके मन यही समाया, इसी का बच्चा सबसे सुंदर
ऐसी वैसी प्रतियोगिता में, क्यों बच्चों को ले जाऊँ झंझट
इसको देकर दूजा नंबर, कहीं ईश्वर ना कर दे भूल !
भगवान को सब चीजों के बीच, देख रही है, बैठा नीचे
घोड़े का बच्चा आगे बैठा, सब बच्चे उसके पीछे
पहले अपने बच्चों को देखा, फिर घोड़े पर नजर दौड़ाई
इसमें कहीं सुंदर मेरा बच्चा, मन ही मन में मुस्काई
यदि आज अपने बच्चों को, ईश्वर के आगे में ले जाती
अवश्य ही इसकी सुंदरता का, प्रश्न इनाम में ले आती
हर मानव को अपना– अपना बच्चा ही होता है प्यारा
यह ईश्वर का वरदान ही समझो, जिससे चलता है जग सारा !

चित्रकार :
अरविंद नारले

कवि:
सुरेन्द्र पाठक

रास्ते हमारे इंतज़ार में सदियों से बिछे हुए हैं और बिछे रहेंगे। भले ही रास्ते कहीं नहीं जाते लेकिन उनसे होकर जाने वाले जाने कहाँ कहाँ पहुँच जाते हैं। जो हिम्मत करके चल पड़ता है, निकल पड़ता है रास्ते उसे कहीं न कहीं पहुँचा ही देते हैं।

पूरे विश्व के हिन्दी साहित्य को साथ ले कर चलें

वर्षों से मैं और मेरे पति डॉ. ओम ढींगरा शिक्षा, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में बहुत सी संस्थाओं को तन मन धन से सहयोग कर रहे हैं। मैं साहित्य से जुड़ी हुई हूँ और डॉ. ओम विज्ञान से। हम दोनों के मन में एक प्रश्न हमेशा सर उठा लेता था कि यूके के इंदु कथा सम्मान के अतिरिक्त विदेशों में और कोई सम्मान नहीं; जो हिन्दी साहित्य को विश्व के सम्मुख ला सके और भविष्य में जो बुकर और नोबेल प्राइज़ की तरह बन सके। हालाँकि इंदु कथा सम्मान की टीम पिछले 20 वर्षों से हॉउस ऑफ़ लॉर्ड में अपने सम्मानों को सफलता पूर्वक आयोजित कर रही है और बड़े अनुशासित तरीक़े से सम्मान देती है। पर वे सम्मान भारत और यूके तक ही सीमित रह जाते हैं। हमारी इच्छा थी कि ऐसे सम्मान शुरू किये जाएँ जो पूरे विश्व के हिन्दी साहित्य को साथ ले कर चलें। यह सोच परिकल्पना सी लगती थी। गत दो तीन वर्षों से मैंने अपनी परिकल्पना साकार करने के लिए साहित्यकारों से बात की। उसे पूरा करने के लिए एक पूरी की पूरी टीम साथ हो ली और कार्य शुरू हो गया।

भारत में सम्मानों की भरमार है। कई सम्मान तो ऐसे पत्रकारों को दिए गए हैं; जिनकी पत्रिकाएँ अल्पजीवी रहीं और उन पुस्तकों को जो कभी छपी नहीं हैं। ऐसे अपवाद कम हैं। शालीन संस्थाएँ गौरवशाली पुरस्कार व सम्मान गरिमापूर्ण देती हैं और उन सम्मानों को लेना गर्व की बात है। सम्मानों की महत्ता और आर्थिक सुदृढ़ता के लिए तथा लक्ष्य को साधने से पहले हमने ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन की स्थापना की। जिसके मुख्य उद्देश्य हैं -भाषा, शिक्षा, साहित्य और स्वास्थ के लिए प्रतिबद्ध संस्थाओं की आर्थिक सहायता करना ताकि इनके द्वारा युवा पीढ़ी और बच्चों को प्रोत्साहित कर सही मार्गदर्शन दिया जा सके। देश-विदेश की उत्तम हिन्दी साहित्यिक कृतियों एवं साहित्यकारों के साहित्यिक योगदान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित करना भी ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन का उद्देश्य है; जो हमारी कल्पना के कैनवस पर उकेरित चित्रों में रंग भरेगा।

'हिन्दी चेतना' जिसकी मैं वर्षों से संपादक हूँ, इसके द्वारा फ़ाउन्डेशन इन सम्मानों को आरंम्भ कर रही है। जिसका पहला कार्यक्रम कैनेडा में जुलाई माह में होगा। कैनेडा हिन्दी चेतना की जन्म स्थली है और मुख्य कार्यालय भी कैनेडा में है। मुख्य संपादक श्याम त्रिपाठी जी की देख-रेख में यह आयोजन होगा। हिन्दी चेतना के सह संपादक, प्रतिष्ठित कहानीकार, उपन्यासकार पंकज सुबीर भारत में हमारे समन्वयक हैं। भारत में प्रकाशित हो रही हिन्दी चेतना व सम्मानों से सम्बंधित जानकारी इनसे प्राप्त की जा सकती है।

मित्रो ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउन्डेशन और हिन्दी चेतना का यह प्रथम प्रयास है। पहले प्रयास में सुदृढ़ पग धरते हुए भी वे कुछ डगमगा जाते हैं और कमी रह सकती है। जो संस्थाएँ वर्षों से सम्मान दे रही हैं, उनसे निवेदन है कि वे अपना पहला क़दम याद करके प्रोत्साहन दें। अनुभव हर कार्यक्रम में निखार लाएँगे।

आप सबकी शुभकामनाएँ और स्नेह की चाह में..

आपकी मित्र

सुधा ओम ढींगरा

शिवना प्रकाशन

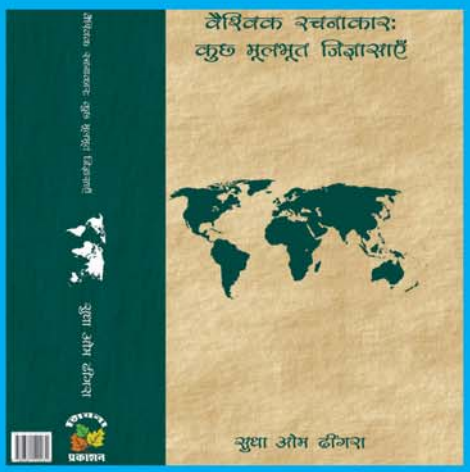

वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ

(साक्षात्कार)

ISBN: 978-93-81520-03-1

सम्पादन: सुधा ओम ढींगरा

मूल्य : 250.00 रुपये

ऐसी पुस्तकें हिन्दी में बहुत कम हैं। शायद न के बराबर। विश्व के अनेक देशों में सक्रिय हिन्दी रचनाकारों के विचार पाठकों तक पहुँचाने के लिए हमें सुधा ओम ढींगरा को धन्यवाद भी देना चाहिए। 'वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ' को पढ़कर प्रवासी लेखन कह कर अनेक लेखकों को हाशिए पर ढकेलने की प्रवृत्ति भी कम होगी ।

-सुशील सिद्धार्थ

मैं भी तो हूँ

(ग़ज़ल संग्रह)

ISBN: 978-93-81520-04-8

नुसरत मेहदी

मूल्य : 150 रुपये

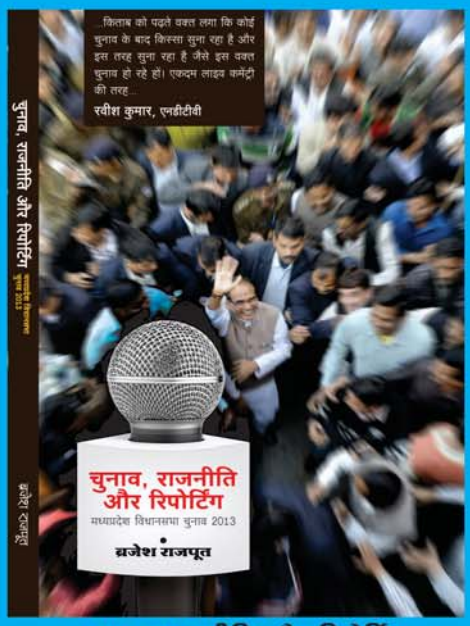

चुनाव, राजनीति और रिपोर्टिंग

(मध्यप्रदेश विधानसभा चुनाव 2013)

ISBN: 978-93-81520-06-2

ब्रजेश राजपूत

मूल्य : 195.00 रुपये

इस किताब को पढ़ते हुए लगा कि कोई चुनाव के बाद किस्सा सुना रहा है और इस तरह सुना रहा है जैसे इस वक्त चुनाव हो रहे हों। लाइव कमेंट्री की तरह। हर राज्य में हर चुनाव के बाद ऐसी कई किताबें आनी चाहिए। प्रचार पर अलग से, भाषणों पर अलग से, रणनीति पर अलग से। ताकि साथ साथ राजनीतिक दस्तावेज बनता चले। राजनीति में दिलचस्पी रखने वालों को संदर्भ के लिए पुस्तक मिलनी चाहिए। वर्ना चुनाव के दौरान की तमाम बातें भुला दी जाती हैं । उम्मीद है ब्रजेश की यह किताब मध्य प्रदेश की राजनीति पर शोध कर रहे विद्यार्थियों के काम आएगी। चुनावी रिपोर्टिंग किसी भी पत्रकार के लिए विशेष मौका है। इसलिए इससे जुड़े हर अनुभव को सँजो कर रखना चाहिए। किसी ऐसी अच्छी किताब के लिए ।

-रवीश कुमार

कार्यकारी संपादक, एनडीटीवी

आसान अरूज़

(ग़ज़ल का छंद शास्त्र)

ISBN: 978-93-81520-02-4

डॉ. आज़म

मूल्य : 300 रुपये

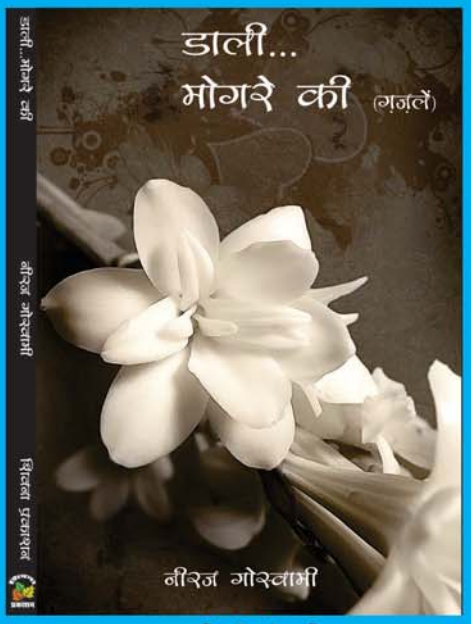

डाली मोगरे की

(ग़ज़ल संग्रह)

नीरज गोस्वामी

ISBN: 978-93-81520-05-5

मूल्य : 150.00 रुपये

शिवना प्रकाशन
शॉप नं. 3-4-5-6
पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
सीहोर, मध्यप्रदेश 466001
फोन 07562-405545, 07562-695918, मोबाइल 09977855399
Email: shivna.prakashan@gmail.com
Web Address: http://shivnaprakashan.blogspot.in

pmt design

race to the top

office designing solutions

www.**pmtdesigns**.in

mail@pmtdesigns.in